मैथिली लोकगीत

संग्रहकर्ता तथा संपादक

श्री रामइक़बालसिंह 'राकेश'

भूमिका-लेखक

पंडित अमरनाथ झा

२०१२

हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग

प्रकाशकीय

श्रीमान् बड़ौदा नरेश सर सयाजीराव गायकवाड़ महोदय ने बम्बई सम्मेलन में स्वयं उपस्थित हो कर पाँच सहस्र रुपये की सहायता सम्मेलन को प्रदान की थी। उस सहायता से सम्मेलन ने सुलभ-साहित्य-माला के अंतर्गत अनेक सुन्दर ग्रन्थों का प्रकाशन किया है। अन्य हिन्दी-प्रेमी श्रीमानों के लिए स्वर्गीय बड़ौदा-नरेश का यह कार्य अनुकरणीय है।

प्रस्तुत 'मैथिली लोकगीत' के संग्रहकर्ता श्री रामइक़बालसिंह 'राकेश' ने परिश्रम के साथ सुन्दर तथा सुरुचिपूर्ण ढंग से मैथिली लोकगीतों का संग्रह किया है। उनका यह प्रयास श्लाघ्य है। पण्डित अमरनाथ झा ने इसकी विद्वत्तापूर्ण भूमिका लिख कर पुस्तक का महत्त्व बढ़ा दिया है।

—साहित्य-मंत्री

विषय-सूची

भूमिका

ग्राम्य-साहित्य साहित्य का एक बहुत बड़ा अंग है। कोई भी साहित्य जीवित नहीं रह सकता है जिसका मौलिक सम्बन्ध जन-स धारण से न हो। कुछ थोड़े से विद्वानों द्वारा कोई साहित्य अधिक दिन तक प्रफुल्लित, उन्नत और पल्लवित नहीं रह सकता है। साहित्य के कुछ अंश तो ऐसे हैं जो राजाओं और धन-सम्पन्न सज्जनों के आश्रय में रचे जाते हैं, कुछ ऐसे जो केवल प्रकांड पंडितों के योग्य होते हैं, और कुछ ऐसे जो जन-साधारण के लिए होते हैं। तीनों प्रकार के साहित्य का अपना अपना महत्व है और सब का अपना अपना मूल्य है। परन्तु यदि किसी देश अथवा समाज की यथ.र्थ झलक कहीं मिलती है त: तीसरे प्रकार के साहित्य में। यह साहित्य बहुधा मौखिक हुआ करता है। दादियों से सुनी हुई कहानियों, कृषकों की कहावतों, स्त्रियों के गानों में यह साहित्य मिलता है। परन्तु काल इतना परिवर्तन-शील है और जनता की रुचि इतनी शीघ्रता से बदलती रहती है कि कुछ ही दिनों में यह साहित्य टीका की अपेक्षा करता है। इसलिए यह आवश्यक है कि इनका संग्रह यथाशीघ्र पुस्तक रूप में प्रकाशित किया जाय जिससे इनको मुद्रित अमरत्व प्राप्त हो। राकेश जी कोई सात-आठ वर्ष से मिथिला के भिन्न-भिन्न गाँवों में जा-जाकर लोकग तों का संग्रह कर रहे हैं। जिस लगन से, परिश्रम से, एकाग्रमन से इन्होंने इस महत्व का काम किया है उसकी प्रशंसा जितनी की जाय, कम है। प्रस्तुत पुस्तक में उनके संग्रह का थोड़ा ही भाग प्रकाशित हो रहा है। इसी पुस्तक के आकार के एक ग्रन्थ की सामग्री और तैयार है, और आशा है कि समय अनुकूल होने पर वह भी प्रक.शित हो जायगा। राजस्थान और बुन्देलखंड; ब्रज-मंडल और छत्तीस-गढ़ के लोक गीतों का संग्रह प्रकाशित हो चुका है अथवा हो रहा है। क्या

ही अच्छा हो यदि इस प्रकार का काम और भी उपप्रान्तों में किया जाय। यह इतना बड़ा काम है कि साहित्य-संस्थाओं को इस ओर प्रवृत्त होना चाहिए। राकेश जी ने अकेले, बिना किसी की सहायता से, यह कार्य सम्पन्न किया है और सम्मेलन को इसे प्रकाशित करते हुए बड़ी प्रसन्नता है।

लोकगीतों की विशेषता यह है कि इनमें हृदय के वास्तविक उद्गार हैं और ये सद्यः हृदयग्राही हैं। शिष्टता और सभ्यता का वाह्य प्रभाव जो भी हो, शिक्षा और समाज-द्वारा व्यक्ति विशेष में जो भी परिवर्तन हो, किसी के मनुष्यत्व में, मानवता में कोई भेद नहीं होता है—कोई चाहे गाँव का रहने वाला हो अथवा नगर का, झोपड़ी में अथवा महल में, मूर्ख हो अथवा पंडित, सन्तान के जन्म के अवसर पर, एक ही प्रकार का आनन्द सब को होता है। पिता-माता के देहावसान से सभी को समान शोक होता है। विवाह के समय एक ही प्रकार की खुशी मनाई जाती है। नव-विवाहिता कन्या जब अपने घर जाने लगती है तब उसके माता-पिता का दुःख बहुत ही करुणा-पूर्ण होता है। किसी प्रियजन के विरह का शोक, दारिद्रय के कष्ट, यौवन के उमंग, बालकाल की क्रीड़ायें, वृद्धावस्था का असामर्थ्य, रोग, इत्यादि सब सभी युग और समाज की सभी श्रेणी में समान हैं। प्रकृति के दृश्य, ऋतुओं की सुन्दरता, वर्षा की कमी, सदा हृदय में भाव को उत्तेजित करने का सामर्थ्य रखती हैं। इन्हीं विषयों पर लोकगीत हैं। इन साधारण विषयों पर हृदय के यथार्थ और सत्य भावों का उद्गार इनमें है। जब कोई किसी नदी पर नाव में यात्रा करता है तो उसे कहीं तो गगन-चुम्बी पर्वत देख पड़ता है; कहीं जल-प्रपात, कहीं घने जंगल, कहीं बड़ी सुहावनी वाटिका, कहीं खेत, कहीं ऊसर भूमि, कहीं झोपड़े, कहीं श्मशान—ये सभी प्रकृति के अंश हैं और ये सब मिल कर प्रकृति की सम्पूर्ण और यथार्थ छवि दिखाते हैं। इसी प्रकार मनुष्य के जीवन में उल्लास, खेद, विरह, मिलन, क्रोध, ईर्ष्या, स्नेह इत्यादि सभी भावों का कभी-न कभी अनुभव होता है। इनमें कुछ तो जीवन के मर्म्म तक पहुँच जाते हैं, कुछ केवल क्षणिक प्रभाव उत्पन्न करते हैं, कुछ व्यक्तिविशेष तक रह जाते हैं, और कुछ का प्रसार बहुत जनों

तक होता है। लोकगीत के विषय में, "सुहृदसंघ" के वार्षिक अधिवेशन में मैंने कहा था: "इन सरल पदों में देश की यथार्थ दशा वर्णित है, यहाँ की संस्कृति इनमें सुरक्षित है। सभ्यता तो वाह्य आडम्बर है, कल तुर्कों की थी, आज अंग्रेजों की है। भारतीयता हमारे गाँव के रहनेवालों में है, जो शहरों के क्षणभंगुर आभूषणों से अपने स्वाभाविक रूप को छिपा नहीं चुके हैं, जिनमें युगों से वेदना सहन करने की शक्ति है, जो सुख-दुःख में, हर्ष-विषाद में, जगत्स्रष्टा को भूलते नहीं हैं, जो वर्षा के आगमन से प्रसन्न होते हैं, जो खेतों में, जाड़े गर्मी में, प्रकृति देवी के निकट, अपना समय बिताते हैं। इन गानों में हम मनुष्य जीवन के प्रत्येक दृश्य को देखते हैं, कन्या के ससुराल चले जाने पर माता के करुण स्वर सुनते हैं; पुत्र के जन्म पर माता-पिता के आनन्द की ध्वनि पाते हैं, खेतों के वह जाने पर हताश किसान के क्रन्दन, व्याह के अवसर पर बधाई के गान, गृहिणी के विरह की व्यथा, सन्तान की असामयिक मृत्यु पर मूक-वेदना—अर्थात् मानविक जीवन की नैसर्गिक कविता का रसास्वादन करते हैं।"

मैथिली भाषा और साहित्य बहुत प्राचीन है। प्राचीन ग्रन्थ के अनुसार मिथिलाप्रान्त की सीमा यों है:

गंगाहिमवतोर्मध्ये नदीपंचदशान्तरे।
तैरभुक्तिरिति ख्यातोदेशः परमपावनः॥
कौशिकीं तु समारभ्य गंडकीमधिगम्य वै।
योजनानि चतुर्विंश व्यायामः परिकीर्तितः॥

इसको मैथिली में एक कवि ने यों लिखा है:

गंगा बहथि जनिक दक्षिण दिशि पूर्व कौशिकी धारा।
पश्चिम बहथि गंडकी, उत्तर हिमवत बल विस्तारा॥
कमला त्रियुगा अमुरा धेमुरा बागवती कृतसारा।
मध्य बहथि लक्ष्मणा प्रभृति सँ मिथिला विद्यागारा॥

आठवीं शताब्दी से अब तक इस प्रान्त की मातृ-भाषा, मैथिली में

साहित्य-रचना होती चली आ रही है। प्रारम्भ में तो मैथिली-अपभ्रंश में ग्रन्थ लिखे गये, जिसका एक ज्वलन्त उदाहरण विद्य पति कृत "कीर्त्तिलता" है। इसी अपभ्रंश में "बौद्धगान तथा दोहा" लिखे गये। विद्यापति ने संस्कृत की अपेक्षा देशी भाषा को अधिक महत्व दिया—वह कहते हैं:

सक्कय वाणी बहुअ न भावइ, पाउँअ रस को मम्म न पावइ।
देसिल वअना सब जन मिट्ठा, तँ तैसन जम्पओ अवहट्टा।।

विद्यापति ने "कीर्त्तिलता" में जिस भाषा का प्रयोग किया यह आज की मैथिली के बहुत समीप है। यथा:

वूडन्त राज्य उद्धरि धरेओ। प्रभुशक्ति दानशक्ति
ज्ञानशक्ति तीनुहु शक्तिक परीक्षा जानलि। रूसलि
विभूति पलटाए आनलि।

तेरहवीं शताब्दी में ज्योतिरीश्वर ठाकुर ने मैथिली में "वर्णरत्नाकर" नामक सुन्दर ग्रन्थ की रचना की। इसकी लेखनशैली "कादम्बरी" से समता रखती है—यथा अन्धकार का वर्णन:

पाताल अइसन दुःप्रवेश, स्त्रीक चरित्र अइसन दुर्लक्ष्य, कालिन्दीक कल्लोल अइसन मांसल, काजरक पर्वत अइसन निविड़, आतंकक नगर अइसन भयानक, कुमंत्र अइसन निफल, अज्ञान अइसन सम्मोहक, मन अइसन सर्वतोगामी, अहंकार अइसन उन्नत, परद्रोह अइसन अभव्य, पाप अइसन मलिन, एवं विध अतिव्यापक दुःसंचर दृष्टिवंधक भयानक गम्भीर शुचि भेद अन्धकार देखू।

इस भाषा में मैथिल हिन्दू और मुसलमान, सब ने ग्रन्थ लिखा और यह साहित्य कम-से-कम छः सौ वर्ष से विविध विषयों से पूर्ण है। मुसल्मानों ने मैथिली में मर्सिआ भी लिखा—यथा:

एहि दसौ दिन सैयद बँसवा कटौलकै रे हाय हाय।
से हो बँसवा भेलै बिसरनमा रे हाय हाय ।।
एहि दसौ दिन सैयद लकड़ी चिरौलकै रे हाय हाय।
से हो लकड़ी भेलै बिसरनमा रे हाय हाय।

आज कल भी यथेष्ट संख्या में मैथिल अपनी मातृभाषा में ग्रन्थ लिख कर अपनी परम्परागत साहित्य-सम्पत्ति की वृद्धि कर रहे हैं।

जैसा कि ऊपर कहा गया है यह संग्रह अपूर्ण है। "राकेश" जी के पास अभी और बहुत सामग्री है। केवल 'नचारियों' की ही संख्या एक सहस्र के लगभग होगी। नचारी मिथिला की एक विशेष वस्तु है। कई सौ वर्ष से शिव-भक्ति-पूर्ण ये गान वहां गाये जाते हैं—"आईने-अकबरी" में इसकी चर्चा है, विद्यापति के समय से अब तक इसकी रचना होती आई है। चन्द्र कवि के (जिनको अपनी बाल्यावस्था में मैं प्रातः नित्य देखा करता था और जिनका रचित "मैथिलीभाषा रामायण" एक विलक्षण ग्रन्थ है) दो नचारी मैं यहाँ उद्धृत करता हूँ।

(१)

चलु शिव कोवराक चालि हे, दोपटा ओढू भोला।
अछि भरि नगर हकार हे भलमानुस टोला।।
हाड़क हार निहारि हे हेरथि बघछाला।
हसति बसति सति आज हे जल आओति बाला।।
भूधरराज जमाय हे छाउर करु त्यागे।
बहु विधि अतर सुगन्ध हे लागत अंग रागे।।
प्रणत कहथि कवि 'चन्द्र' हे सुनु शम्भु निहोरा।
एखनहु धरि कि सुखाय हे रानिक दृगनोरा।।

(२)

शिव प्रिय अभिनव गीत प्रीति सौं रचितहुँ।
शिव-तट विगत विकार भक्ति सौं नचितहुँ।।

महोदार करुणावतार कौं जँचितहुँ।
अन्त समय हम काल कराल सँ बचितहुँ॥
अछि भरोस मन मोर दया प्रभु करता।
शरणागत जन जानि सकल दुख हरता॥
मोर जीव दुखिया जानि सदाशिव ढरता।
जे चाहथि से करथि भवानी भरता॥

विद्यापति के पद जो अन्य प्रदेशों में प्रसिद्ध हैं अधिकतर राधा-कृष्ण विषयक हैं, परन्तु उनके रचित अनेक उत्तम नचारी भी हैं—यथा :

घर घर भरमि जनम नित
तनिकाँ केहन विवाह।
से आब करब गौरीवर
ई होए कतय निवाह॥
कतय भवन कत आँगन
बाप कतय कत माय।
कतहुँ ठओर नहिं ठेहर
ककर एहन जमाय।
कोन कयल एह असुजन
केओ न हिनक परिवार।
जे कयल हिनक निबन्धन
धिक धिक से पजिआर॥
कुल परिवार एको नहिं जनिका
परिजन भूत बेताल।
देखि देखि झुर होय तन
के सहय हृदयक साल॥
'विद्यापति' कह सुन्दरि
धरहु मन अवगाह।

जे अछि जनिक विवाही
तनिकाँ सेह पै नाह ॥

"श्यामा-चकेवा" के सम्बन्ध में पाठकों को यह जान कर उत्सुकता होगी कि इसका उल्लेख "पद्मपुराण" में है। "समदाउनि" एक बहुत ही करुणोद्भावक राग में गाई जाती है—विदा के काल की यह वस्तु है। संस्कृत साहित्य में इसका विशिष्ट उदाहरण "अभिज्ञानशाकुन्तल" के "श्लोकचतुष्टयम्" में है। समदाउनि कई अवसर पर गाई जाती है। नवरात्रि के पश्चात् जब दुर्गापूजा समाप्त होती है, तब का एक गीत यह है :

कि कहब जननि कहय नहिं आवय छमिअ सकल अपराध ॥
नवओ रतन नव मास वितित भेल तुअ पदलगि परमान।
चललहुँ आज तेजि सेवक गण आकुल सब हक परान ॥
सून भवन देखि थिर न रहत हिअ नयन झहरि रह नोर।
गदगद बोल अम्ब तन थर थर हेरि अलोचन कोर ॥

कन्या जब माता-पिता से विदा होकर ससुराल जाती है उस समय उसको सम्बोधित करती हुई समदाउनि :

धिया हे रहब सबहक प्रिय जाय ॥
एतय छलहुँ सभ के अति प्रिय भेलि
नेनपन देखि जुड़ाय।
ओतय रहब सभ के अनुचरि भेलि
भेटति ओतय नहिं माय ॥
नेनपन सँ हम कतेक सिखाओल
बहुत बुझाय बुझाय।
जइतहिं ओतय रहब तहिना भेलि
जनु दिअ नाम हँसाय ॥
बाजि सकी नहिं, बहुत कहब की
आब कहल नहिं जाय।

सेवा सभक करब तत्पर भय
लेब हम तुरन्त अनाय॥
छोड़थि पैर नहि माय कहथि नहि
गद्‌गद कंठ सुखाय।
भन 'विन्ध्यनाथ' वियोग काल में
कानब एक उपाय॥

और आम की फस्ल समाप्त होने पर समदाउनि:

फल हे! तेजह किएक समाज।
तोहरहिं बसें किछु गनल न उचनिच छोड़ल गेहक काज।
तुअ गुण अवुधि छुबुध मन होएत ई तोहि कत गोट लाज॥
मन अभिलाष लाख हम धयलहुँ यतनहि हृदय नुकाय।
उमड़ि उमड़ि से मगन ओतहि की एहन कठिन हिअ हाय॥
कोमल सरस विदित त्रिभुवन तों अकपट तथिहुँ विशेष।
प्रकृत बुझल तुअ गरल भरल हा सरल मनोहर वेष॥
गद्‌गद स्वर पुलकित तन थरथर आब कहल नहि जाय।
भन 'गणनाथ' उदास कहब कत थकलहुँ बहुत बुझाय॥

चौठ चन्द के गीत, प्रभाती, ताजिया के गीत, रास, मान, योग, उचती, लगनी, चाँचर, विरहा, मंगल इत्यादि और अनेक प्रकार के लोकगीत हैं, जिनका संग्रह राकेश जी ने किया है और जो, यदि सम्भव हुआ, तो द्वितीय भाग में प्रकाशित होंगे।

हमें आशा है कि साहित्य-प्रेमी इनको आदर की दृष्टि से देखेंगे और इनमें यथार्थ भारतीय संस्कृति की झलक पायेंगे।

आश्विन कृष्ण ५
१९९९ सम्वत्

—अमरनाथ झा

प्राक्कथन

[१]

मिथिला प्राकृतिक सौन्दर्य्य से परिपूर्ण प्रान्त है। इसकी लावण्यमयी मंजुल मूर्त्ति, मधुरिमा से भरी हुई सरस वेला और उन्मादिनी भावनायें किसके हृदय को नहीं गुदगुदा देतीं ? यहाँ के वसन्तकालीन सुहावने समय, बाँसों के झुरमुट में छिपी गिलहरियों के प्रेमालाप, सुरञ्जित सुन्दर पुष्प, सुचित्रित पशु-पक्षी और कोमल पत्तियों के स्पन्दन अपने इर्द-गिर्द एक उत्सुकतापूर्ण रहस्यमय आकर्षण पैदा कर देते हैं। कहीं ऊदे-ऊदे बादलों की आँखमिचौनी, कहीं झहर-झहर करती हुई बलखाती नदियों की अठखेलियाँ, कहीं धान से हरे-भरे लहलहाते खेतों की क्यारियाँ—मतलब यह कि यहाँ की ज़मीन का चप्पा-चप्पा और आसमान का गोशा-गोशा काव्य की सुरभि से सुरभित हो रहा है और संगीत की निर्मल निर्झरिणी सदा अविराम गति से कलमल करती हुई दौड़ रही है।

'मिथिला' नामक महत्त्वपूर्ण पुस्तक के लेखक श्री लक्ष्मण झा के अनुसार मिथिला पूरब से पश्चिम तक १८० मील और उत्तर से दक्षिण तक १२५ मील है। इसका क्षेत्रफल २२५०० वर्गमील है। दरभंगा, मुजफ्फरपुर, पूर्णिया, चम्पारन, उत्तर भागलपुर तथा उत्तर मुंगेर के जिले इसके अन्तर्गत हैं। पश्चिम की ओर सदानीरा—शालग्रामी तथा पूरब की ओर कौशिकी के बीच की तराई भी इसमें सम्मिलित है। पाँच हजार वर्षों को पार कर चला आता हुआ इसका इतिहास संसार के प्राचीनतम इतिहास के रूप में प्रतिष्ठित है। इसकी जमीन का भूतात्त्विक रचना-काल पाँच लाख वर्ष प्राचीन है, और भूगर्भवेत्ताओं के अनुसार इसका भूपृष्ठ पृथिवी के भूपृष्ठ की अपेक्षा आधुनिक है। आज से

लगभग दस लाख वर्ष पूर्व इस प्रदेश की स्थिति जिसको हम मिथिला कहते हैं वैसी नहीं थी, जैसी कि आज है। यह समुद्र का ही एक खंड था जो विन्ध्य-गिरि-मेखला से हिमालय को विभक्त करता था, और पश्चिम-पयोधि—अरब सागर को बंगाल की खाड़ी—पूर्व सागर से मिलाता था। उस समय शैलाधिपति हिमालय समुद्र के गर्भ में ही समाधि-मग्न था।

मिथिला के पुर और जनपद दोनों ही नदियों के आश्रित हैं, और कई दृष्टियों से धन-धान्य की धात्री इन नदियों का अस्तित्त्व अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। यदि दक्षिण भारत के निवासियों की मनोभूमि को रमणीय पर्वतों तथा गम्भीर द्रोणियों का सान्निध्य—सख्यभाव प्राप्त है तो मिथिला-वासियों की मानस-भूमि को स्वच्छसलिला नदियों की प्राणदायिनी धारा अपने जीवन-रस से सिञ्चित करती है, जिसका प्रमाण 'तीरभुक्ति' (नदी-किनारे की भूमि अथवा नदी-तटवर्त्ती प्रदेश) शब्द में उपलब्ध होता है।

यहाँ की भाषा मैथिली है, जिसकी लिपि देवनागरी लिपि से थोड़ी भिन्न है, और उसमें बँगला-लिपि का आभास दृष्टिगोचर होता है। बिहार की प्रादेशिक भाषाएँ तीन हैं—(क) मैथिली, (ख) मगही, और (ग) भोजपुरी। मैथिली चम्पारन, दरभंगा, पूर्वी मुँगेर, भागलपुर, पूर्णिया के पश्चिमी और मुजफ़्फरपुर के पूर्वी भागों में बोली जाती है। लेकिन दरभंगा जिले के गाँवों में ही यह अपने शुद्ध रूप में प्रचलित है। मैथिली और मगही एक दूसरे के अधिक निकट हैं, और इन दोनों प्रादेशिक भाषाओं के बोलने-वालों के रीति-रिवाज और रहन-सहन में भी कोई विशेष अन्तर नहीं। उच्चारण के लिहाज से भी मैथिली और मगही भोजपुरी की अपेक्षा एक-दूसरे से अधिक मिलती-जुलती है। मैथिली में स्वर वर्ण 'अ' का उच्चारण स्पष्ट और मधुर होता है। भोजपुरी में स्वर वर्ण का उच्चारण (मध्यभारत में प्रचलित भाषाओं की तरह) थोड़ा रूखा है। इन दोनों भाषाओं—मैथिली और भोजपुरी का यह अन्तर इतना स्पष्ट है कि इनके जुदे-जुदे लिबासों को पहचानने में देर नहीं होती। संज्ञाओं के शाब्दिक रूपकरण की दृष्टि से भोजपुरी में सम्बन्ध-कारक का रूप सरल नहीं है। मैथिली

और मगही में मध्यम पुरुष का रूप, जो अक्सर बोल-चाल में इस्तेमाल होता है, 'अपने' है, और भोजपुरी में 'रऊरे'। मैथिली का 'छई' और 'अछि' क्रियाओं के बदले मगही में 'है', और भोजपुरी में 'बाटे', 'बारी', और 'हवे' प्रयुक्त होते हैं। अन्य भारती भाषाओं की तरह क्रिया-विशेषण के संयोग से वर्तमान काल बनाने में ये तीनों प्रादेशिक भाषाए एक-सी हैं। मगही का वर्तमान काल 'देखा है' भी एक सिफत रखता है। भोजपुरी में 'देखा है' के बदले 'देखे ला' इस्तेमाल होता है। मैथिली और मगही में क्रिया के भिन्न-भिन्न रूपान्तर—धातुरूप सरल नहीं हैं। उनके पढ़ने और समझने में पेचीदगी पैदा होती है। लेकिन बंगाली और हिंदी की तरह भोजपुरी के धातुरूप साफ-सुथरे और बाअसर हैं। इनके पढ़ने और समझने में दिमाग में पसीना नहीं आता, और न इनके शब्द मन में अलग-अलग तस्वीरें पैदा करते हैं। इन तीनों प्रादेशिक भाषाओं में और भी कितने अन्तर हैं। लेकिन ऊपर जो भेद दिखलाये गये हैं वे ज्यादा उपयोगी और उल्लेखनीय हैं।

मैथिली ग्राम-साहित्य-सागर के विस्तीर्ण अन्तस्तल में न मालूम कितने अनमोल सुन्दर हीरे यत्र-तत्र बिखरे पड़े हैं, जो एकता के सूत्र में पिरोये जाने पर हिन्दी-साहित्य के भंडार को पूर्ण बना सकते हैं। मैथिल ग्रामीण कवियों ने साहित्य के विभिन्न पहलुओं, जैसे—नाटिकाएँ, विनोद-पद, कहानियाँ, पहेलियाँ, कहावतें आदि सभी को समान-रूप से स्पर्श किया है। वे अपने परिमार्जित और संयत गीतों के रचयिता ही नहीं, बल्कि अनेक नूतन छन्दों और तालों के उत्पादक भी हैं। हाँ, कहीं-कहीं एक ही छन्द बहुरूपये-सा रूप बदल कर जुदा-जुदा लिबासों में प्रकट हुआ है। उनम कुछ ऐसे हैं, जो तेज रेती के समान कठोरतम इस्पात को भी काट सकते हैं; कुछ ऐसे हैं, जो पतझड़-से जीर्ण-शीर्ण आत्मा का वासन्तिक निर्माण करते हैं, और कुछ ऐसे हैं जो फूल की कोमल कली की तरह वनदेवी की गोद में मचल रहे हैं।

मैथिली लोक-साहित्य के आकाश में गीतों के विहंगम अहर्निश उड़ते-

फिरते हैं। जनवरी से दिसम्बर तक बारहों महीने गीतों की बहार रहती है। स्फूर्त्तिप्रद भोजन, और आहार-विहार जिस तरह जीवन का आवश्यक अंग है, उसी तरह मीठे नैसर्गिक गीतों का प्रेम-गान भी यहाँ के लोगों के जीवन का दैनिक अंग बन गया है। पुंसवन, सीमन्तोन्नयन, शिशु-जन्म, उपनयन, विवाह आदि षोड़श संस्कारों की बात का तो कहना ही क्या? प्रातः, दुपहरी, संध्या, मध्यनिशा आदि भिन्न-भिन्न समय के लिए भी यहाँ भिन्न-भिन्न शैली के गीत ईजाद किये गये हैं। नववयस्क और युवक-युवतियों के अतिरिक्त यहाँ छोटे-छोटे बच्चे भी स्वर्गीय संगीत की झंकार से स्थानीय वातावरण को प्रतिध्वनित करते रहते हैं। वे अपनी काव्य-सहचरी को मिट्टी के पकवान बना कर तृप्त करते, और "जो माला" तथा करौंदे' की लटकन से श्रृंगार कर धूल के रंगमहल में उसके साथ क्रीड़ा करते हैं।

मिथिला के इन ग्रामीण गीतों को पुनरुज्जीवन प्रदान करने का अधिक श्रेय लग्न-उत्सवों और हिन्दू पर्व-त्यौहारों को है। संगीतमय हिन्दू-त्यौहारों में रक्षा-बन्धन, तीज, यम-द्वितीया, दीपमालिका और छठ उल्लेखनीय हैं। कंजरों के दल जो अपने काफिलों के साथ एक स्थान से दूसरे स्थान पर पड़ाव डालते फिरते हैं, पुरातन लोक-गीतों के चलते-फिरते पुस्तकालय हैं। लग्न-उत्सवों पर खँजरी बजा-बजा कर मंगलात्मक बधाई-गीत गाना इनकी जीविका का साधन है।

लोक-गीतों को प्रोत्साहन देने में मुसलमानों के करुण पुर-दर्द मर्सियों का भी, जो मुहर्रम के दिनों में हसन-हुसैन की याद में गाये जाते हैं, बड़ा जबरदस्त हाथ है। ताजिये की निश्चित तिथि से कई-कई दिन पूर्व ही बाँस की खपाचों के बने बाजे बजा-बजा कर हिन्दू-मुसलमान सम्मिलित स्वरों से गान करते हैं, और उक्त तिथि के पहुँचने पर रंग-बिरंगे कागज के बने ताजियों को सिर पर लेकर स्त्री-पुरुषों की टोलियां जमींदारों के दरवाजों की फेरी लगाती हैं। कर्बला की संवेदनशील अभिव्यंजना के साथ-साथ इनमें वीर-रस की लड़ाइयों का भी पुरजोश जिक्र आया है, जिनका एक-एक लफ्ज इस्लाम के बुलन्द सितारे की दुन्दुभि है।

तपे अंगारों-से जलते ऊबड़-खाबड़ खेतों में दिन-भर काम कर हलवाहे और मजदूर संध्या को थके-माँदे चूर लौटते हैं। और भोजनोपरान्त रात्रि में ढोल, डफ और झाल के स्वरों में स्वर मिला कर ताल-लय-संयुक्त वाणी का अजस्र वर्षण करते हैं। उस समय वे पल-भर के लिए दीन-दुनिया भूल कर अलमस्त हो किसी अचिन्त्य प्रदेश में पहुँच जाते हैं, और उनकी विद्युत् भरी स्वरलहरी गाँवों के प्रशान्त सन्नाटे को चीर कर गगन में झूम-झूम कर विलीन होने लगती है।

गो-दोहन के समय, जब प्रातःकाल अपनी श्यामल सुफेदी लिये पदार्पण करता है, चरवाहे दल-के-दल अपने जानवरों के साथ—गाँवों के बाहर—घास के हरे-भरे बागों में निकल पड़ते हैं। वहाँ पशुओं को चरागाहों पर छोड़ कर स्वयं किसी स्थानीय आम्र-निकुंज की शीतल छाया में बैठ कर पत्तों की सनसनाहट और भौंरों की भनभनाहट के साथ स्वर मिलाते हुये अपने उल्लासमय जीवन का गीत गाते हैं। प्रकृति-अंकन ही इन गीतों का ताना-बाना है। कहीं-कहीं कवि ने बेलों और लताओं से आवेष्टित झोंपड़ियों का वर्णन बड़ी सफलता से किया है।

कदम-कदम पर मिलते हैं यहाँ जीवन के सुनहले गीत। एक-से-एक बढ़ कर मार्मिक गीत। किसी की आँखों में प्रसन्नता का वसन्त। किसी की आँखों में मुसीबतों की बदली। किसी के मुख पर संध्याकालीन एकान्त। किसी के मुख पर मौत का-सा अन्धकार। किसी के अश्रु-कण प्रकाश में चमक रहे, तो किसी के आँसू अन्धेरे में बन्द।

कविवर दिनकर से सुना हुआ एक लोक-गीत याद आता है।

कोकटी धोती पटुआ साग
तिरहुत गीत बड़े अनुराग
भाव भरल तन तरुणी रूप
एतबै तिरहुत होइछ अनूप

कोकटी धोती, पटुआ का साग, प्रेम से शराबोर तिरहुति गीत, रूपवती तरुणी का भाव-भरा सौन्दर्य्य मिथिला की ये इतनी चीजें उल्लेखनीय हैं।

लोक-गीत की दुनिया में करुणा की वेगवती धारा एकान्त भाव से प्रवाहित है। कृषकों के सादे जीवन के मार्मिक दृश्य, सामाजिक स्थिति के गोरखधन्धे, ग्राम-प्रदेश के चित्र, मजहब की नाजबरदारियाँ, समाज का खोखलापन, पारिवारिक उत्सव और अनुष्ठान, भाई-बहन का प्रेम, देवरानी का निष्कलंक जीवन, ससुराल में नव-वधू की व्यथा और सास ननद के अत्याचार चित्र-पट की तरह हू-बहू हमारी आँखों से गुजरते हैं।

प्रेम-रस में शराबोर किसी विरहिणी का एक विरह-गीत सुनिये :

आम मजरि महु तूअल
तैं ओ ने पहुँ मोरा घूरल
दीप जरिय बाती जरल
तैं ओ ने पहुँ मोरा आयल

"आम में बौर लग गये। महुआ चूने लगा। लेकिन हे सखी, मेरे प्रियतम नहीं आये।

दीये की लौ मन्द पड़ गई। बत्ती जल गई। लेकिन मेरे प्रियतम नहीं आये।"

जीवन कीं निबिड़ रात्रि में करवटें बदल-बदल कर विरहिणी ने बिहान किया होगा। 'दीप जरिय बाती जरल, तैं ओ ने पहुँ मोर आयल' से यह बात स्पष्ट हो जाती है। सर्प की जादू-भरी नजर से व्यर्थ निकल भागने का प्रयत्न करनेवाली चिड़िया की तरह उसकी आशा निराशा में परिणत हो गई होगी।

विरह का यह दुःखान्त गीत देश-देश में समान भाव से व्यापक है।

विरह की सरिता युगयुगान्तर से अनुप्राणित होकर हृदय से हृदय में, और प्राण से प्राण में अपनी विकलता बाँटती हुई चली आ रही है। ग्रामीण स्त्रियों के सरल कंठ से निकलनेवाली अमर पंक्तियों में जाने कितनी ही वियोगिनियों के कोमल हृदय तड़प रहे हैं। कितने घायल हृदयों के अरमान

आँसू की बड़ी-बड़ी बूँदों में ढुलक रहे हैं। सुनिये वह अमराई में बैठी हुई तरुणी क्या गा रही है:

"सुनती हूँ, मेरे प्रियतम कृष्ण योगी हो गये हैं।
इसलिए मैं भी जोगन हो जाऊँगी।
जिस प्रकार वन में पीपल के पत्ते काँपते हैं,
जल के बीच सेवार और कमल के पत्ते काँपते हैं,—
उसी प्रकार प्रियतम के बिना मैं काँप रही हूँ।
जल का दुश्मन सेवार होता है,
और, मछली का दुश्मन मल्लाह;
इसी प्रकार अगर स्त्री के प्रियतम प्रवासी हों
तो सेज दुश्मन हो जाती है।"[1]

'पीपल के पत्ते', 'सेवार', और 'कमल के पत्ते' की मिसाल देकर इस गीत की नायिका ने अपनी विरह-दशा का सजीव चित्र खींचा है। भौजूँ उपमाओं-द्वारा अमूर्त्त भावों को मूर्त्त रूप देने में मैथिल स्त्रियों को कमाल हासिल है।

स्त्रियों की विरह-दशा का जीवित चित्र देखना हो तो लोक-मानस की सैर कीजिये:

कोई प्रवासी प्रियतम के इन्तजार में शंख की चूड़ी फोड़ कर और कंचुकी फाड़ कर जोगन बन रही है:

फोरबइ में शंखा चुरी फारबइ में चोलिया
से धरबइ जोगिनिया के वेष

कोई परदेश से लौट आने पर अपने प्रियतम को रेशम की डोर में बाँध कर कलेजे में छुपा रखने का इरादा कर रही है।

एहो हम जनितो पिया जयथिन परदेशवा
बाँधितो में रेशमक डोर

---

१. अध्याय 'सोहर',

रेशम की डोर टूट जायगी, इसलिए कोई अपने प्रियतम को चुँदरी के आँचल में ही बाँध रही है।

रेशम बँधनमा टुटिए-फाटि जयतइ
बाँधितो में अँचरा लगाय

किसी की आँखों से आसमान से झहरती हुई बूँदें देखकर और मेढ़क की 'टर्र-टों, टर्र-टों' आवाज सुन कर अविरल अश्रुपात हो रहे हैं :

साओन सननन पवन सनकय
दादुर टर-टर शोर यो,
बूँद झहरय भ्रमर भनकय
नयन टपकय नीर यो।

कोई अपने आँचल को फाड़-फाड़ कर कागज बनाती है, और अपने प्रियतम को प्रणय का सन्देश भेजती है :

अँचरा के फारि-फारि कगदा बनइतो,
लिखितो में पिया के सन्देश।

कोई तो विरह में इतनी खिन्न है कि उँगली में आनेवाली अँगूठी कलाई का कंकण बन गई है :

जे हो मुंदरि छल आँगुरि कसि-कसि,
से हो भेल हाथक कंकन।

व्याध के बाण से बिद्ध क्रौञ्च पक्षी की तरह तड़पनेवाली वियोगिन की व्यथा की कोई सीमा नहीं।

जे हो मुंदरि छल आँगुरि कसि-कसि,
से हो भेल हाथक कंकन।

इन शब्दों में गम की तस्वीर दिल के कागज पर खींची गई है। इतिहासों पर स्याहियाँ पुत जायँगी, युग-युग के संस्कार धुल जायेंगे और तक़दीर

की लिपि भी मिट जायगी, लेकिन लोक-हृदय की यह संवेदनाशील वाणी युग-युग तक अमर रहेगी।

विरह—धरती की गोद का लाड़ला शिशु—लोक-साहित्य में जाने कब से जन्मा है?

चोट खाये हुए लोक-मानस में विरह मजबूती से बैठ गया है—(प्रेम से पिघले हुए दिल में विरह जल्दी घर कर लेता है। जो बत्ती चल चुकी है, जिसमें अभी तेल का धुआँ उठ रहा है, लौ को जल्दी पकड़ती है—सरमद शहीद)—चकमक चिनगारी के समान लोक-हृदय में जलनेवाली विरह की बत्ती बुझती नहीं—दिन में, रात में, प्रतिपल जलती रहती है, योग-युक्त दीप-शिखा की भाँति स्वयम्भू-स्वप्रकाश होकर।

विरह का एक मैथिली गीत है: 'विरह में भ्रान्ति।' प्रियतम प्रवासी है। नायिका अपने ही शरीर को देखकर भयभीत हो रही है। दर्पण में अपना ही चेहरा देखकर नायिका उसे चन्द्र समझती, और भय से कम्पित हो रही है। वक्षस्थल पर भ्रम से अपने ही हाथ रखकर विरहिणी उसे कमल समझती और ललचा कर वार-बार स्पर्श करती है। अपने ही केश-पाश को देख कर काले बादल के भ्रम से उसका हृदय बैठ रहा है।[1]

वियोगिन की मानसिक जिन्दगी का शीशा इन पंक्तियों में अंकित है। मिट्टी को फोड़कर निकलनेवाले अंकुर की तरह विरह के नुकीले और जहरीले काँटे ने वियोगिन के हृदय को बेध डाला है। विरह में ऐसी भ्रांति, ऐसी तन्मयता कि देहाध्यास तक न हो। पतंग को अपनी दीप-शिखा से मतलब। महफिल के रंग से—तसवीरों और पर्दों से उसे क्या काम (जैसा कि महाकवि अकबर का कथन है—परवाने को मतलब शमा से है, क्या काम है रंगे-महफिल से)।

पावसकालीन मेघ को देख कर संस्कृत के किसी कवि ने एक भावपूर्ण कविता लिखी है—'रे बादल, तुम्हारे जल बरसाने से क्या लाभ? क्या

---

१. 'तिरहति',

पृथिवी वियोगिन के आँसू से पहले ही तर नहीं हुई है ? तुम्हारा कोलाहल भी व्यर्थ है। क्योंकि प्रिया के ज़ार-ज़ार रोने से सारी सृष्टि रो रही है। रही जलकण से पूर्ण वायु की बात, उसके लिए भी उस चन्द्रमुखी के मुख से जो आहें निकल रही हैं, वही पर्याप्त हैं। हाँ, तुमने एक बात अवश्य नई कर डाली है, वह है मेरी व्यथा। यह पहले कभी नहीं हुई थी।[१]

[२]

सावन के सजल कजरारे मेघ उमड़ पड़े। तन्द्रा में डूबी हुई पृथिवी सपनों में लिपट गई। हृदय की धड़कनों में सोये हुए अरमान मचल पड़े। और हवा के झोंकों से आँखमिचौनी खेलती हुई बूदें गिरने लगीं :

टप ! टप !! टप ! टप !!

मकई के मँझाए हुए मोचों में उल्लास फूट पड़ा। गँवई तालाब के मटमैले पानी में मेढ़क टरटराने लगे। चमारों के संड-मुसंड बच्चे बंसी के अंकुश में चारे फँसा-फँसा कर मछली पकड़ने के मोर्चों पर जा डटे। आम की डाल पर बैठी हुई कोयल पंचम में गाने लगी।

जमीन के चप्पे-चप्पे और आसमान के गोशे-गोशे में मीड़ बज उठी।

लेकिन, बिजली की तड़क से भयभीत उस मैथिली तन्वंगी का दिल सुबह के दीये की तरह क्यूँ मँझा रहा है ?

उसकी वेदना फूस की चरमराती हुई झोंपड़ी की तरह क्यूँ सिसक रही है ?

उसके खीरे-से दिल को किस बेरहम ने विरह के चोखे चाकू से चाक कर दिया है ?

---

[१]पाथोवाह किमम्बुभिः प्रियतमा नेत्राम्बुसिक्ता मही,
किं गर्जैः सुतनोरमन्द्ररुदितैरुज्जागरा भूरपि।
वातैः शीकरिभिः किमिन्दुवदनाश्वासैः सबाष्पैरलं,
सर्वं ते पुनरुक्तमेतदपुनः पूर्वा पुनर्मद्व्यथा।

"री कोयल, सुनो—यहाँ आओ।
(प्रेम से) मधु में पगा हुआ भोजन खाओ।
और, आज रात को मेरा एक काम कर आओ।
मैं तुम्हारी कितनी आरजू-मिन्नत करूँ?
मै सोने से तुम्हारे पंख मढ़ाऊँगी।
जिससे सुन्दरियाँ—
(तुम्हारे सौन्दर्य्य पर लट्टू होकर)
तुझसे प्रेम करेंगी।
मोतियों से अधर मढ़ा कर
तुम्हारा वेश सुन्दर बनाऊँगी—री कोयल!
यह लो मेरे प्रवासी साजन का पत्र,
जो मैंने लिखा है।
आधी रात बीता चाहती है,—
हृदय का कागज फाड़ कर,
और, आँखों के काजल की स्याही में
नख की कलम डुबो कर मैंने खत लिखा है।
हवा के पंख पर चढ़ कर—
धीरे-धीरे उड़!—री कोयल!
मेघ बरसा ही चाहता है,
तू जल्द जा,—री कोयल।
मेरे प्रियतम से मेरा सन्देशा समझा कर कह,
और कान देकर उनकी बातें सुन—
पूछना—तुमने क्यूँ अपनी प्रियतमा
की सुधि भुला दी?
३६५ लम्बी-लम्बी रातें तुम्हारी इन्तजारी में
काट कर, तुम्हारी प्रियतमा विरह का जहर
खाकर प्राण त्याग देगी।

उसकी आँखों से अविरल अश्रुपात हो रहा है,—(अजी ओ बेरहम !)
चल, तुम्हारी प्रिया तड़प रही है
उसको गोद में विठाकर सान्त्वना दे;
यदि आज की रात तुमने प्रस्थान नहीं किया
तो तुम्हारी प्रिया नहीं रहेगी।"[१]

जीवन की बेसुरी बाँसुरी की तरह उसकी जादूभरी स्वर-लहरी गूँज रही है।

हृदय का कागज फाड़ कर और आँखों के काजल की स्याही में नख की कलम डुबोकर वियोगिन ने खत लिखा है। (कृत्रिम कागज पर स्वान इंक से आपने आधुनिकाओं को पत्र लिखते देखा होगा)। लेकिन लोक-दुनिया में हृदय के कागज और काजल की स्याही का ही स्वागत होता है। चोट पहुँचानेवाली पीड़ाएँ झांक रही है लोक-हृदय के इन झरोखों से। शान-शौकत ओर तड़क-भड़कवाली शैली से रहित वियोगिन की टीस का यह आलेखन तो देखिये। काजल ही स्याही का स्थान ले चुका है। लोक-दुनिया के ये काजल. जो नुकीली आँखों का स्वाद चखा करते हैं, अर्से से खंखड़ और उदास दिल के कागज पर प्रेम की तहरीर लिख रहे हैं। मजमून उठा कर देखिये। बे-अख्त्यार कर देने के मवस्सर तरीके उनमें मिलते हैं। ठेठ जीवन के जर्रे-जर्रे में तवादले हो गये, दिन-पर-दिन निकलते गये; लेकिन (तुलसी के— शून्य भीत पर चित्र रंग नहीं, तनु बिनु लिखा चितेरे की तरह) गँवारू औरतों की कटीली आँखों के काजल का रंग मिटा नहीं, आज भी लोक-मानस के पर्दे पर उनकी रंग-विरंगी झाँकियाँ हो रही हैं।

विरह के अधिकांश संदेशात्मक गीतों में प्रियतम का दीदयेयार हो, इस पर जोर नहीं दिया गया। विरहिणियों ने संदेशवाहक पक्षियों के द्वारा अपने प्रवासी साजन को जो सन्देश भेजा है, उनमें गहनो की ही

---

१. अध्याय 'तिरहुति',

फ़रमाइश की है। बन्धुवर श्री देवेन्द्र सत्यार्थी ने एक ऐसे ही गुजराती गीत की तारीफ की है। देखिये:

"—ओ कुञ्जलड़ी (कुञ्जलड़ी सारस या क्रौञ्च जाति का पक्षी है।)
यह मेरा सन्देश जाकर
मेरे बालम से कहना।
आदमी तो मुँह से बोलता
मेरे पंखों पर तुम सन्देश लिख दो ना!
हम उस पार के पंछी हैं।
उड़ते-उड़ते इस पार आ पहुँचे हैं हम!
कुञ्जलड़ी को प्रिय लगता है मीठा सागर
मोर को प्रिय है चौमासा;
राम और लक्ष्मण के प्रिय हैं सीता,
गोपियों के प्रिय हैं कृष्ण;
हम प्रेम-किनारे के पंछी हैं,
प्रीतम सागर बिना हम सूने हैं
'हाथ के नाप का चूड़ा लाना'—नारी सन्देश लिखती है:
'गुजरी' हाट में जाकर इस पर रत्न जुड़वाना!
गले के नाप का 'झरमर' गहना लाना
तुलसी की माला में मोती बँधा कर लाना!
पैर के नाप का 'कडला' गहना लाना।
काम्बियू (पैर का दूसरा गहना) में घुँघरू बँधवाना।[1]

लेकिन यहाँ इस मैथिली गीत में विरहिणी अपने प्रवासी साजन से न तो हाथ के नाप का चूड़ा चाहती है; और न गले के नाप का 'झरमर' गहना। उसका सन्तोषी हृदय तो सिर्फ प्रियतम से मिलने की ख्वाहिश रखता है, और निष्काम प्रेम की ही याचना करता है। मीर साहब के एक शेर में भी

---

१. 'गाये जा, ओ गुजरात'—'हंस' (मार्च, १९४०)

यही भाव जाग उठा है—'हर सुब्ह उठ के तुझसे, माँगूँ हूँ मैं तुझी को, तेरे सिवाय मेरा कुछ मुद्दआ नहीं है।'

इस गीत की नायिका ने प्रेम का संदेश भी अजीब बाँकपन के साथ लिखा है, जिसमें एक विचित्र आनन्द और सन्तोष है :

'अजी ओ बेरहम ! चल तुम्हारी प्रियतमा तड़प रही है। यदि आज की रात तुमने प्रस्थान नहीं किया, तो तुम्हारी प्रिया नहीं रहेगी।'

ऐसा लगता है कि अनजाने में ही घुणाक्षर न्याय की तरह यह सवाक् चित्र अंकित हो सका है। अमीर खुसरो ने भी एक शेर में यही झांकी इंगित की है : 'जान होटों पर आई हुई है, तू आ कि मैं जिन्दा बचा रहूँ। उसके बाद जब कि मैं न रहूँगा, तो तेरा आना फिर किस काम का होगा ?" 'हवा के पंख' और 'हृदय के कागज' में उत्कृष्ट मनोभावों की बिजली है। और 'हृदयक कागद फाड़िय देल' में कागज के साथ 'फाड़ना' क्रिया अँगूठी में नगीने की तरह जड़ गई है।

संदेशात्मक लोक-गीतों में संदेशवाहक पक्षियों का भी जिक्र आया है। पौराणिक आख्यान है कि दमयन्ती ने हंस को दूत बनाकर प्रियतम नल के पास अपना प्रेम-संदेश भेजा था। हिन्दी के आदि काव्य-ग्रन्थ 'रासो' के अनुसार संयोगिता ने सुग्गा के द्वारा पृथ्वीराज से प्रेम-संलाप किया। आस्ट्रिया की खानाबदोश जातियों में अबाबील को इस कार्य्य के लिए इस्तेमाल किया गया है। मिथिला में काक, कौवा, सुग्गा, कोयल आदि संदेशवाहक चिड़ियाँ सन्देश ले जाने के काम में लाई जाती रही हैं। काक और कौवा बड़े क्रूर पक्षी समझे जाते हैं, और लोग उनसे नफ़रत करते हैं। उनकी इस क्रूरता से घबड़ा कर ही शायद चाणक्य ने उन्हें 'पक्षियों में चांडाल' कहा है।

एक गुजराती लोक-गीत में विरहिणी काग से अनुरोध कर रही है—

कागा चुन-चुन खाइयो, बड़ी हड्डी का मांस,
अेक न खायो मोरी अँखियाँ मेरे पिया मिलन की आस।[1]

---

१. श्री झवेरचन्द मेघाणी 'लोक-साहित्य'

उत्तरी बिहार के एक लोक-गीत में भी विरहिणी के अन्तस्तल से यही आवाज आ रही है।

कागा सब तन खाइयो, चुन-चुन खइयो मांस,
दो नैना मत खाइयो, पिया मिलन की आस।
कागा नैन निकास दूँ, पिया पास ले जाय,
पहिले दरस दिखाइ कै, पीछे लीजौ खाय।

लेकिन एक मैथिली लोक-गीत में विरहिणी ने गाया है:

"रे काग, तू नित्य यही बोल कि मेरे प्रियतम आयेंगे। यदि आज मेरे प्राणनाथ मेरे उर-आँगन में आयें तो कनक-कटोरे में खीर और मीठे पकवान भर कर मैं तुझे खाने को दूँगी।

सोने से तेरी चोंच सँवारूँगी, और तेरे चरण मढ़ाऊँगी।

मेरी बाईं आँख फड़क रही है, और दाईं आँख रीती है। उन्हीं आँखों से तुझे नित्य निहारूँगी, और पहले से भी दूने प्रेम से तेरा प्रतिपाल करूँगी।

रे काग, तू भगवान श्रीकृष्ण की तरह मन को हरनेवाला है।

तेरी बोली अत्यन्त मीठी है।

कवि 'रमापति' (विरहिणी के शब्दों में) कह रहे हैं कि आज मेरी सारी अभिलाषाएँ पूरी हो गईं।"[१]

अमानुषिक क्रूरता के बावजूद काक और कौआ जीवन के आगामी वृत्तान्त बतलाने में निपुण माने गये हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि भविष्यवाणी कहने के वाञ्छनीय गुण से प्रेरित होकर ही कुल-ललनाओं ने अपने कोमल हृदय में इन्हें स्थान दिया है। जायसी ने भी अपने प्रसिद्ध ग्रन्थ 'पद्मावत' में नागमती के विलाप में काग को स्मरण किया है:

होइ खर बान विरह तनु लागा,
जो पिऊ आवै उड़ै तो कागा।

---

१. अध्याय 'तिरहुति'

सन्देशवाहक पक्षियों में कबूतर सब से तेज चलनेवाला हरकारा है। Book of Knowledge के अनुसार वह अपने चरण में सदेशात्मक पत्र लेकर सैकड़ों मील दूर आसानी से आ-जा सकता है:

"The homing pigeon flies hundreds of miles to its home, and carries messages tied to its legs."

मिथिला के एक दूसरे कथात्मक गीत—'ढोला-मारू' में मारू ने सुग्गा को सन्देशवाहक बना कर ढोला के पास अपना प्रणय-सन्देश भेजा है। मारवाड़, गुजरात, राजस्थान और पंजाब में विरहिणियों ने 'कुँजलड़ी' से सन्देशवाहक का काम लिया है। गुजराती लोक-साहित्य में पपीहे की दर्द-भरी रटन के प्रति भी खासा आकर्षण है। यह एक अजीब चिड़िया है। इसकी आवाज़ कर्णप्रिय मालूम होती है। बरसात में अमराई, हरियाले खेत या घनी पत्तियों के पर्दे में पपीहा बैठा नज़र आता है। और इस जोश-खरोश से चहकारता है कि सुन कर दंग रह जाना पड़ता है। निम्नलिखित गुजराती लोक-गीत में पपीहे की लगातार 'पियू-पियू' की रटन सुन कर किसी विरहिणी के दिल में ईर्ष्या का भाव जाग उठा है:

चाँच कटाऊँ पपइया रे, ऊपर कालो लूण।
पिव मेरा मैं पिव की रे, तू पिव कहै स कूण।

पियु तो मारा छे, अने हुँ पियू नी छुं। तुं पियु शब्द बोलनारो कोण? तारी चौंच कापी ने ऊपर मीठुं भभरावु।'

"पपइया रे पिव की वांणी न बोल
सुणि पावेली विरहिणी रे
थारी रालेली पाँख मरोड़

हे वपैया, तु 'पियु' ये शब्दों न बोल। कोई विरहिणी साँभणशे तो तारी पाँख तोडी नाखशे।

'विरहाग्निनी वेदना उच्चार तो वपैयो' शीर्षक लेख से; 'फुलछाब', १३ सितम्बर, १९४०

छोटा नागपुर के लोक-जीवन में कोयल और कौवे विरहिणियों के प्रणय-सन्देश उनके प्रियतम के हृदय तक ले जाते हैं:

[१]कुहु बोले हो कुहु बोले
कुहु बोले हो बिज्जुवन में
पिया के समाध मोरो ले-ले जाये रे
कओने भाषी बोले।

"कुहु-कुहु बोल रही है—कुहु-कुहु !!
कोयल 'कुहु-कुहु' कूक रही है विजन वन में !!
मेरे प्रियतम का सन्देश लेती जाओ, री कोयल !
कैसी अजनबी है तुम्हारी भाषा?"

[३]

मिथिला के विवाहकालीन लोक-गीत मुस्कान की गुलाबी आभा से प्रफुल्लित हैं। उनके प्रेम की शीतलता से लोक-हृदय की जलन शान्त हो गई है, जैसे जाग्रत और स्वप्न अवस्थाओं की वृत्तियाँ सुषुप्ति अवस्था में लीन हो जायँ। मुलाहिजा कीजिये:

"रानी कौशल्या और सुमित्रा ने कोहवर को
विविध प्रकार से सजाया,
और कैकेयी ने बड़े यत्न से आम के फले हुए गुच्छे के चित्र लिखे।
ऐसे ही चित्र-लिखित कोहबर में अमुक दूल्हा सोया,
और उसके साथ उसकी नवोढ़ा दुलहिन भी सोयी।
दूल्हा ने अपनी नवोढ़ा दुलहिन का घूँघट खोला, और पूछा—
तुम्हारे शरीर में कौन-कौन-से आभरण हैं?
दुलहिन ने कहा—हे सजन, तुम मेरी माँग का शृंगार हो,
मेरा देवर शंख का चुड़ला है;
मेरी सास मेरे गले का चन्द्रहार है, और देवरानी मेरा बाजूबन्द।
मेरा भाई मेरी आँखों का दिव्य नूर है,

मेरी ननद नोरंगी चोली है,
और मेरा भैंसुर (जेठ) मेरे ललाट का टिकुला है।
हे सजन, यही मेरे शरीर के आभरण हैं।"[१]

अलंकार की बेहूदी सजावट पर पारिवारिक प्रेम ने नवयुग का गरिमामय रंग चढ़ा दिया है और वह चित्र-लिखित कोहबर, जिसमें दाम्पत्य जीवन अपना अमंगल द्वैत, दैन्य भूल कर एक रूप हो जाता है, वैवाहिक प्रथा के रूढ़ि-ग्रस्त पथ पर विज्ञान की शत-शत किरणें बिखेर रहा है। भैंसुर (जेठ), सास, देवरानी, ननद, देवर तथा प्रियतम के प्रति नवोढ़ा दुलहिन के नैसर्गिक प्रेम ने उसकी माँग के टिकुले, गले के चन्द्रहार, बाजू के जोशन, शरीर की नौरंगी चोली, कलाई के चुड़ले, ललाट की इगुर-बिन्दी आदि पार्थिव रूप-आभरणों को फीका कर दिखाया है। और दूल्हा अपनी गृहिणी के घटाटोप घूँघट का अन्ध अवगुंठन उठा कर उसके प्रकृत स्वरूप को मान दे गया है। 'आभूषण मानवी अंगों का नैतिक भूषण नहीं',—यह मान्यता जैसे लोक-हृदय में युग-युग से प्रतिष्ठित होती आई है अथवा उसकी अविकच इच्छायें आकाश-बेलि की तरह विकास-विटप पर चढ़ने के लिए समय-समय पर बेहद हैरान हो उठी हैं।

श्री तृप्तनारायण ठाकुर-द्वारा संगृहीत और 'हंस' में प्रकाशित एक मारवाड़ी लोक-गीत के अजनबी कण्ठ से भी यही आवाज व्यापक हो उठी है। बहू सोलह शृंगार करके झमझम करती हुई महल से उतरी। सास कहती है कि अपने गहने पहन कर मुझे दिखाओ। लेकिन बहू ने तो सारे परिवार को ही अपना गहना मान लिया है। गीत में, लोक-जीवन की यह अमरवाणी नारी के प्राकृतिक मनस्तत्त्व का इजहार दे रही है:

"मधुवन में आम बौरा है, जो कि सारे मारवाड़ में फैल गया है।
हे सहेलियो, आम में बौर आ गया है।
बहू सोलह शृंगार करके झमझम करती हुई महल से उतरी—

---

१. 'लग्नगीत',

सास ने कहा—'हे बहू, अपने गहने पहन कर मुझे दिखाओ।'
बहू ने कहा—'हे सास जी, मेरे गहने की वात मत पूछो।
मेरा गहना तो सारा परिवार है।
मेरे ससुर जी घर के राजा हैं, और सास जी घर के भाण्डार॥
मेरे जेठ जी बाजूबन्द हैं, और जेठानी जी बाजूबन्द की लूम।
मेरा देवर मेरी हाथी-दाँत की चूड़ी है, और देवरानी उसकी टीप।
मेरा पुत्र घर का उजियाला है, और पुत्र-वधू दीप की ज्योति।
मेरी बेटी उँगली की अँगूठी है, और मेरा दामाद मौलसिरी का फूल
मेरी ननद कुसुम्भी चोली है, और ननदोई गजमुक्ताओं का हार।
मेरे प्रियतम सिर के सेहरा हैं, और मैं हूँ उनकी सेज का शृंगार।'
सास ने कहा—'बहू, मैं तुम्हारी बोली पर कुर्बान हूँ।
तुमने मेरे सारे परिवार को गौरवान्वित किया है।'
बहू ने कहा—'सास जी, मैं तुम्हारी कोख पर कुर्बान जाऊँ।
तुमने तो अर्जुन-भीम-जैसे पुत्र पैदा किये हैं,
और हे ननद! मैं तुम्हारी गोद पर कुर्बान जाऊँ।
तुमने तो राम और लक्ष्मण-जैसे भाइयों को गोद में
लाड़ लड़ाया है।"

मारवाड़ और मिथिला के लोक-गीतों का यह एकीकरण भारत के पारस्परिक भाव-साहचर्य्य का बेमिसाल नमूना है। टसर के कीड़े के समान नारी-संसार का शिलीभूत आनन्द अपने आलोक के जाल फैला कर इन गीतों के अन्तर्नयनों में उद्भासित हो रहा है। सुवर्ण के सूर्योदय से लोक मानस का उन्मीलित सरसिज खिल उठा है। उसकी चिर पुरातन ग्रन्थियाँ आँसुओं से साफ हो रही हैं, रक्त के फव्वारे से धुल गई हैं।

लोकगीतों की इस प्रगतिशीलता की उस ज्वालामुखी की फूत्कार से मिसाल दी जा सकती है, जिसकी धधक अपने रूप-विनिमय में आकस्मिक है; जिसकी विस्फोटक शक्तियाँ हजारों वर्षों से खामोश बेपरवाही के साथ

वैद्युतिक संगठन के साँचे में ढला करती है। युग के बाद युग आते हैं, और उसका दानवाकार गोफा प्रत्यावर्त्तन की घनीभूत नीहारिका से ठसाठस भर जाता है। अन्त में वह उस शीर्ष-विन्दु पर पहुँच जाता है, जहाँ उसका धमनी-स्फुरण, पृथिवी और वायु के निम्न चाप को अपनी गुरुता से डाँवाडोल कर देता है। उस समय वायव्य-पटल का बैरोमीटर अपनी चरम सीमा को स्पर्श करता है, और उसकी बन्दी शक्तियाँ गम्भीर कोलाहल करती हुई लोक-मण्डल को विस्फारित सा कर देती हैं।

जिस तरह विवाह-कालीन लोक-गीतों में प्रफुल्लता, विनोद और उल्लासमय वातावरण का आभास मिलता है, उसी तरह उनमें करुण-रस की मन्दाकिनी भी मन्द-मन्द प्रवाहित होती है। मिथिला के लग्न-गीतों में इस कोटि के गीत 'समदाउनि' के नाम से प्रसिद्ध हैं। इन्हें विवाह-संस्कार के बाद लड़की की बिदा के समय गाया जाता है। यह है उस गीत का भाव :

"कहाँ से यह डोली आई है, और कहाँ जायगी ?

उत्तर से यह डोली आई है, और दक्षिण जायगी।

जब डोली उत्तर की ओर चली, तब अपने बाबा की याद ताज़ी हो आई। मेरे बाबा मुझे पगड़ी के पेंच (तह) की तरह रखते थे। लेकिन हाय! अब यह डोली मुझे ससुर के राज्य में ले जायगी, जहाँ मैं घर की पोतन (मोटे कपड़ों की तह करके बाँधी गई एक किस्म की झाड़ू, जिसको भिगो कर आँगन लीपा जाता है।) हो जाऊँगी।

जब डोली पूरब की ओर चली, तब अपने पिता की याद तड़पाने लगी। मेरे पिता मुझे धोती के फेंट की तरह रखते थे। लेकिन हाय! अब यह डोली मुझे ससुर के राज्य में ले जायगी, जहाँ मैं घर की बोहारी हो जाऊँगी।

जब डोली पश्चिम की ओर चली, तब अपनी चाची की याद ताज़ी हो आई। मेरी चाची मुझे माँग के सिन्दूर की तरह रखती थी। लेकिन हाय! अब यह डोली मुझे ससुर के देश में ले जायगी, जहाँ मैं घर की चलनी हो जाऊँगी।

जब डोली दक्षिण की ओर चली, तब मुझे अपनी माँ की याद ताजी हो

आई। मेरी माँ मुझे जंगल के सुग्गे की तरह रखती थी। लेकिन हाय! अब यह डोली मुझे ससुर के देश में ले जायगी, जहाँ मैं पिंजड़े का सुग्गा हो जाऊँगी।"[१]

यह नवविवाहिता दुलहिन, जो नैहर से डोली में बैठ कर श्वसुर-गृह जा रही है, मिथिला के कौटुम्बिक जीवन का एक चित्र उपस्थित करती है। गीत के प्रथम, द्वितीय और तृतीय छन्द में वह बतला रही है:

'बाबा, पिता और चाची के राज्य में वह पगड़ी, धोती के पेंच, और सिर के सिन्दूर की तरह रहती थी। लेकिन श्वसुर के राज्य में वह घर की 'पोतन' 'झाड़ू' और 'चलनी' हो जायगी।

पिता से बाबा का स्नेह सन्तान पर ज्यादा होता ही है, यह मशहूर है, यद्यपि इसके अपवाद भी देखे जाते हैं। इसलिए कन्या का बाबा उसे 'पगड़ी' के पेच की तरह रखता है। पगड़ी सिर में तह-पर-तह देकर लपेट कर बाँधी जाती है। शरीर के अवयवों में सिर का स्थान सर्वोच्च है। पगड़ी तो सिर का ही श्रृंगार है। पहनावे के लिहाज़ से समाज की दृष्टि में पगड़ी को जो मान मिलता है, वही मान कन्या अपने बाबा से पाती है। पिता से वह कुछ कम मान पाती है। उसका पिता उसे धोती के फेंट की भाँति रखता है। धोती कमर में लपेट कर पहनी जाती है। सिर से कमर का स्थान नीचा है। चाची के राज्य में वह सिर के सिन्दूर की तरह रहती है। सिन्दूर सुहाग का चिह्न है। नारी-संसार में सिन्दूर का जो महत्त्व है, वही महत्त्व चाची की आँखों में कन्या का है। किन्तु, पट बदलता है। ससुराल जाने पर उसकी सुनहली आकांक्षायें कुसुम की कोमल पंखड़ियों की तरह कुचली जाती है। वहाँ वह घर की पोतन, झाड़ू, और चलनी हो जाती है; यद्यपि पोतन, झाड़ू और चलनी होकर भी वह कौटुम्बिक जीवन के मलिन आँगन को लीपती, बुहारती और चाल कर स्वच्छ करती है। विवाह का भारवाही

---

१. अध्याय समदाउनि',

बन्धन हजारों वर्षों से नारी-जीवन के गले में वबालेजान हो रहा है। सदियों से समाज का कलन्दर नारी को बन्दरी की तरह नचाता रहा है।

'नारी एक विषधर अहि के रूप में परिणत हो गयी है, नहीं तो पाषाण की अहल्या', उड़ीसा के प्रसिद्ध साहित्यकार कालिन्दीचरण पाणिग्राही ने लिखा है—कोई उससे डर कर दूर रहता है, अथवा कोई उसे देवी करने के उद्देश्य से पत्थर के रूप में रखता है; जो व्यक्ति नारी से दूर है, उसने उसे घृणा और अभिसम्पात दिया है, और जिसने उसे जड़ कर रक्खा है उसने कुछ भी करने को बाकी नहीं छोड़ा है। इसी भाव के द्वारा नारी ने पुरुष से जो निग्रह पाया है, वह किसी नीग्रो गुलाम के प्रति गोरे क्रिश्चियनियों के व्यवहार से लेश-मात्र कम नहीं है। जहाँ पर उसने असावधान होकर एक अन्य पुरुष को देख लिया है, वहाँ से उसकी आँखें बन्द कर दी जाती हैं; जहाँ किसी पुरुष ने उसको एक बार छू दिया है, वहाँ होती है उसकी अग्नि परीक्षा। सभी स्थानों में नारी को मूर्ख, अविवेकी, मूक और जड़ कर रखने के अतिरिक्त पुरुष ने उसकी पवित्रता सुरक्षित रखने का और दूसरा कोई सदुपाय नहीं खोजा है। नारी ने भी अपनी इस अवस्था को आशीर्वाद समझ कर पुरुष के प्रति प्रीति और भक्ति का निर्बोध परिचय दिया है, किंवा दैव का अभिशाप समझ कर चुप रह गयी है।'

गीत के चतुर्थ छन्द में दुलहिन कह रही है—माँ के राज्य में वह जंगली सुग्गे की तरह रहती थी। लेकिन हाय! ससुर के राज्य में वह पिंजड़े का सुग्गा हो जायगी।'

प्राणिमात्र को स्वाधीनता प्यारी है। स्वाधीनता का कालकूट भी मीठा लगता है, और पराधीनता का अमृत भी कड़वा। मनुष्य तो विवेकशील प्राणी है। पशु-पक्षी भी बन्दी-गृह में रहना पसन्द नहीं करते। 'पालतू पक्षी पिंजड़े में है, और स्वाधीन पक्षी जंगल में,' स्वर्गीय श्री रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने लिखा है—समय आने पर वे दोनों मिले; यही होन हार थी।' स्वाधीन पक्षी ने कहा—'प्रियतम, आओ जंगल को उड़ चलें।' पिंजड़े के पक्षी ने कहा—'भीतर आओ, हम दोनों इसी पिंजड़े में रहेंगे।' स्वाधीन

पक्षी बोला—'इन सीखचों के अन्दर पंख फैलाने के लिए स्थान कहाँ है ?' पिंजड़े के पक्षी ने कहा—'पर आकाश में बैठेंगे कहाँ ?' स्वाधीन पक्षी ने फिर कहा—'प्रियवर, जंगल के गीत गाओ।' पिंजड़े का पक्षी बोला—'मेरे पास बैठो, मैं तुम्हें विद्वानों की भाषा सिखाऊँ।' स्वाधीन पक्षी ने कहा—'भला, गीत भी कहीं सिखाने से आता है ?' पिंजड़े के पक्षी ने आह भरकर कहा—'पर मुझे तो जंगली गाने आते नहीं।' उनका स्नेह आकांक्षाओं से परिपूर्ण है, पर वे एक साथ उड़ नहीं सकते। पिंजड़े के सीखचों में होकर वे एक दूसरे को देखते हैं, पर उनकी एक दूसरे को पहचानने की आकांक्षा व्यर्थ है। वह पंख फड़फड़ाता है, और पुकारता है—'हो नहीं सकता। पिंजड़े की बन्द खिड़की से मुझे भय लगता है।' पिंजड़ेवाला पक्षी धीरे-धीरे कहता है—'मेरे पंख शक्तिहीन और मृतप्राय हो रहे हैं।'

नारी-जीवन परवशता के पिंजड़े में क़ैद होकर पालतू सुग्गे की भाँति निरुपाय हो गया है। उसके पंख अशक्त और मृतप्राय हो रहे हैं। उसकी आत्मा निस्तेज हो गई है। उपर्युक्त गीत की कवियित्री ने 'पोतन, झाड़ू, चलनी और बन्दी सुग्गे' इन तीन-चार शब्दों में ही युग-युग से प्रपीड़िता गृहिणी के भग्न-मनोरथ और भयाक्रान्त जीवन का नग्न चित्र खींच दिया है। उसने बूँद में बाड़व की जलन भर दी है। उसके दर्दनाक शब्दों में केवल मिथिला ही नहीं, समग्र नारी-समाज के हृदय की कातर वाणी गूँज उठी है। गीत में अन्धकार की अतल गुहा-सी झाँकती हुई नारी-समाज की लाख-लाख आँखें, जिनसे नैराश्य और विवशता का सागर उमड़ा पड़ता है, मन्वन्तर तक—कदाचित् विधाता की इस जीर्ण सृष्टि के बाद भी अन्तरिक्ष के शून्य अंचल में बर्छी की तीखी नोक की तरह चुभती रहेंगी। और गीत के ये चार शब्द (पोतन, चलनी, झाड़ू, और बंदी सुग्गे) पुरुष-वर्ग के निर्मम अत्याचार के सवाक् स्मारक के रूप में मानवी के पाशवी पीड़न का विज्ञापन करते रहेंगे।

मिथिला के कितने ही लग्न-गीतों में मानव की चिर सहधर्मिणी नारी की न जाने कितनी सुखद स्मृतियाँ अपूर्ण रुचि बन कर हारिल पञ्छी-सी

निराधार गगन में मँडरा रही है, और विकृत वक्र रेखाओं से सृजित उसका अशान्त भाग्य लू के झुलसे हुए पत्र-सा चहारदीवारी के सूने कोनों में कसक-भरी हिचकी ले रहा है। उसकी पद-विजड़ित लालसा युग-युग से चिनगारी सी डहक-डहक कर समाज की खोखली शून्यता में विलीन हो जाती है। तो भी करुणा-विगलित उसकी पुकार का कोई उत्तर नहीं मिलता। उसकी किस्मत में तो घोर अन्धकार है। छठी की रात्रि में ही जिसकी तकदीर की लिपि धूमिल कर दी गई, उसके जीवन में प्रकाश कहाँ?

पुत्र-पुत्री के वैषम्य का एक करुण चित्र देखिये। जीवन के एक ही सिक्के के दो पहलुओं को लोक-गीत की रचयित्री ने इस दर्दनाक ढंग से व्यक्त किया है कि उन पर वाल्मीकि के सैकड़ों करुण श्लोक न्यौछावर किये जा सकेंगे। सुनिये:

"बेटी ने पूछा—'हे माँ, किस वस्तु के अभाव में चावल नहीं गला, और किसके बिना आँख में नींद नहीं आई।'

माँ ने कहा—'हे बेटी, दूध के अभाव में चावल नहीं गला, और पुत्र के बिना आँख में नींद नहीं आई।'

'हे बेटी, जिस दिन तुम्हारा जन्म हुआ, उस दिन भादों की अँधेरी रात थी। तुम्हारी दादी का चित्त उदास था। उसने घर-घर के द्वार बन्द कर शोक मनाया। तुम्हारी फूआ आगबगूला हो गई, और सिर से पैर तक चादर लपेट कर सो गई। और मैंने जंगल के गीले कण्डे लेकर अँगीठी जलायी तथा बड़ी बेचैनी में रात काटी।

'लेकिन, हे बेटी, जिस दिन मेरे पुत्र का जन्म हुआ, उस दिन पूर्ण चाँद खिल गया। तुम्हारी दादी बाँसों उछल पड़ी। उसने घर-घर के द्वार खोलकर उत्सव मनाये। तुम्हारी फूआ आनन्द-विह्वल हो गई। सखियों ने मिल कर मंगल-गान गाये। तुम्हारे पिता बड़े प्रसन्न हुए और कठौता-भर मुहरें दान कीं। और हे बेटी, मैंने सुगन्धित धूप भर कर अँगीठी जलायी तथा बड़े सुखपूर्वक रात काटी।'

'पुत्र तो पिता की सम्पत्ति का पूरा अधिकारी है, पर कन्या कुछ भी नहीं',

बंकिम बाबू अपने 'साम्यतत्त्व' नामक ग्रन्थ में लिखते हैं—"पुत्र और कन्या, दोनों का एक ही औरस, और एक ही गर्भ से जन्म होता है, दोनों ही के लिए माता-पिता एक ही प्रकार का यत्न करते हैं, और दोनों के प्रति एक ही प्रकार का कर्त्तव्य कर्म है। लेकिन पुत्र तो पिता की मृत्यु के बाद उसके करोड़ों रुपये शराबखोरी बगैरह में फूँक दे, पर कन्या सख्त जरूरत होने पर भी उसमें से एक कानी कौड़ी तक न पासके इस नीति का जो कारण हिन्दू-शास्त्रों में ठहराया गया है, वह यह है कि जो श्राद्ध करने का अधिकारी है, वही सम्पत्ति का उत्तराधिकारी है। यह ऐसा ऊटपटांग और गैर-मुनासिब सिद्धान्त है कि इसकी युक्ति-हीनता दिखलाना बेकार है।"

मिलन के उद्यान में, वियोग के दावानल से ही नवीन अंकुर फूटता है, जैसे डाली में काँटे के साथ फूल भी खिलते हैं। वियोग तो मानव-आत्मा का नित्य का भोजन है। वियोग का तिक्त घूँट पीकर ही सांसारिक जीवन मीठा होता है। लोक-साहित्य भी इसी शाश्वत नियम का वशवर्त्ती है। उसमें धूप है, तो छाँह भी। मिलन है, तो वियोग भी। प्रान्त-प्रान्त और देश-देश के लोक-साहित्य में वियोग के वेदनामय गीतों को स्थान मिला है। पंजाब के एक विदाकालीन लग्न-गीत में कन्या ने अपने पिता से कहा है:

साँडा चिड़ियां दा चम्बा वे,
बाबल असीं उड़ जानाँ।
साडी लम्बी उडारी वे,
बाबल के हडे देश जानाँ।
तेरा चौका भाण्डा वे,
बाबल तेरा कौन करे?
तेरा महलाँ दे बिचबिच वे,
बाबल मेरी माँ रोवें!

"हे पिता, मैं तो पंछी हूँ। मुझे तो एक दिन उड़ जाना है, मेरी उड़ान लम्बी है—मैं उड़ कर न जाने किस अनजाने देश में जाऊँगी। हे पिता,

मेरी ग़ैरहाज़िरी में न मालूम तुम्हारी रसोई कौन राँधेगा? हाय! तुम्हारे महल में मेरी माँ बिसूर रही है।"

पोलैन्ड देश में कन्या को विदा करते समय उसकी सखी कह रही है:

"Barbara, it is all over, then you are lost to us; you belong to us no more"[१]

"बारबरा, सारे सुनहले अरमान खाक में मिल गये। क्योंकि हमने तुम्हें हमेशा के लिए खो दिया। हाय! अब तुम हमारी नहीं रही।"

नैहर से ससुराल जाती हुई गुजरात की एक कन्या कहती है:

> **अमे रे लीलुडा बननी चर कलड़ी**
> **उडी जाशुं परदेश जी**
> **आज रे दादा जी ना देश माँ**
> **काले जाशुं परदेश जी**[२]

"मैं तो हरे-भरे जंगल की पंछी हूँ। उड़ कर परदेश चली जाऊँगी। आज दादा जी के देश में हूँ, कल परदेश चली जाऊँगी।"

स्वर्गीय श्री रवीन्द्रनाथ ठाकुर की अमर कृति 'कच-देवयानी' के संलाप में कच के विदा लेने के समय देवयानी ने आहें भर कर कहा है—'वर्षों से इस उपवन ने तुम्हें छाया दी है, मधुर संगीत सुनाया है, क्या इसे त्याग देना तुम्हारे लिए इतना सरल है? क्या तुम्हें नहीं जान पड़ता कि यहाँ का पवन साँय-साँय करके रो रहा है, और यहाँ की सूखी पत्तियाँ मृत्युगत आशाओं के प्रेत के समान हवा में इधर-उधर झोंकें खा रही हैं, और तुम, केवल तुम—जो हमको छोड़े जा रहे हो—मुसकरा रहे हो, तुम्हारे ही होंठों पर हँसी है?'

विवाह के किसी-किसी गीत में समाज की अत्यन्त उन्नत अवस्था का परिचय मिलता है। उसके अनुसार तत्कालीन वैवाहिक व्यवस्था भौतिक

---

१ H. N. Hutchinson, *Marriage Customs in many Lands*.

२. लोक-साहित्य : लग्न-गीतोना ध्वनि, पृष्ठ १८३

परिसरों (Environments) की आधार-शिला पर अवलम्बित है। उसकी वैषयिक पेलवता (Sexual delicacy) आधुनिक शिष्ट सभ्यता की अपेक्षा अधिक चेतनात्मक है। यहाँ जिस समय का चित्र दिया गया है, उस समय वर और कन्या का विवाह स्वयं उनकी ही रजामन्दी पर निर्भर था। धार्मिक गपोड़ेबाजी, पौराणिक (Mythological) ढकोसला और जात-पाँत की संकरता उस समय विवाह के प्राकृत मार्ग में रोड़े नहीं बिछाती थी। इस लड़ी में गूथे हुए मिथिला और छोटा नागपुर के अनेक लग्न-गीत हैं, जिनमें विवाह की ओर प्रेरित करनेवाली सौन्दर्य्योपासना अपने मनो-वैज्ञानिक रूप में विकसित हुई है।

जितना ही हम लोक-साहित्य के प्राचीन-से-प्राचीनतम लग्न-गीतों के इतिहास का अध्ययन करते हैं, उतना ही विवाह-सम्बन्धी नियमों की मानसिक दशा में बौद्धिक शक्ति के विकास का आभास मिलता है। और, जैसे-जैसे समाज के रूप में रूपान्तर होता है, वैसे-वैसे लग्न-गीतों में विवाह की उपादेयता भी विकृत होती जाती है। आज वैवाहिक प्रथा का जो नग्न कलेवर हमारे सामने प्रत्यक्ष है, वह उसका नैसर्गिक कलेवर नहीं, अपितु उपर्युक्त मान्यता के अनुकूल अधोमुखी सभ्यता का शुष्क कंकाल-मात्र है।

[४]

लोक-गीत की दुनिया में पीड़ित किसानों तथा क्षुधार्त्त श्रमजीवियों के प्रति भी सहानुभूति उमड़ पड़ी है। जीवन की छाया की पार्श्वभूमि में मानवता का जीर्ण-कंकाल झांकता-सा प्रतीत होता है। दुःखान्त पीड़ा का यह भावचित्र मन में विषाद का गम्भीर गाढ़ रंग भर रहा है, और रुढि-पाश में बन्दी मानवता मुक्ति के लिए चीत्कार कर रही है—

"ओ भोले शंकर, तुमने मेरे दिन कितने दुखद बनाये?
जो थोड़ी-बहुत खेती बाड़ी थी वह भी तुमने छीन ली।
और तो और, मेरे सगे भाइयों ने भी—
मुझसे बँटवारा कर लिया।

घर में खर्ची नहीं है,
और बाहर ऋण नहीं मिलता।
यहाँ तक कि गाँव का जमींदार
रात में चैन की नींद नहीं सोने देता।
एक ही लोटा है, और भाई तीन हैं।
अतः पानी पीने के वक्त छीना-झपटी होती है।
एक बैल बच गया था,
जिसको महाजन ने ऋण में हड़प लिया।
हाय! हित-मित्र और अपने सगे-सम्बन्धी भी,
पराये हो गये।"[१]

दैन्य से जर्जर और अधिकार पद से च्युत मानव-हृदय इन दर्दनाक पंक्तियों में पाशविक अर्थ-भित्ति का विरोध कर उठा है, और सहसा मेरा ध्यान उस दृश्य की ओर ले जाता है जो अमेरिका के प्रसिद्ध कवि एडविन मार्खम की 'The Man with the Hoe' शीर्षक रचना में चित्रित हुआ है :

"सदियों के भार से जिसकी कमर टेढ़ी हो गयी है, और जो फावड़े के सहारे झुका हुआ जमीन में दृष्टि गड़ाये है।

जिसके चेहरे पर युग-युग की शून्य लिपि अंकित है और जो अपनी जर्जरित पीठ पर दुनिया का बोझ ढो रहा है।"

युग-युग से गरीबों की भूख पर धूल डाल कर मिष्टान्न उड़ानेवाला स्वार्थी संसार सामाजिक विषमता के इस निर्मम क्रीड़ा-चक्र को आँखें फाड़-फाड़ कर देख रहा है, और युग-युग से अन्धकार-कर्दम में रुद्ध मानवता जगत की निर्मातृ शक्ति से न्याय की भीख माँग रही है।

मिथिला के एक दूसरे लोक-प्रिय गीत में जमींदारों की पाशविकता, उनके कारिन्दों की कठोर-हृदयता, मजदूरों की बेबसी और उनके बच्चों

---

१. 'नचारी',

के क्रन्दन का सजीव चित्र खींचा गया है। यह गीत मिथिला में वैशाख और जेठ महीने में, जब कभी पानी नहीं बरसता और दुर्भिक्ष की सम्भावना दीखती है, चाँदनी रात में गाया जाता है। उसके निम्न लिखित भाव हैं:

"हे इन्द्र देवता, रिमझिम बरसो
क्योंकि पानी के बिना दुर्भिक्ष पड़ गया है।
हरे-भरे मैदान सूख गये।
नदी-नाले और तालाब मरुभूमि-से दीखने लगे,
और मेरे भाई के हरी फसल से भरने वाले खेत भी ऊसर हो गये।
हाय! विधवा ब्राह्मणी भी हल जोतने लगी,
लेकिन पानी के बिना, जमीन के पत्थर-सी—
कड़ी हो जाने के कारण फाल उछल-उछल कर
आड़ियों में लग जाती है।
हे इन्द्र, देवता, झम-झम बरसो,
पानी के बिना दुर्भिक्ष पड़ रहा है।
सिर्फ धोबी के आँगन में ही—
कुछ गँदला और मैला पानी रह गया है।
उसी गँदले अपवित्र जल में ब्राह्मण स्नान कर रहे हैं,
और, उसी मैले पानी से वे धोती कचारते,
जनेऊ सोंटते और रच-रच कर चन्दन लगाते हैं।
हे इन्द्र देवता, रिमझिम बरसो,
पानी के बिना दुर्भिक्ष पड़ रहा है।
मजदूरों के छोटे-छोटे बच्चे—
भूख से किलबिल कर रहे हैं,
लेकिन उनके मालिक अपनी—
खत्तियों को नहीं खोलते!
और तो और, गाँव के पटवारी भी—
झूठ-मूठ गरीबों के सिर कर्ज का बोझ,—

लाद कर अन्धेर कर रहे हैं,
और मजदूरों की मजदूरी में,
सड़ी-गली खेसारी तोलते हैं।
हे इन्द्र देवता, झमझम बरसो,
पानी के बिना दुर्भिक्ष पड़ रहा है!'[१]

लोक-गीत में वर्ग-हीन सामाजिकता का सूक्ष्म निरूपण आज से नहीं,

---

१. "हाली-हुलु बरसू इनर देवता
पानी बिनु पड़इछइ अकाले हो राम!
चओर सूखल, चाँचर सूखल
सूखि गेल भाय के जिराते हो राम!
राँड़ी बभनिया हरवा जोतइछथि
फरवा उलटि अड़िया लगइछइ हो राम!
हाली हुलु बरसू इनर देवता
पानी बिनु पड़इछइ अकाले हो राम!
धोबियाक अंगना में गादर-गुदर पनिया
ओहि में नहाये सभ बभना हो राम!
धोतिया फींचल, जनेउआ सोंटल
रचि-रचि तिलक चढ़ावे हो राम!
हाली हुलु बरसू इनर देवता
पानी बिनु पड़इछइ अकाले हो राम!
जनमा के धिया-पुता कल्ह-मल्ह करइछइ
मालिक सभ बेढ़ियो न खोलइछइ हो राम!
गाँव के पटवरिया झूठे-मूठे लिखइछइ
सरले खेसारी बन तौलइछइ हो राम!
हाली हुलु बरसू इनर देवता
पानी बिनु पड़इछइ अकाले हो राम!"

सदियों से होता आया है, अथवा यों कहिये कि एकाधिकार और व्यक्तिगत उत्पादन-शक्ति का विकास होने के साथ ही लोक-गीत भौतिक आवश्यकताओं की एकता की घोषणा कर रहे हैं। जीवन के अखिल उपकरण मानव-सन्तान का पैतृक स्वत्व तो हैं नहीं। इनका उद्गम-स्थान है प्रकृति का उदार हृदय। तभी उसने अपने स्वच्छ मानस-दर्पण में लोक-जीवन की प्रतिच्छाया अंकित कर ली।

छोटा नागपुर की 'मागे और फायगु' शैली के लोक-गीतों में उस जमाने की तसवीर भी मिलती है, जब प्रकृति की सद्यः फली-फूली क्यारियों के फूलों तक पर व्यक्तिगत अधिकार था। भूस्वामियों की बग़ैर इजाज़त के न तो कोई फूलों की पंखड़ी तोड़ सकता था, और न कोई पहाड़ी और गोचर भूमि पर स्वच्छन्दतापूर्वक विचर सकता था:

राजा के पोखर किनारे एक चम्पा का गाछ है जी!
झर-झर चूता है चम्पा का फूल
बेली और चमेली के फूल भी बगीचा में लहराते हैं
एक कली का फूल
दो कली का फूल
न दोकड़ा है मेरे पास,
और न दमड़ी
हाय, कैसे खरीदूँगी चम्पा का फूल मैं
और कैसे पहनूँगी बेली का फूल।'

स्वार्थ-लिप्सा ही विश्व-सभ्यता का मापदंड बन बैठी है। लोक-उपवन का यह फूल, जो सामाजिक समता का समापन करता है, सामूहिक जन-जीवन के कलेजे में शूल की तरह चुभ रहा है। उसकी गुलाबी पंखड़ियों में गन्ध पर्याप्त मात्रा में है, लेकिन वह अपनी महक के मतवाले मधुपों के रिक्त हृदय-घट में मधु-वर्षण नहीं कर सकता। सृष्टि अपने रंगीन चोले में निखर उठी, लेकिन उसका अन्तररूप दानवी तुफ़ैल के शिकंजे में गिर-फ्तार रहा; आज भी उसकी वह बेढंगी रफ्तार जारी है, जो पहले

थी। उसके तमाच्छन्न मस्तिष्क में विवेक का प्रकाश नहीं। मरणासन्न छिद्र तो अनन्त हैं; भौतिक विश्व का अन्ध-चक्षु सत्य को टटोल रहा है। वैज्ञानिक सभ्यता की चमक-दमक उसके अभियान-पथ में प्रकाश बिखेर रही है। कभी-न-कभी मानव संसार में सौन्दर्य का प्रसार होगा ही।

—रामइक़बालसिंह 'राकेश'

रहे थे। कलाइयों में कंकण शोभित थे, और कमर में करधनी की लड़ियाँ लटक रही थीं।

उस समय बंदीगृह के सभी दरवाजे बंद थे। उनमें किवाड़ और ताले जड़े थे। किंतु, वसुदेव श्रीकृष्ण को गोद में लेकर ज्योंही उनके निकट पहुँचे, त्योंही वे दरवाजे अपने-आप खुल गये। उस समय बादल बरस रहे थे। बिजली कौंध रही थी। इसलिए शेषजी फनों से जल को रोकते हुए श्रीकृष्ण के पीछे-पीछे चलने लगे। यमुना का प्रभाव भी गहरा और तेज हो गया था। तरंगों के कारण जल पर फेन-ही-फेन हो रहा था। यमुना ने वसुदेव को मार्ग दे दिया। वह अपने पुत्र को यशोदा की शय्या पर सुल कर, उनकी नवजात कन्या लेकर बंदी-गृह में लौट आये और पहले की तरह पैरों में बेड़ियाँ डाल बंदीगृह में बन्द हो गये।

नवजात शिशु के रोने की आवाज सुनकर द्वारपालों की नींद टूटी। जब कंस को इसकी खबर मिली तो वह बड़ी शीघ्रता से सूतिका-गृह की ओर झपटा। कंस को आते देख कर देवकी ने कन्या को गोद में छिपा कर कन्या के प्राण-दान की याचना की। पर कंस दुष्ट था। उसने देवकी को झिड़क कर उनके हाथ से वह कन्या छीन ली, और उसे जोर से एक चट्टान पर दे मारा। परंतु, वह कोई साधारण कन्या तो थी नहीं, देवी थी। कंस के हाथ से छूटकर आकाश में चली गई, और बड़े-बड़े आठ हाथों में आयुध लिए दीख पड़ी। उस समय उसने कंस से कहा—'रे मूर्ख, मुझे मारने से तुझे क्या मिलेगा। तेरे पूर्व जन्म का शत्रु तुझे मारने के लिए किसी स्थान पर पैदा हो चुका है।'

देवी की यह बात सुन कर कंस को असीम आश्चर्य हुआ। उसने उसी समय देवकी और वसुदेव को कैद से छोड़ दिया।

यह 'सोहर' प्रसिद्ध मैथिल कवि पंडित मंगनीराम झा कृत है। इनका जन्म सन् १६८७ में पदुमकेर ग्राम में हुआ था। पदुमकेर चम्पारन जिले में मोतिहारी से २० मील पूरब तथा सीतामढ़ी से चौदह मील पश्चिम है।

जनेऊ के गीत

जनेऊ शब्द यज्ञोपवीत (यज्ञ + उपवीत) का रूपान्तर है। जनेऊ का पर्यायवाचक एक शब्द और है--उपनयन। उपनयन का अर्थ है--सामीप्य प्राप्त करना। ब्रह्मचर्य, विद्या, शौर्य और तेज की प्राप्ति के लिये प्राचीनकाल में यज्ञोपवीत पहना जाता था। खादिर, गोभिल और हिरण्य-केशिन गृह्यसूत्रों के अनुसार वाम कन्धे पर पहना जाता तो यज्ञोपवीत, और दाहिने कन्धे पर पहना जाता तो प्राचीनावीत कहलाता था। पहले कपास के सूत्र के अभाव में वस्त्र और कुश की रस्सी भी यज्ञोपवीत के स्थान पर प्रयुक्त होते थे। आश्वलायन गृह्यसूत्र के देखने से प्रतीत होता है कि जिस दिन जन्म हुआ हो या गर्भ रह चुका हो उसके आठवें वर्ष में ब्राह्मण का, जन्म या गर्भ से ग्यारहवें वर्ष में क्षत्री का और बारहवें वर्ष में वैश्य का यज्ञोपवीत होना चाहिये--

'अष्टमे वर्षे ब्राह्मणमुपनयेत् (१)
गर्भाष्टमे वा (२)
एकादशे क्षत्रियम् (३)
द्वादशे वैश्यम् (४)

ब्राह्मण का बसन्त में, क्षत्री का ग्रीष्म में और वैश्य का शरद ऋतु म यज्ञोपवीत होता है। यज्ञोपवीत के एक दिन पहले ब्रह्मचारी व्रत करता है। उन व्रतों में ब्राह्मण के लड़के एक या अनेक बार दुग्ध-पान करते हैं। क्षत्री के लड़के यव को मोटा दल कर गुड़ के साथ पतली कढ़ी बनाकर पीते हैं, और वैश्य के लड़के दही में श्रीखण्ड और केसर डाल कर भूख लगने पर पीते हैं, और अन्य कोई पदार्थ नहीं खाते--

'पयोव्रतो ब्राह्मणो यवागूव्रतो राजन्य आमिक्षाव्रतो वैश्यः।'

शतपथ ब्राह्मण

इस अवसर पर गाये जानेवाले गीतों की लय, ध्वनि, टेक और ढब-छब अन्य गीतों की अपेक्षा भिन्न होती है। छन्द, भाषा, उपमा, उपमेय साधारण; सहज सादगी से ओतप्रोत—

(१)

समुआ बइसलि थिकौं कोन बाबा सुनु बाबा बचन हमार हे
हमरो के दिउ बाबा जनेउआ हमें हएब ब्राह्मण हे
कोना क आरे बरुआ गंगा नहयवह कोना करब नेमाचार हे
कोना क वरुआ गायत्री सुनयबह वंश के हयत उधार हे
नित उठि आहे बाबा गंगा नहायब नित्य करब नेमाचार हे
साँझ दुपहरिया बाबा गायत्री सुनायब वंश के हयत उधार हे

'हे शामियाने में बैठे हुए मेरे पिता, मेरा यज्ञोपवीत संस्कार कर दो। मैं ब्राह्मण बनूँगा।'

पिता ने कहा—'हे ब्रह्मचारी, अभी तुम्हारी उम्र कच्ची है। अगर तुम्हें जनेऊ दूँ तो तुम किस तरह गंगा नहाओगे। किस तरह यज्ञोपवीत-संस्कार के दिन की गई प्रतिज्ञाओं का पालन करोगे, और किस तरह गायत्री-पाठ कर कुल का उद्धार करोगे?'

ब्रह्मचारी ने कहा—'हे पिता, मैं नित्य उठ कर गंगा-स्नान करूँगा। नित्य नियमानुसार यज्ञोपवीत-संस्कार के दिन की गई प्रतिज्ञाओं का पालन करूँगा, और नित्य प्रातः और संध्याकाल गायत्री-पाठ करूँगा जिससे कुल का गौरव बढ़े।'

जनेऊ धारण करने के अवसर पर की गई प्रतिज्ञाओं का अल्पवयस्क बालक भली भांति पालन नहीं करते। पंडित और बड़े बूढ़े तक ब्रह्मचर्य व्रत का संकल्प करके उन नियमों का पालन नहीं करते। प्रायः देखा जाता है कि उपनयन संस्कार केवल एक स्वांग की तरह कर लिया जाता है।

ब्रह्मचारी कुछ घंटों में ही स्नातक बन कर उसी दिन ब्रह्मचर्याश्रम को त्याग गृहस्थ बन जाता है। जब बालक का शरीर और बुद्धि ऐसी हो कि वह पढ़ने के योग्य हो जाय तब यज्ञोपवीत देना चाहिये। इस गीत में बालक अपने पिता से जनेऊ देने के लिए अनुरोध कर रहा है। पिता जनेऊ के समय की प्रतिज्ञाओं की याद दिला कर उसकी पात्रता में सन्देह करता है।

(२)

जाहि वन सिकियो ने डोलय बाघिन दहारयु रे
ललना ताहि वन पइसलन कोन बाबू आँगुरि धयल कोन बरुआ रे
पहिले जँ मारलन मिरिगवा मिरिगछाल चाहिये रे
ललना तब जाय तोरलन पलसबा पलासदंड चाहिये रे
ललना तब जाय चिरलन मुजेलिया मुजेलि. डाँरा चाहिय रे
कहाँ शोभइन बाबू कें मिरिगबा मिरिगछाला चाहिय रे
ललना कहाँ शोभइन बाबू के पलसबा पलासदंड चाहिय रे
ललना कहाँ शोभइन बाबू के मुजेलिया मुजेलडाँरा चाहिय रे
ललना कान्हे शोभइन बाबू के मिरिगबा मिरिगछाला चाहिय रे
ललना हाथ शोभइन बाबू के पलसवा पलास दंड चाहिय रे
ललना डाँर शोभइन बाबू के मुजेलिया मुजेलडाँरा चाहिय रे

हे सखी, जिस वन में तृण नहीं डोलते, और बाघिन दहाड़ती है उस विजन वन में अमुक पिता अपने अमुक ब्रह्मचारी की उंगली पकड़ कर गये।

हे सखी, वहाँ उनने पहले मृगछाला के लिए मृगा मारा। पलाश दंड के लिए पलाश की डाली तोड़ ली; और हे सखी, अंत में मुञ्ज के डाँड़े के लिए मुञ्ज की पतली पत्तियाँ चीर लीं।

हे सखी, व्रती ब्रह्मचारी के किस अंग में मृगछाला सुशोभित होगा? किस अंग में पलाश दंड; और हे सखी, उसके किस अंग में मुञ्ज का डाँड़ा विभूषित होगा?

हे सखी, ब्रह्मचारी के कन्धे पर मृगछाला सुशोभित होगा। हाथ में पलाश दंड, और कमर में मुञ्ज का डाँड़ा।

ब्राह्मण के बालक को पलाश का, क्षत्रिय को वट का, वैश्य को गूलर के वृक्ष का दंड देने का नियम है। दंड चिकने और सीधे होते हैं। अग्नि में जले या कीड़ों के खाये हुए नहीं। कमर में मुञ्ज का डाँड़ा, बैठने और पहनने के लिए एक मृगचर्म, जल पीने के लिए एक जलपात्र, एक उपपात्र और एक आचमनीय ब्रह्मचारियों को देने का विधान है।

(३)

कथिअहिं मरवा छवाओल कथिए झिनन लागु हे
कथिअहिं खम्भ गराउ त कथिए कलस धरू हे
बँसवहिं मरवा छवाओल मोतिए झिनन लागु हे
केरा केर थम्भ गराओल तामे क कलस धरू हे
केहि जँ मोढ़ा चढ़ि बइसल केहि मंगल गावथु हे
ककरहिं हयत जनेउआ त देव लोग हरसित हे
मोढ़ा चढ़ि बाशिठ बइसल कोशिला मंगल गावथु हे
आहे राम जी के छइन जनेउआ त देव लोग हरसित हे

किस वस्तु से मंडप छाया गया है? किस वस्तु की झांझ लगी है? उसमें किस वस्तु के खम्भे हैं? और किस धातु के कलश रक्खे गये हैं?

हरे बाँस से मंडप छाया गया है। मोतियों की उसमें झांझ लगी है। कदलि के थम्भ के खम्भे हैं, और ताम्बे का कलश रक्खा गया है।

कौन मोढ़ा पर बैठा है? कौन मंगल गा रही हैं? किस ब्रह्मचारी के यज्ञोपवीत-संस्कार की यह धूम-धाम है जिससे देवता प्रसन्न होकर उत्सव मना रहे हैं?

मुनि वाशिष्ठ मोढ़ा पर बैठे हैं। कौशल्या मंगल गा रही हैं। राम के यज्ञोपवीत-संस्कार की यह धूमधाम है जिससे देवता प्रसन्न होकर उत्सव मना रहे हैं।

(४)

छोटि-मोटि आम गछुलिया त ओर मलडाढ़
ताहि तर कओन वरुआ धरथिन ध्यान

भर दिन वरुआ धयलन्हि ध्यान
साँझ केर बेर वरुआ करथि असनान
समुआ वइसल बाबा कोन बाबा
मुखहुँ जे बोलए वरुआ जनेऊ त दिऊ
देवौं जनेऊआ वरुआ हरिद्वार जाय
नीक लगन सोचाय

आम का छोटा-मोटा गाछ। मंजरी से लदा हुआ। उसीके नीचे अमुक ब्रह्मचारी ध्यान कर रहा है। दिन-भर उसने ध्यान किया, और संध्या को स्नान।

ब्रह्मचारी ने कहा—'हे शामियाने में बैठे हुए मेरे पिता, मुझे जनेऊ दे दो।'

पिता ने कहा—'हे ब्रह्मचारी, मैं कोई शुभ लग्न विचार कर हरिद्वार में तुम्हारा यज्ञोपवीत संस्कार कर दूँगा।'

घर पर जनेऊ न देकर कोई-कोई तीर्थ-स्थानों में जाकर भी ब्रह्मचारी को जनेऊ देते हैं।

(५)

बँसवा जे काँपथि अकाश बिच पुरइनि जल-बिच हे
मड़वहि कँपथिन कोन बाबू अपना गोतिया बिनु हे
हाथि चढ़ि अवथिन कओन मामा डाँड़िय कओन मामी हे
नील घोड़ा अवथिन कओन भइया डाँड़िय कओन भउजो हे
तब मोरा मनमा हुलास भइया भउजो अयताह हे

जिस तरह आसमान में बाँस और जल के बीच कुमुदिनी के पत्ते काँपते हैं, उसी तरह अपने दैयादों के न आने से मंडप में अमुक पिता काँप रहे हैं।

पति को चिन्तातुर देख कर पत्नी कहती है—'हे पति, तुम चिन्ता मत करो। डोली में अमुक मामी और हाथी पर बैठ कर अमुक मामा आयेंगे, और मंडप की शोभा बढ़ायेंगे।

डोली में अमुक भावज और नील घोड़े पर चढ़ कर अमुक भाई आयेंगे, और भाई और भावज को देख कर मन प्रफुल्लित होगा।'

(६)

वेदी बइसल छथि कओन बरुआ बहिन बहिन करु हे
आवथु बहिन सुहागिन लापरि परिछथु हे
किए बहिन पहिनव पहिरन अओरो किए ओढ़न हे
कओन बसतर अहां पहिनव लापर परिछब हे
नये हम पहिनव पहिरन नये किछु ओढ़न हे
पिअरि बस्तर हम पहिनब लापर परिछब हे

वेदी पर बैठा हुआ अमुक ब्रह्मचारी 'बहन! बहन!, पुकार रहा है।' मेरी सौभाग्यवती बहन कहाँ गई? लापर परीछ न दे?

'हे बहन, तुम उपहार में कौन-कौन आभरण लेकर लापर परीछ दोगी?

बहन ने कहा—'हे भाई, मुझे उपहार में कोई ख़ास आभरण तो नहीं चाहिये। मेरे लिए एक पीला वस्त्र पर्याप्त है। मैं लापर परीछ दूँगी।'

'लापर परिछन' यज्ञोपवीत संस्कार सम्पन्न हो जाने के बाद की एक विधि है जिसमें ब्रह्मचारी के शिर के बालों का मुंडन होता है। मुंडन किये हुए केश, दर्भ और शमीपत्र ब्रह्मचारी की बहन अपने आँचल में रखती जाती है। तत्पश्चात् वे मिट्टी से दाबकर गोशाला, नदी या तालाब के किनारे गाड़ दिये जाते हैं।

(७)

के मोर जयताह गंगासागर केहि जयताह बइजनाथ हे
के मोरा जयताह बनारस केहि संग जायब हे
बाबा मोरा जयताह गंगासागर पितिए बइजनाथ हे
भइया मोरा जयता बनारस हुनिक संग जायब हे
समुआ बइसल अहाँ बाबा त करु पद बन्दन हे
कोना विधि आहे बाबा ब्राह्मण होयब कोना बिधि परत जनेऊ हे

आरे बँसवा कटाएव मार छायब हे
आगर चानन निपि आँगन गजमोती चउक पुरि हे
सोने कलस बाबू पुरहर राखब लेसब चउमुख दीप हे
विप्र बोलाएब वेद भनाएव एहि विधि हयत जनेऊ हे
एहि विधि बाबू ब्राह्मण होयवह एहि विधि हयत जनेऊ हे

कौन गंगासागर जायगा। कौन वैद्यनाथ? कौन बनारस जायगा? और मैं किसके साथ गंगा-पार करूँगा?

मेरे पिता गंगासागर जायेंगे। चाचा वैद्यनाथ। मेरे भाई बनारस जायेंगे, और मैं उन्हीं के साथ गंगा-पार करूँगा।

'हे शामियाने में बैठे हुए पिता, मैं प्रणाम करता हूँ। मैं किस तरह ब्राह्मण बनूं, और किस प्रकार मेरा यज्ञोपवीत-संस्कार सम्पन्न हो?'

पिता ने कहा—'हे पुत्र, मैं हरे बाँस काट कर ऊँचा मंडप छवाऊँगा। चन्दन से आँगन लीप कर गजमोती चौक पूरूँगा। सोने के कलश लाकर पुरहर सजाऊँगा। चौमुख दीप जलाऊँगा। पंडित बुलाकर वेद-पाठ कराऊँगा। इस प्रकार तुम्हारा यज्ञोपवीत-संस्कार सम्पन्न होगा, और तुम ब्राह्मण बनोगे।'

(८)

सुरपुर से ऋषि नारद फुल एक लायल हे
आहे दिय गय बाभन हाथ त वेद भनाइय हे
काँच बाँस केर मारव पान छबाइय हे
बइसु पंडित सब आऊ त वेद भनाइय हे
आहे घर-घर फिरहुँ नउनिया त गोतिनि हँकारिय हे
आहे आजु लला के जनेऊआ त मंगल गाविय हे

सुरपुर से नारद ऋषि एक फूल लाये। हे सखी, वह फूल ब्राह्मण को दो, और वेद का पाठ कराओ। काँच बाँस का मंडप बना कर उसे पान के पत्ते से छवा दो।

हे पंडित, आओ बैठो। वेद का पाठ करो।
हे नाऊनियो, मेरे सगे-सम्बन्धी और हित-कुटुम्बों को न्योत आओ। आज मेरे बेटे का यज्ञोपवीत-संस्कार है। हे सखी, आओ हम सब मिल-कर मंगल गावें।

(६)

कहमे से आयल वरुआ
कहाँ कए जँ जाय
कवन ओझा बाबा दुअरिया
वरुआ धुनिया लगाय
पछिम से आयल वरुआ
पुरुव क जँ जाय
कवन ओझा दुअरे वरुआ
धुनिया लगाय
भिख ले बहार भेलि दाइ
भिखियो ने लेय
मुखहु ने बोलए
केहि मोरा देत माइ
धोतिया जँ पोथिया
केहि मोरा देता माइ
काँधे जोग जनेऊआ
बबे अहाँक देता वरुआ
धोतिया जँ पोथिया
पुरहित बाबा देता अहाँ के
काँधे जोग जनेऊआ

ब्रह्मचारी कहाँ से आ रहा है? कहाँ जायगा? किसके दरवाजे पर वह धूनी रमायेगा?

ब्रह्मचारी पछिम से आ रहा है। पूरब जायगा। अमुक ओझा के दरवाजे पर वह धूनी रमायेगा।

ब्रह्मचारी को भिक्षा देने के लिए अमुक दादी बाहर निकली। उसने भिक्षा लेने से इन्कार किया—

'हे माँ, कौन मुझे धोती और पोथी देगा, और कौन मेरा यज्ञोपवीत-संस्कार कर देगा?'

'हे ब्रह्मचारी, तुम्हारे पितामह तुम्हें धोती और पोथी देंगे, और तुम्हारे कुल-पुरोहित तुम्हारा यज्ञोपवीत-संस्कार कर देंगे।'

(१०)

हरिअर बँसवा कटाएव मारब छायब रे
आजु मोर लाल के जनेऊआ केहि केहि नेवतब हे
जेकरा के जे कोउ हयता से सब नेवतब हे
नेवतब गोतिया सहोदर जिनका सँ रूसन हे
घोरवहिं अयताह गोतिया डड़िया गोतिन लोग हे
आहे बइसे के देवइन गलइचा
कि बइसु गोतिया लोग हे
मड़वहिं भखथिन कोन बाबा
बिरा भेल थोर—आदर भेल थोर
मिनतिय बोलथिन कोन ओझा
हम न अहाँक जोग हे
मड़वहिं भखथिन कन्या चाची
आदर भेल थोर सेनुर भेल थोर
मिनतिय बोलथिन कन्या चाची
हम ने अहाँक जोग हे

हरे बाँस ला कर मंडप छवाऊँगी। आज मेरे पुत्र का यज्ञोपवीत-संस्कार है। मैं किसे-किसे न्योतूँ?

जिसका जो हित-कुटुम्ब है उन सब को न्योतूँगी, और उन सभी सगे-सम्बन्धियों और दैयादों को, जिनसे मेरा मनमुटाव रहा है, न्योतूँगी।

डोली में दैयादिन और घोड़े पर हित-कुटुम्ब आयेंगे। उन्हें बैठने के लिए गलीचा दूँगी।

मंडप में बैठे हुए अमुक पितामह ने कहा—'मेरा यथोचित आदर नहीं हुआ। मुझे पान की गिलौरियाँ कम मिलीं।'

उलाहना सुनकर अमुक पितामह ने कहा—'मैं तुम्हारे लायक नहीं हूँ। तुम मानापमान का विचार मत करो।'

मंडप में बैठी हुई अमुक चाची ने कहा—'मेरा यथोचित सत्कार नहीं हुआ। मुझे सिन्दूर-बिन्दी नहीं की गई।'

उलाहना सुन कर अमुक चाची ने कहा—'मैं तुम्हारे योग्य नहीं हूँ। तुम मान-अपमान को भूल जाओ।'

सम्मरि

'सम्मरि'-शैली के गीतों का सम्बन्ध स्वयम्बर से होने के कारण इनमें तत्कालीन विवाह-प्रथा का ही चित्र मिलता है। इनके दो विभाग किये जा सकते हैं—

(१) प्रबन्धात्मक : इनकी कथावस्तु पुराण से ली गई है, जिनमें लग्न-प्रथा और उसके लौकिक आचारों के विवरण की अपेक्षा प्रबन्धात्मकता का निर्देश अधिक है, जीवन की संदेशवाहिनी सामाजिक भावना की अपेक्षा कला-चातुर्य प्रदर्शन का प्राधान्य है। प्रबंधात्मक 'सम्मरि' की यही मर्यादा है कि 'मुक्तक' शैली के गीतों की सुघड़ आकृति से साम्य रखने के बावजूद उसने इनकी भाव-भंगी की नकल नहीं की, और 'मुक्तक' सम्मरि की उलट-बाँसी पाठ्य-सामग्री अपनी कुल-परम्परा के ऊँचे गौरव से गिर गई। 'मुक्तक'-शैली के अनेक गीतों में अनेक प्रकार के विषयों का समावेश है, जिनमें स्वयम्बर के सार्वजनीन रूप का किंचित् आभास भी लक्षित नहीं होता। क्योंकि 'सम्मरि'-शैली के दर्जे में स्थान पाने के लिए स्वयम्बर की आदर्श रूप-रेखा को सुरक्षित रखने की मर्यादा है, और उस आदर्श में स्वयम्बरकालीन युग की कथा-मान्यता को स्थान देना अनिवार्य है।

(२) मुक्तक : इनकी रचना-शैली और इनके अनेक गीतों में कोई कथा-प्रबंध नहीं है। इनमें आख्यान परिपाटी का सम्पूर्णतः अनुसरण न कर प्रत्येक विषय का स्वच्छन्द वर्णन है।

'सम्मरि' शब्द स्वयम्वर का अपभ्रंश है। 'सम्मरि' गीत-शैली की कथावस्तु इस कथन की आधार-शिला है। इस शैली के शत-प्रति-शत गीत स्वयम्वरकालीन युग (विशेषतया त्रेता और द्वापर में प्रचलित) स्वयम्वर-प्रथा की याद दिलाते हैं। गीत की कथावस्तु, वाक्य-विन्यास,

और अभिव्यक्ति की परम्परा में अभूतपूर्व सौन्दर्य है। एक समय था, जब इसकी सजीव भावभंगी और ललित रूप-विधान पर रसिक-हृदय लट्टू हो जाते थे। किन्तु, अब इस शैली के गीतों में कोई आकर्षण नहीं रहा। छुटपन में न जाने कितनी बार ग्रामीण गायकों की आकर्षक आवाज़ में इन गीतों को सुन कर एक अलौकिक आनन्द का अनुभव किया था। और काफी देर पहले इस पौध के गीतों को पर्याप्त तादाद में संगृहीत कर लेने के बावजूद इन्हें अँधेरे से प्रकाश में लाने की चेतना न हुई।

वैदिककालीन वर्णधर्म के अनुकूल जैसे लोग ब्रह्मचर्य और गृहस्थाश्रम की अवधि समाप्त कर वानप्रस्थ, और वानप्रस्थ से संन्यासाश्रम में प्रवेश करते थे, और सम्पत्ति का उत्तराधिकार अपने किसी सत्पात्र वंशज को सौंप जाते थे, उसी तरह लोक-गीत तरुणाई की देहली पार कर संन्यासाश्रम में प्रवेश करने के वक्त अपनी गद्दी नई पीढ़ी के सुयोग्य गीतों को दे जाते हैं, और नई पीढ़ी के नये नये गीत रूप बदल कर ग्रामीण गायकों की ज़बान पर अनायास उतरने लगते हैं। पुनः जैसे लोग मृत पूर्वजों के नाम भूल जाते हैं, उसी तरह लोकमानस भी पुरातन मृतप्राय गीतों को अपने अजायब घर में बरामद नहीं रखता, और वे सदा के लिए समाधि के पत्थर के नीचे राख बन जाते हैं।

कोई-कोई 'सम्मरि' को विवाहकालीन गीत-शैली के दर्जे में बिठा देते हैं। केवल विवाह के ही मंगलमय अवसर पर 'सम्मरि' गाया जाता, तब इन्हें अलबत्ता विवाहकालीन गीत-शैली की कोटि में शुमार करना युक्तिसंगत होता। किन्तु, ऐसा नहीं देखा जाता। होली के उन्मत्त दिनों में भी ग्रामीण गवैयों के सरल कंठ से 'सम्मरि' की मस्त तान फूट-फूट कर लोक-जीवन के ऊसर में संगीत की सुधा बरसाती है। अतः 'सम्मरि'-शैली के गीत-प्रसूनों को लग्न-गीत के गमले में न सजा कर एक अलाहिदा स्थान दिया गया। एक ही बात एक तरह से कही जाने पर उसमें एकरसता आ जाती है, और वही बात दूसरी जगह दूसरी तरह कही जाने पर मनोरंजक लगती है। कुछ नमूने देखिये—

सीता-स्वयम्बर

(१)

राजा जनक जी यज्ञ कियो सखि
धनुषा देल धराय
जे भूप इहो धनुषा तोरय
सिया विआहब ताहि
—भला सिर मटुकी शोभय लाल ध्वजा
सिया स्वयम्बर पाँती फिरि गेल
सब जग राज मँझार
राम लछन यग पूरन कारन
चले मुनी के साथ
—भला कठ किमकिम झिमझिम बाज रहे
हतो ताड़को दानो
तारो पावन गौतम नार
बकसर जाय मुनी मख राखो
उतर तिरबेनी पार
—भला रामभद्दर जब से नाम परय
राम लछन मुनि सँ आज्ञा माँगथि
माँगथि सखि कर जोरि
जनकनगर फुलवारी देखब
इहो मनोरथ मोर
—भला तरकस में तीर विराज रहे
जनकदुलारी गेल फुलबारी
सखि लिय संग लगाय
चम्पा बेलि चमेली तोरय
चीर अमीरी रंग
—भला रघुवर पर दृष्टि जाए परय

रामचन्द्र इहो धनुषा तोड़ल
सिआ देल जयमाल
सुर नर मुनि सब जय-जय बोलल
धनि दरशथ के लाल
—भला लिखि भेजेउँ पाँती दशरथ के
ढोल नङ्गेरा बाजन बजि गेल
औ' खुर्दक शहनाई
जनक दोआर बधावा बाजय
मुनि सब धूम मचाए
—भला वीरों की छाती कड़कि रहय
मंगल मूल सोहाओन पाँती
गेल अवधपुर धाम
हमसों किछु न बनाय सकय
आपहुँ पिंगल कसि शुद्ध किय
— × × × × ×
रामचन्द्र जी सहित जानकी
साजि लेल बरिआत
साँवल गोर दुइ रूप निहारल
छकित भेलि पुर नारि
—भला भौंरेंपति झुंडन गुंजि रहय
सजत डोलि चंडोल पालकी
हौदन औ तमदान
मोतियन झालरि श्वेत कियो सखि
तापरि सामधि भेल असवार
—भला बानातहुँ झुम्ह कहारन के
लगय बरात जनक के द्वारे
सखि सब मंगल गावि

\+ + +
\+ + +
भला सखियन सब झूमर करन लगय

काँच बाँस कंचन के खाम्ही
चारों माँड़ब छारि
जगमग जोति झलामल मौरी
रघुवर भौंर फिराय
—भला पुरहितगन कंगन बान्हि दियो

भेल विआह राम चलु कोवर
सखि सब मंगल गावि
\+ + +
\+ + +
—भला भोजन के आज्ञा भेज दियो

छप्पन भोग छत्तीसो व्यञ्जन
भाँति-भाँति पकवान
गरी छहोरा दाख इलायची
अँचवन बंगला पान
—भला अब दही परय घर सोतन के

रामचन्द्र जी सहित जानकी
गेल अवधपुर धाम।
\+ + +
\+ + ×
भला सखियन सब धैरज त्यागि दियो

कहय कबीर दिगम्बर थाकत
लीला बरनि ने जाय

छूटल अच्छर रँघुवर जानथि
हमसों किछु ने बसाय
—भला आपहुँ स मिलि कय शुद्ध किय

राजा जनक ने घोषणा की—'जो वीर भूप इस धनुष को तोड़ेगा उसीसे सीता का व्याह होगा।'

उनके सिर पर मुकुट और लाल छत्र शोभा पा रहे थे।

सीता के स्वयम्वर में सम्मिलित होने के लिए पृथिवीमंडल के बड़े-बड़े राजा-महाराजाओं को पाँती भेजी गई। उसी समय अयोध्या के राजकुमार राम और लक्ष्मण ने भी ऋषि विश्वामित्र के साथ उनके यज्ञ की रक्षा करने से लिए प्रस्थान किया।

मंगलसूचक बाजे बज उठे।

रास्ते में राम ने दानवी ताड़का का वध कर शिला के रूप से तपस्या करती हुई गौतम की पत्नी पाषाणी अहल्या का उद्धार किया। बक्सर जाकर ऋषि विश्वामित्र के यज्ञ की रक्षा की, और त्रिवेणी नदी पार कर आगे की ओर बढ़े।

उस समय वह भद्र राम के नाम से लोकप्रिय हुए।

राम-लक्ष्मण ने ऋषि विश्वामित्र से जनक की फुलवाड़ी देखने की अभिलाषा प्रकट की। उनके तरकश में तीर सुशोभित थे।

जनक की दुलारी बेटी सीता भी सखियों को साथ लेकर फुलवाड़ी गई। वहाँ वह चम्पा, बेली और चमेली के फूल तोड़ने लगी कि उनकी दृष्टि राम पर पड़ी। उनके आभरण से राजसी सौन्दर्य उमड़ रहा था।

राम ने धनुष तोड़ डाला। सीता ने उनके गले में जयमाल पहनायी। देवता, मनुष्य और ऋषि सब ने 'जय-जय' के नारे बुलन्द किये। दशरथ के दोनों पुत्र राम और लक्ष्मण सचमुच धन्यवादार्ह हैं।

तत्काल दशरथ को पाँती लिख कर भेज दी गई।

खुर्दक, शहनाई, ढोल और नक्कारे आदि बाजे बजने लगे। राजा

जनक के द्वार पर बधाई के रूप में अनेक प्रकार के उत्सव हुए, और ऋषियों ने आनन्दसूचक शब्दों में आशीर्वचन कहा।

यह देख कर बड़े-बड़े नरपतियों एवं वीरों की छाती दहल गई।

मंगलमयी सुहावनी पाँती अयोध्या भेजी गई जिसमें नम्रतापूर्वक निवेदन किया गया—'मैं अपनी श्रद्धापूर्ण अभिव्यक्ति को भली भांति कलमबंद नहीं कर सकता। उसमें अनेक दोष हैं। हे सम्राट, आप स्वयं पिंगल और व्याकरण की कसौटी पर कस कर उन्हें शुद्ध कर लें।'

राम और सीता की बरात सज-धज कर निकली। साँवली और गोरी—अपूर्व जोड़ी देखकर नगर के स्त्री-पुरुष फूले न समाये।

रूप-रस के लोभी मधुकर गुञ्जार करने लगे।

डोली, चंदोल, पालकी और तामदान गली-गली से सज कर निकले। हाथियों की पीठ पर हौदे रख दिये गये। उन पर मोतियों की सुफ़ेद झालड़ बिछा दी गई, और उस पर समधी सवार होकर बरात में सम्मिलित हुए।

कहारों के अंग-अंग में बनात के कपड़े लहराने लगे।

जनक के द्वार पर जाकर बरात रुकी। सखियाँ आनन्द-विभोर होकर 'झूमर' गाने लगीं।

काँच बाँस काट कर चारों मंडप छाये गये। उनमें कंचन के खम्भे लगाये गये। राम के शिर पर मौर रक्खा गया जिसका प्रकाश चारों ओर फैल गया। इस प्रकार दूल्हा राम की भांवरी हुई।

कुल-पुरोहितों ने उनके हाथ में कंगन बाँध दिये।

अन्त में बड़ी धूमधाम के साथ राम का ब्याह सम्पन्न हुआ। वह कोहवर घर में बिठा दिये गये, और सखियां मंगल गाने लगीं।

इधर बरातियों को भोजन की आज्ञा भेज दी गई।

छत्तीस प्रकार के व्यञ्जन और छप्पन प्रकार के भोज्यपदार्थ बरातियों को परोसे गये। नारियल की कतरन, छोहारा, दाख, इलायची, बंगला पान आदि विविध प्रकार की वस्तुएँ बाँटी गईं।

श्रोत्रिय ब्राह्मणों के पत्तल पर दही खूब परोसे गये।

राम सीता के साथ अयोध्या गये। इधर सीता की सभी सखियाँ उनके विरह में शोकातुर हो विलाप करने लगीं।

'कबीर' कहता है कि सीता के स्वयम्वर का गुणगान करने में असमर्थ हूँ। इस वर्णन में जो त्रुटियाँ हैं उन्हें ईश्वर जाने। मैं उन्हें दूर करने में असमर्थ हूँ। विज्ञ पाठक स्वयं संशोधन कर लेंगे, ऐसा विश्वास है।

रुक्मिणी-हरण

(२)

प्रथमहिं बन्दहुँ विघ्न विनाशन
गिरिजातनय गणेश यो
देवि शारदा चरण मनाविय
देहु सुमति उपदेश यो

कुण्डिनपुर एक नग्र बखानल
जनि इन्द्रासन रूप यो
जनि इन्द्रासन रूप मनोहर
ऊपर मन्दिर छाय यो

दह अति निर्मल पंकज शोभित
केलि करत राजा हंस यो
चहुँ दिशि लागल बेंत बाँस घन
चानन गाछ दुआरि यो

माय मनावथि मनहिं विचारथि
धिया भेलि व्याहन योग यो
रानि सुमति लै अएला राजा
भीषम हँकरथि कुल परिवार यो

प्राणिग्रहण कय कृष्णहिं दीजै
सब मिलि रचथि विचार यो

ओहि अवसर रुक्मद तहँ आयल
रुक्मिणि केर जेठ भाय यो
पाँच तनय दुहिता एक रुक्मिणि
सुर नर मुनि मन मोह यो
ई कन्या शिशुपालहिं दिजै
निन्दित यादवराज यो

धेनु चरावथि वेणु बजावथि
छिर बिच्च करथि अधार यो
नन्दमहर घर जन्म हुनक छैन्हि
जातिक ओछ गोआर यो

कान्हे कम्मल, हाथे सैली
गौआ चरावथि वनमाहिं यो
कोन-कोन राजा के नौतव
कोन-कोन अरु देश यो

नौतव कनौज छतिस कोटि लय
नौतव दिल्लीक राज यो
मथुरा मोरङ्ग तिरहुत नौतव
नौतब सकल समाज यो

गया नौतव गयाधर नौतव
नौतव अयोध्या ग्राम यो
स्वर्गहिं इन्द्र पतालहिं नौतव
मर्त्यभुवन कैलाश यो

ऐलङ्ग, तैलङ्ग सब गढ़ नौतव
नौतव मग्गह मुंगेर यो
पूर्वहिं नौतव गिरि उदयाचल
पश्चिम वीर हनुमान यो

नवा पार नैपाल चम्पारन
काशी सजु वरिआत यो
सादर सब ऋषि ब्राह्मण नौतव
सुर नर मुनि सब झारि यो

कारनाटपुर ठक्र ओड़ैसा
पांडव कौरवराज यो
एक नहिं नौतव नग्र द्वारिका
जहाँ वसु नन्दकुमार यो

जे नहिं औताह रुक्मिणि नौता
बान्हि देवैह्नि बनिसार यो
सभ दिशा तों जैह हे ब्राह्मण
एक दिशा जनु जाह यो

अरही वन सौं खरही मङ्गाएव
वृन्दावन विट बाँस यो
सहस्र योजन लय माँड़व ठाड़व
ताहि वैसायव बरिआत यो

रतन जड़ित चारु कोन उरेहल
ऊपर पटम्बर छाज यो
धन विश्वकर्मा आजु सम्हारल
मंगल गावथि नारि यो

कैसन वाजु राजवर बाजन
मोहि सखि कहु समुझाय यो
राजा भीषम घर तुहीं कुमारी
तैं तोंहि बाजु , बधाय यो

ई जब सुनलन्हि रुकमिनि कामिनि
उठलहे हृदय तरास यो

ओ नव नागरि दसलि सोहागिनि
मुरुछि खसल महि माँझ यो
क्यौ सखि धावय चानन लावय
क्यौ सखि विजन डोलाय यो
सखियन चेतल चेत जगाओल
कर धय लेल उठाय यो

किए तोंहे रुकमिनि मनहिं विरोधलि
किय रे खँसल मुरछाय यो
जौं जीवह तौं कृष्ण सरन देत
नहिं त मरव विष खाय यो

केदलि वन सौं पत्र मंगाओल
निर्मद कैल मोसिआन यो
लिखय विलाप विनय कय माधव
हैव हमहुँ तब दास यो

सिंहक भाग सियार लै भागत
जनम अकारथ जाय यो
कुआँ बावली इष्ट कयल यदि
आवि धरिअ यहो हाथ यो

लिखि पतिया विप्रहिं बोलाओल
तुरन्त द्वारिका जाह यो
देवउ हे ब्राह्मण अन धन लछमी
और सहस्र धेनु गाय यो

देव हे ब्राह्मण पैरक नूपुर
गाराँ क मुक्ताहार यो
एक दिवस विप्र द्वारिका रहिअह
दोसरे सागर पार यो

कृष्ण लेवाय तुरंत तौं अविह
हम होयब दास तोहार यो
एतेक बात लै जाहु द्वारिका
कृष्णहि लाउ लिवाय यो

दै पतिया सब बात जनाओल
ब्राह्मण ठाढ़ि दुआर यो
हरषि लेल यदुपत्र हाथ काँ
बचइत भेल सनाथ यो

खन बाँचथि खन हृदय लगावथि
खन पूछथि निज बात यो
पाछाँ सैं बलभद्रहिं आयल
भगवन कयल गोहारि यो

चललि सखी सब गौरि पूजय
रुक्मिणि मन पड़ि आव यो
हमरा लै कृष्ण कत अओताह
हम धनि परम अभागि यो

जौं लगि रुक्मिणि गौरी पूजल
गरुड़ चढ़ि प्रभु धाय यो
कर धै रुक्मिणि रथहिं चढ़ाओल
चलि भेल श्रीभगुवान यो

इन्द्र ब्रह्मा सब साक्षी रहब
रुक्मिणि हरल कुमारि यो

रुक्मिणि हरण सुनल शिशुपालहिं
मुरुछि खसल महि माँझ यो
बहुत कटक लै रुक्मद धायल
रथ कें घेरल जाय यो
बहुत कटक लै रुक्मद पहुँचल
लेल कृष्ण ताहि बान्हि यो
इहो सोदर भाय थिक रुक्मद
हिनका दियौन्हि जिवदान यो
द्वारकापति प्रभु द्वारका पहुँचल
रुक्मद कैल कन्यादान यो
'लोकनाथ' भजु चक्रपाणि प्रभु
अवसर ने करिय विचार यो
रुक्मिणि सम्मरि गावि सुनाओल
कलिपातक दुरिजात यो

गीत की कथावस्तु संक्षेप में निम्न-प्रकार है—

'महाराज भीष्मक विदर्भ देश के अधिपति थे। उनके पाँच पुत्र और एक सुन्दरी कन्या थी। सबसे बड़े पुत्र का नाम था रुक्मी, और चार छोटे थे—जिनके नामा थे क्रमशः रुक्मरथ, रुक्मबाहु, रुक्मकेश और रुक्ममाली। इनकी बहिन थी सती रुक्मिणी। जब उसने भगवान श्रीकृष्ण के पराक्रम और वैभव की प्रशंसा सुनी, तब उसने यही निश्चय किया कि श्रीकृष्ण ही मेरे अनुरू ा हैं। श्रीकृष्ण ने भी रुक्मिणी से विवाह करने का निश्चय किया। रुक्मिणी के भाई-बन्धु भी चाहते थे कि उनका विवाह श्रीकृष्ण से हो। परन्तु रुक्मी श्रीकृष्ण से बड़ा द्वेष रखता था। उसने उन्हें विवाह करने से रोक दिया और शिशुपाल को ही अपनी बहिन के योग्य वर समझा। जब परम सुन्दरी रुक्मिणी को यह मालूम हुआ तब वह बहुत उदास हो गई। उन्होंने बहुत कुछ सोच-विचार कर एक विश्वासपात्र ब्राह्मण को तुरन्त

भगवान श्रीकृष्ण के पास भेजा। ब्राह्मण देवता ने रुक्मिणी का निम्न-लिखित सन्देश श्रीकृष्ण को सुनाया—'कमलनयन, मैं आप सरीखे वीर को समर्पित हो चुकी। अब जैसे सिंह का भाग सियार छू जाय, वैसे कहीं शिशुपाल निकट से आकर मेरा स्पर्श न कर जाय। मैंने यदि जन्म-जन्म में कुआँ, बावली आदि खुदवा कर तथा दान, नियम, ब्राह्मण और गुरु आदि की पूजा के द्वारा भगवान परमेश्वर की आराधना की हो तो आप आकर मेरा पाणिग्रहण करें।'

इधर महाराज भीष्मक अपनी कन्या शिशुपाल को देने के लिये विवाहोत्सव की तैयारी करने लगे। राजकुमारी रुक्मिणी को स्नान कराया गया। हाथों में मंगलसूत्र कंकण पहनाये गये। कोहवर बनाया गया।

रुक्मिणी ने अपने कुल के नियम के अनुसार कुलदेवी का दर्शन करने के लिए एक बहुत बड़ी यात्रा की। रुक्मिणी इस प्रकार इस उत्सव-यात्रा के बहाने मन्द-मन्द गति से चल कर भगवान श्रीकृष्ण के शुभागमन की प्रतीक्षा करने लगी। वह रथ पर चढ़ना ही चाहती थी कि भगवान् श्रीकृष्ण ने समस्त शत्रुओं के देखते-देखते उनकी भीड़ में से रुक्मिणी को उठा लिया और उन सैकड़ों राजाओं के शिर पर पाँव रख कर उन्हें अपने रथ पर बैठा लिया। रुक्मी को यह बात बिल्कुल सहन न हुई कि मेरी बहिन को श्रीकृष्ण हर ले जायँ और बलपूर्वक उसके साथ विवाह करें। अब रुक्मी क्रोधवश हाथ में तलवार लेकर भगवान श्रीकृष्ण को मार डालने की इच्छा से रथ से कूद पड़ा और इस प्रकार उनकी ओर झपटा, जैसे पतिंगा आग की ओर लपकता है। जब श्रीकृष्ण ने देखा कि रुक्मी मुझ पर चोट करना चाहता है तब उन्होंने अपने बाणों से उसकी ढाल-तलवार को चूर-चूर कर दिया। फिर भी रुक्मी उनके अनिष्ट की चेष्टा से विमुख न हुआ। तब श्रीकृष्ण ने उसको उसीके दुपट्टे से बाँध दिया। इस प्रकार श्रीकृष्ण ने सब राजाओं को जीत लिया, और विदर्भ राजकुमारी रुक्मिणी को द्वारका में लाकर उनका विधिपूर्वक पाणिग्रहण किया।

उषा-स्वयम्वर

(३)

लछमी सरोसति सहित नरायण
गंगा गौरी गणेशे
गिरिजानन्दन दुरिक निकंदन
बन्दौं सिद्ध गणेशे

बलिनन्दन वाणासुर भूपति
तीन भुवन जनि वीरे
शोणितपुर एक नग्र बखानल
जनि इन्द्रासन रूपे

हर पूजन चलु वाण महीपति
तेज सकल निज राजे
सहस्रबाहु लय ताल वजावत
गावथि शिवक समादे

शिव प्रसन्न हो बाण पान लय
मांगु-मांगु वर आजे
मोनक मनोरथ सुफल करव तोहि
कह तोरित तेज धाखे।

कतय यतन वाणासुर बोलल
नत भय अंजलि जोरे
दीनदयाल कृपा एक मिनती
मन दय सुनह मोरे

से सुनि शंकर रोष भंयकर
योजन खसल गय केते

हम सन युद्ध ताहि दिन पएवह
दर्प हरत रन माँझे

इशर बोल सुनि पुलकि पूरल
मोन पाओल रंक निदाने
कइअ प्रणाम चलल निज मन्दिर
हरसित वान समाने

लिअ-लिअ नाथ साथ कत विह देल
गौरि सहित कैलासे
सुरसरि पैसि वैसि कय गायव
गंधर्व देव विलापे

उषा सहित सखि चलु ओहि अवसर
मंत्रि सुता सखि पासे
संग सखी कत गौरि अराधव
किन्जरगन कत गावे

ओहि अवसर हर झिलहेरि खेलथि
नारि सहित नदि माँझे
देखि उषा मन वास मनोरथ
कखन मिलत मोर नाहे

उषा मनोरथ जान भवानी
हुलसि हकारल पासे
राजकुमारि उसरि तोंह बोलह
सभ विध पूरत आसे

माधव मास इजोत दोआदसि
धरहर सुतिहि एकंते

जे हो पुरुष सुख सपना देखवह
सैह तोहर हैत कंते

इशर ऊपर होउ सुखद वसन लिअ
गौरि सहित चलि गेली
कुमरि विदा भय घर पहुँचाएल
हरसित दरपित देहे

किछु दिन बीतल दोआदसि आयल
मास वइसाख इजोते
कुमरि सुमरि कय सुतलि धरोहर
सपना पुरुष देख गोरे

सुन्दर वर तन साँवर-साँवर
पीताम्बर तनु ओढ़े
बाहु अजानु कमलदल लोचन
चित्त हरल जेहि देखै

सकल सुरति सुत अनुभव सुन्दरि
जागि निङ्हारए पासे
अधर सुधा मधुपान व्यतित कय
किय गेल कन्त उदासे

चिन्ता लाज वेआकुलि मानुपि
धाधस धरय न पावय
उसँसि-उसँसि रहु किछु ने कुमरि कहु
नैन तजय जलधारे

मंत्रि-सुता सखि छपलि पलंग लग
चित्ररेखा हुनि नामे

कुमरि बात देखि जागि चकित भेल
पुछय लागल तसु बाते

कोन पुरुष तोरा हरल हिया बसि
कोन तोहर सभिलाषे
वदन चन्द्र तोर भेल मलिन किय
कह सुन्दरि तेज लाजे

अपरुप रूप पुरुष सँ संगति
रंग कहइत मोरा लाजे
हर्ष-विषाद दुहुँ मोरा उपजय
सुमरि सुखायल गाते

मैं पट लिखौं चिन्ह सखि मन दय
जे तोहि हृदय निवासे
तीन भुवन जौं हयत कुमर वर
आनि मिलत तोहिं पासे

देवासुर गंधर्व उपचारल
मानुष सकल उरेहे
यदुकुल लिखल कुमर अनुरुद्धहिं
उषा चिन्हल वर एहे

हरि घर चोरि मोहिं कोना फरओत
तीन भुवन जिन केरे
से परकार रचहु सखि सुन्दरि
जौं जानी कुल शीले

तोहिं सखि योगिन लखय के पारै
पाँव परै चलि जाहे

जौं सखि प्रानक अछहु काज
मोरा आनि देखावह नाहे

कुमर निकट अवकासो ने पावै
भ्रमय तिलो हित देहे
तौलि पलंग पलख में आयल
मंत्रि सुता सखि पासे

कुसुममाल लय कुमरि अनन्दित
कुमर गराँ पहिराए
निशि दिन गुप्त भोग करि सुन्दरि
बिसरल घर छव मासे

कोपि उठल अँग-अँग महीपति
कड़कि कएल सिंहनादे
ओहि अवसर कोतवाल पुकारय
कुमरि महल कोइ आवै

सुनि वाणासुर कोह मोह भय
छूटलि कुमरि घर गेले
देखि कुमरि संग पुरुष महाबल
सारि-पाश दुहुँ खेले

देख कुमर पर उठल मुङ्गर
लय जनि दोसर यमराजे
धरय धसय कत मारि नरायल
बाहर क्यों नहिं बाजे

फरक फराक ताक सौं निकलल
असुर कुमर दुई युद्धे

चारि मास घर सजनि शोच करु
कुमर उदेश नहिं पैवे

नारद मुनि तब बात जनाओल
सुनि हरि कैल पयाने
राम कृष्ण दल दुगुन साजि करि
कोनाक सजव ननधीरे

नन्दी बसहा चढ़ि इशर महादेव
कार्तिक चढ़िय मयूरे
भगत वचल हरि वाण मदित कय
लय निज सेना शूरे

भय भउ मेदिनि कंप झंप लय
धूर पीत रति शूरे
अपन परार चिन्हय नहिं पावै
दुहुँ दिशि बाजय दूरे

हलधर रुप करन हरि मारल
कार्त्तिक छाँड़ल खेते
हरि शरि मारि बान्हि तेजु सारथि
बान्हि जननि तेजु चीरे

भव भय भंजन शरण चरण गति
दिअ प्रभु मोहि हित ज्ञाने
उठि जो जर तोरा देल अभय वर
जे परसय मोर नामे

जे मोहि परसय ताहि जनि परसि
नहिं त करव जिव घाते

पाँओन तरुवर सयथ साङ्गि लय
हरि पर चलल लवाने

हरि लेल चक्र विदातिन आतिम
पाँओन तरुवरि सेथे
विहुँसि वचन मधुसूदन बोलय
वकसह मोर अपराधे

सेवक हमर परम वानासुर
हम अभिमत वर देले
अभिमत वर देलौं हुलसि कँ
अवसर करव पुकारे

आनि वानि रथ जोति बहरायल
धसलि गेलि रनमाँझे
वर-कन्या रथ जोति चढ़ाओल
देल दहेज अनेके

गौरि मिलल जनि इशर महादेव
सिआ मिलल श्रीरामे
लछमी मिलल जनि देवनरायन
तें सँ दुहुँ अभिरामे

यदुकुल जीत एला पुरदेवक
पुरभऊ वन्दनिवारे
बाजन विविध सहस्र लछ बाजय
घर-घर मंगल चारे

'लोकनाथ' प्रभु चक्रपाणि लय
अवसर करव पुकारे

लोकनाथ सुत चक्रपाणि लय
अवसर करव सुमार्ग

गीत की कथावस्तु का सारांश नीचे दिया जाता है—

एक दिन बल-पौरुष के घमंड में चूर बाणासुर ने शंकर से कहा—'देवाधिदेव, आप समस्त जगत के गुरु और ईश्वर हैं। मैं आपको नमस्कार करता हूँ। आपने मुझे एक हजार भुजाएँ दी हैं, परन्तु वे मेरे लिए भाररूप हो रही हैं। त्रिलोकी में मुझे अपनी बराबरी का कोई वीर योद्धा ही नहीं मिलता, जो मुझसे लड़ सके।'

शंकर ने तनिक क्रोध से कहा—'रे मूढ़, जिस समय तेरी ध्वजा टूट कर गिर जायगी, उस समय मेरे ही समान योद्धा से तेरा युद्ध होगा, और वह युद्ध तेरा घमंड चूर-चूर कर देगा।'

बाणासुर की एक कन्या थी, उसका नाम था ऊषा। अभी वह कुमारी ही थी कि एक दिन स्वप्न में उसने देखा—'परम सुन्दर युवक के साथ मेरा समागम हो रहा है।' तब से वह विक्षिप्त-सी दीखने लगी। बाणासुर के मंत्री कुम्भाण्ड की कन्या चित्र-लेखा ने अपनी सखी को खिन्न देख कर पूछा—'तुम किसे ढूँढ़ रही हो? अभी तक किसी से तुम्हारा ब्याह भी तो नहीं हुआ?

ऊषा ने कहा—'मैंने स्वप्न में एक बहुत ही सुन्दर युवक को देखा है। उसके शरीर का रंग साँवला-साँवला-सा है। नेत्र कमलदल के समान कोमल हैं। शरीर पर पीताम्बर फहरा रहा है। उसने पहले तो अपने अधरों का मधुर मधु मुझे पिलाया। परन्तु मैं उसे छक कर पी भी न पाई थी कि वह मुझे दुःख के सागर में डाल कर जाने कहाँ चला गया। मैं अपने उसी प्राणवल्लभ को ढूँढ़ रही हूँ।'

चित्रलेखा ने कहा—'यदि तुम्हारा चित्तचोर त्रिलोकी में कहीं भी होगा, और उसे तुम पहचान सकोगी, तो मैं तुम्हारी विरह-व्यथा अवश्य शान्त कर दूँगी। मैं चित्र बनाती हूँ, तुम अपने प्राणवल्लभ को पहचान कर बतला दो।'

यों कह कर चित्रलेखा ने बात-की-बात में बहुत-से देवता, गन्धर्व, सिद्ध, चारण, पन्नग, दैत्य, विद्याधर, यक्ष और मनुष्यों के चित्र बना दिये। जब उसने अनिरुद्ध का चित्र बनाया तब ऊषा ने कहा—'मेरा वह प्राण-वल्लभ यही है।'

चित्रलेखा योगिनी थी। वह आकाशमार्ग से रात्रि में ही द्वारकापुरी पहुँच कर, अनिरुद्ध को पलंग समेत उठा कर शोणितपुर ले आई। अनिरुद्ध के सहवास से ऊषा का क्वारपन नष्ट हो चुका। उसके शरीर पर ऐसे चिह्न प्रकट हो गये, जो स्पष्ट इस बात की सूचना दे रहे थे कि जिन्हें किसी प्रकार छिपाया नहीं जा सकता था। पहरेदारों ने समझ लिया कि इसका किसी-न-किसी पुरुष से संबंध हो गया है। उन लोगों ने बाणासुर से जाकर इस बात की शिकायत की। वह झटपट ऊषा के महल में जा धमका, और देखा कि अनिरुद्ध वहाँ बेखटके बैठा हुआ है। जब अनिरुद्ध ने देखा कि बाणासुर सुसज्जित वीर सैनिकों के साथ महल में घुस आया है, तब वे उसे धराशायी कर देने के लिए एक भयंकर मुद्गर लेकर डट गये, मानो स्वयं कालदण्ड लेकर यम खड़ा हो। जब बली बाणासुर ने देखा कि यह तो मेरी सारी सेना का संहार कर रहा है, तब उसने क्रोध से तिलमिला कर उन्हें नागपाश में बाँध लिया।

बरसात के चार महीने बीत गये। परन्तु अनिरुद्ध का कहीं पता न चला। एक दिन नारद ने जाकर श्रीकृष्ण को सारा समाचार सुनाया। श्रीकृष्ण ने यदुवंशियों की विशाल फौज लेकर बाणासुर की राजधानी को घेर लिया। घोर युद्ध हुआ। श्रीकृष्ण ने छुरे के समान तीखी धारवाले चक्र से उसकी भुजाएँ काट डालीं। अन्त में शंकर के प्रार्थना करने पर श्रीकृष्ण ने बाणासुर को अभयदान दे दिया। वह अनिरुद्ध को अपनी पुत्री ऊषा के साथ रथ पर बैठा कर श्रीकृष्ण के पास ले आया। इधर द्वारका में अनिरुद्ध आदि के शुभागमन का समाचार सुन कर झंडियों और तोरणों से नगर का कोना-कोना सजा दिया गया। बड़ी-बड़ी सड़कों और चौराहों को शीतल जल से सींचा गया, और खूब धूमधाम के साथ उनका स्वागत हुआ।

सीता-स्वयम्बर

(४)

नगर अयोध्या राज उचित थिक[१]
जहँ बसु[२] दशरथ नन्द यो
राम क जोरी बसथि जनकपुर
छपन कोटि देल दान यो

गया नौतव[३] गदाधर नौतव
काशी नौतव विश्वनाथ यो
मृत्यु भुवन एक दानी नौतव
बासुकि नाग पताल यो

राजपाट पर रामजी बइसल[४]
झटकि चलु बरिआत यो
अठारह छौंहनि[५] बाजन बाजै
सवा लाखहिं ढोल यो

जयखन[६] सुनता[७] कतेक बुझओता
धरू ध्यान धन-लोक यो
पहिल दान कयल तिल कुस लै
दोसर दान गोदान यो

तेसर दान कैल शाल दोशाला
चारिम दान कन्यादान यो
ऊंखर आनल मूसर दै-दै
केहन ढक-ढक ताल यो

---

१ है। २ रहते हैं, राज्य करते हैं। ३ न्योतूंगा। ४ बैठे। ५ अक्षौहिणी ६ जिस समय। ७ सुनेंगे।

आमक पल्लव कंगन बान्हल
ब्रह्मा वेद पढ़ावि यो
भेल विवाह चलल राम कोवर[१]
सीता लै अंगुरि धरावि यो

(५)

ऋषि मुनि चलला नहाय[२]
धनुष-तर नीपल हे
अजगुत[३] हम एक देखल
धनुष-तर नीपल हे

भल कयलौं[४] आहे सीता-भल कयलौं
धनुष-तर नीपल हे
एहि विधि रहव कुमार
जनम कोना बीतत हे

हम नहिं जानल बाबा कि
पूजव भवानिय हे
घुरमि-घुरमि[५] सीता पूजथि
कि पुजथि भवानिय हे

सजि लिअ आहे सीता आरति
सजि लिअ धूप-दीप हे
सजि लिअ सखिया सलेहर[६]
जनकपुर-नन्दिनि हे

खँसल[७] सुगंधित फूल
इन्द्र-लोक मोहित हे

---

१ कोहवर। २ स्नान करने। ३ आश्चर्य। ४ किया। ५ परिक्रमा करके। ६ हमजोली। ७ गिरना, टपक कर चूना।

अगिलहिं घोड़ा राजा रामहिं
पछिलहिं लछुमन हे

हम तोरा पुछु सीता
तुअ[1] मोरा भाउज हे
कओन संकट तोरा घेरल
पुजिए[2] भवानिय[3] हे

कहइत आहे बाबू लछुमन
कहइत लजाऊ हे
धनुष-संकट हमें घेरल
पुजिए भवानिय हे

फेरि[4] दिअ आहे सीता आरति
फेरि दिअ धुप-दीप हे
फेरि दिअ सखिया-सलेहर
जनकपुर-नन्दिनी[5] हे

होयव अयोध्याक रानी
कि तुरहीं बजाएव हे

---

१ तुम। २ पूजती हो। ३ पार्वती को। ४ वापिस कर दो। ५ सीता।

लग्न-गीत

लोक-संगीत महफ़िलों के लिए विवाह-उत्सव एक सर्वोत्तम अवसर है। मिथिला का विवाह-उत्सव बड़ा ही मनोरंजक है। विवाह में वर-रक्षा, जिसे कहीं-कहीं सगाई भी कहते हैं, से लेकर चतुर्थी कर्म—कंकण छूटने के दिन तक अनेक विधि-व्यवहार होते हैं। इसलिए यहाँ विवाह-संस्कार के पृथक्-पृथक् कर्मों में पृथक्-पृथक् शैली के गीत प्रचलित हैं। विवाह-संगीत की इन विविध शैलियों में कुछ ऐसे गीत हैं, जो वर्णनात्मक हैं, जिनमें केवल तथ्यपूर्ण घटनात्मक वर्णन हैं। उनमें विकास की वेदना का अतिरंजन करने में कवि की तूलिका ने ज़मीन-आसमान के कुलाबे नहीं मिलाये हैं। केवल करुणावती घटनाओं की दिव्य तरी काव्य की शुभ्र तटी में हंसिनी-सी मन्द-मन्द विचर रही है। उनमें कुछ ऐसे गीत भी हैं, जिनमें विरहपूर्ण यन्त्रणा के आँसू ओस की नन्हीं बूँदों की तरह मोतियों के गोल-गोल दाने के रूप में बिखर गये हैं, और कुछ ऐसे हैं; जो प्रेम, करुणा, वैराग्य आदि मनोविकारों के अनेक रंगों से रंजित वैचित्र्यनिलय-सा चित्रित हो रहे हैं, और विश्व के नैराश्य-रंजित वातावरण से संतप्त आत्माओं का मनोरंजन करते हैं।

विवाह-संस्कार की ऋतु आने पर पहले किसी शुभ मुहूर्त्त में कन्या के हित-कुटुम्बी, उसके पिता-भाई या उसकी ओर से नाई और ब्राह्मण जाकर विवाह की बात पक्की कर वर ठीक करते हैं। वर ठीक कर चुकने पर हाथ में केसर, हलदी और दही-अक्षत लेकर वर के ललाट में तिलक लगाते हैं।

वर को तिलक चढ़ाने के बाद मण्डप-निर्माण और स्तम्भारोपण की बारी आती है। मण्डप-निर्माण और स्तम्भारोपण हिन्दू-विश्वासों के प्रतीक

है। ये मण्डप बहुत साफ़-सुथरे और बाअसर होते हैं। इनके स्तम्भों में सुन्दर कलापूर्ण काम किया जाता है, जिसे देख कर प्राचीन वैदिक संस्कृति की याद नूतन हो आती है। मण्डप की भूमि प्रायः ढालवाँ होती है, और आसपास की भूमि से एक या आध हाथ ऊँची। विवाह के पहले ही दिन मण्डप बन कर तैयार हो जाता है। मण्डप बनाने की विधि यह है कि उसकी लम्बाई और चौड़ाई बराबर रक्खी जाती है। मण्डप-निर्माण में पूर्व दिशा का भी पूरा विचार किया जाता है और ईशान, अग्नि आदि कोनों में मण्डप बनाना हानिकर माना जाता है। मण्डप में चार दरवाजे होते हैं। दरवाजे मण्डप की चारों दिशाओं—उत्तर, दक्षिण, पूर्व और पश्चिम की ओर बनाये जाते हैं। प्रत्येक दरवाजे के आगे एक-एक तोरण होता है; जो शमी, जामुन, और खैर की लकड़ी के होते हैं। लेकिन जो समर्थ हैं, वे उत्तर का तोरण बरगद का, दक्षिण का गूलर का, पश्चिम का पाकड़ का और पूरब का तोरण पीपल का बनवाते हैं। तोरण के दोनों पार्श्व खूबसूरत बेल-बूटों और सुगन्धित फूल-पत्तियों से सजाये जाते हैं।

मण्डप के हाशिये—किनारे की भूमि तीन भागों में विभक्त कर उसके चारों ओर बाँस के बारह खूँटे गाड़े जाते हैं, और उनके सिरे में एक दूसरे को छूती हुई मुञ्ज की पतली रस्सी बाँध दी जाती है। मण्डप-भूमि के जिन-जिन स्थानों में रस्सी के छोरों का सम्मिलन होता है, उन-उन स्थानों में भी चार खूँटे गाड़े जाते हैं और इन सोलह खूँटों के समानान्तर मण्डप-निर्माण में सोलह स्तम्भ व्यवहृत होते हैं। स्तम्भ किसी यज्ञिय वृक्ष के होते हैं; जैसे—देवदारु, पीपल, गूलर, पलाश, बिल्व आदि। मण्डप का छाजन बंगलेनुमा होता है, और फूस तथा चटाई से छाया जाता है। छाजन के भीतरी हिस्से गेंदई, धानी, सुरमई अथवा सलमे-सितारे से जड़े चँदोवे और रंग-विरंगी फूल-पत्तियों से सजाये जाते हैं। मण्डप की सजावट इतनी सुन्दर होती है कि कोई भी व्यक्ति उस पर गर्व कर सकता है। मण्डप के स्तम्भों में भी वन्दनवार, आम के हरे पल्लव, केले के पत्ते, फूलों के छज्जे, नरम बनात और मखमल के सुनहरे फरेरे और कृत्रिम फूल लगाये जाते हैं।

मण्डप के शिखर पर पाँच से दस हाथ तक की एक लम्बी ध्वजा लगाई जाती है। इसके अतिरिक्त मण्डप के ईर्द-गिर्द दशों दिशाओं में पौराणिक दश दिक्पालों—इन्द्र, अग्नि, यम, निर्ऋति, वरुण, वायु, कुवेर, रुद्र, ब्रह्मा और अनन्त की दश ध्वजाएँ गाड़ी जाती हैं, जिनके रंग दिक्पालों के रंग के-से लाल, काले, नीले, सुफेद, काले, हरे, सुफेद, लाल और नीले होते हैं।

मण्डप-निर्माण के उपरान्त कुण्ड और वेदी-निर्माण होता है। वेदी पर एक मण्डल बना कर बीच में अष्टदल कमल बनाते हैं। उसी पर अपने प्रधान इष्टदेव को पूजते हैं। जिस जगह कलश-स्थापन होता है, ठीक उसी के समीप वेदी बनाई जाती है, जिस पर हलदी से स्वस्तिक की आकृति बना कर फूल-फल और अक्षत-सुपारी से गणेश का आवाहन करते हैं। इस समय जो गीत गाये जाते हैं, वे 'वेदी के गीत' के नाम से प्रसिद्ध हैं।

मण्डपादि निर्माण के बाद वर की यात्रा का शुभ मुहूर्त्त आता है। बरात की तैयारियाँ हफ्तों से होने लगती हैं। दूल्हे के भाई-बान्धव, हित-कुटुम्ब और दायाद सब आमंत्रित होते हैं। चारों ओर चहल-पहल रहती है। रिश्तेदारों के यहाँ विवाह की तारीख का ढिंढोरा पिट जाता है और बरात की सुनिश्चित तिथि पर सब आलकी-पालकी, डोली, तांगे, घोड़े और हाथी लेकर बरात की सजावट के लिए जुट आते हैं। रंगरेज दुपट्टे रंगते हैं। मालिनें गजरें बनाती हैं और दूल्हे को भेंट करती हैं। जब दूल्हा पालकी में बैठ कर अपने रिश्तेदारों और भाई-बान्धवों के साथ श्वसुर-गृह के लिए प्रस्थान करता है तो पालकी के दोनों ओर दो नाई अदब से चँवर लिए दौड़ते चलते हैं। इस प्रकार जब वर-पक्ष शाम को कन्या के दरवाजे पर जाता है, तो कन्या-पक्ष की नगर-निवासिनी महिलाएँ आभूषणों से अलंकृत हो कर दूल्हे की अगवानी में 'स्वागत-संगीत' गाती हैं। 'स्वागत-संगीत' गाने के लिए ग्राम की हर उम्रकी देवियों की संगीत-महफ़िलें जुटती हैं। फिर आमोद की नदी इस तरह उमड़ती है कि कुछ न पूछिये।

अगवानी और द्वार-पूजा के अनन्तर रास्ते की थकी-माँदी बरात दूल्हे को लेकर जनवासे (वर-पक्ष के ठहरने का स्थान) को लौट आती है।

और जब वर-कन्या के विवाह का उपयुक्त अवसर आता है तब कन्या-पक्ष की बाँदियाँ सिर पर आम्र के हरित पल्लवों से परिवेष्टित कलश लेकर अपनी हमजोलियों के साथ मंगल गाती हुई दूल्हे को निमंत्रित करती हैं। इस समय जो मंगलात्मक गीत गाये जाते हैं, वे मिथिला में 'शंकर के गीत' के नाम से मशहूर हैं। ये हमें मिथिला के गौरवपूर्ण अतीत और उसकी प्राचीन सार्वभौमिक आर्य-संस्कृति के उत्कर्षापकर्ष की याद दिलाते हैं। बाँदियों के लौट आने पर दूल्हा पालकी में बिठा कर विवाह-मण्डप में लाया जाता है। इस प्रकार बाजे-गाजे के साथ वर के मण्डप के निकट पहुँचते ही पहले शान्ति-पाठ होता है। इसके बाद वर मधुपर्क पूजा का संकल्प करता है।

मधुपर्क-पूजा की समाप्ति के बाद भी अन्य अनेक विधि-व्यवहार होते हैं, जिन्हें विस्तार-भय से छोड़ रहा हूँ। विवाह-संस्कार के समय जब दुलहिन का भाई वर के गले में चादर डाल कर उसे मंडप के चारों ओर मंडलाकार घुमाता है, उस समय भी कुछ गीत गाये जाते हैं, जो 'भाउर के गीत' के नाम से प्रसिद्ध हैं। इस प्रकार 'कोबर', 'क्षीर-भोजन', 'चुमावन' आदि पृथक्-पृथक् कर्मों में पृथक्-पृथक् शैलियों के गीत गाये जाते हैं।

परिवार की उत्पत्ति और विकास से विवाह-पद्धति का चिरकालीन सम्बन्ध है। देश-काल के अनुसार विवाह के रंग-ढंग, रीति-नीति और नियम पृथक-पृथक रहे हैं। यह पृथकता का चलन आज भी संसार की अनेक जातियों में प्रचलित है। धार्मिक या शास्त्रोक्त दृष्टि से विवाह का वास्तविक उद्देश्य संतानोत्पत्ति-द्वारा जन-सेवा था। सच देखा जाय तो खानाबदोश मानव-परिवार को स्थायी कृषक-जीवन की ओर अग्रसर करने में धार्मिक विवाह-प्रणाली का जबरदस्त हाथ रहा। यद्यपि बीसवीं शती में व्यक्तिगत स्वतंत्रता के विचारों ने इस पवित्र मान्यता को शनैः-शनै शिथिल कर डाला है। उदाहरणस्वरूप मिथिला के कितने ही विवाह-गीतों में माता-पिता या बुजुर्गों के द्वारा निश्चित विवाह-प्रथा के विरुद्ध विद्रोह का ज्वालामुखी

भभक उठा है, और विवाह के लिए समानता के आदर्श, पारस्परिक प्रेम या मित्रता को ही वर-बधू का हार्दिक समर्थन मिला है।

मैथिली विवाह-गीतों के वर्ण-पट में मयूर-पुच्छ की भांति विविध शैली की विविधरंगी रेखायें दिखलायी पड़ती हैं। इनमें प्रत्येक की भाव-भंगी भिन्न है। इसीलिए, यद्यपि गीत-पट की भिन्न-भिन्न शैली के रंगों का एकत्रित रूप-चित्र प्रस्तुत करना कठिन है तो भी यहां केवल विशेष चमकती हुई रेखाओं का ही परिचय दिया गया है।

यहाँ मिथिला के कुछ चुने हुए लोक-गीत दिये जाते हैं, जो विवाह के अवसर पर गाये जाते हैं—

(१)

निम्न-लिखित गीत सिन्दूर-दान के पूर्व विवाह-पंडाल में कन्या-पक्ष की ओर से गाया जाता है। पुरातन ग्राम-संस्कृति इस गीत की पृष्ठभूमि है—

कहमहिं जनमल आगर-चानन
कहमहिं उपजय बंगला- पान हे
कहमहिं जनमल सीता-अइसन सुन्दरि
कहमहिं जनमल श्रीराम हे
वनहिं में जनमल आगर-चानन
वनहिं में उपजय बंगलापान हे
जनकपुर में जनमल सीता अइसन सुन्दरि
अयोध्या में जनमल श्री राम हे
आउ-धाउ नउआ हे आउ धाउ बाभन
आउ-धाउ अयोध्या के लोग हे
सउँस अयोध्या में राम जी दुलरुआ
हुनके क तिलक चढ़ाउ हे
आउ-धाउ नउआ हे आउ-धाउ बाभन
धाउ-धाउ अवध क लोग हे

हमरा अयोध्या में सोने क मरउआ
सोने क मरउआ मँगाउ हे
मरवा कें ओते-ओते सीता मिनति करथि
सोआमीजी सँ अरज हमार हे
सोने क मरउआ से विआह न होयत
इकरी के माड़व छवाउ हे
आउ-धाउ नउआ हे आउ-धाउ बाभन
धाउ-धाउ अयोध्या क लोग हे
हमरा अयोध्या में सोने क मउरिया
सोने क मउरिया मँगाऊ हे
मउरी क ओते-ओते सीता मिनति करथि
सोआमीजी स अरज हमार हे
सोने क मउरिया स विआह न होयत
फुलवा के मउरि मँगाउ हे
धाउ-धाउ नउआ हे धाउ-धाउ बाभन
धाउ-धाउ अयोध्या के लोग हे
हमरा अयोध्या में सोने क कलसवा
सोने क कलस मँगाउ हे
कलसा क ओते-ओते सीता मिनति करथि
सोआमी जी स अरज हमार हे
सोने क कलसा से विआह न होयत
माटी के कलस मँगाउ हे

कहाँ मलयागिरि चन्दन पैदा होता है, और कहाँ बंगला पान?
कहाँ सीता-सी सुन्दरी अवतरित हुई, और कहाँ श्रीराम पैदा हुए?
वन में मलयागिरि चन्दन पैदा होता है, और वन ही में बंगला पान।

जनकपुर में सीता-सी सुन्दरी अवतरित हुई, और अयोध्या में श्रीराम पैदा हुए।

हे हज्जामो! आओ! दौड़ो!! हे ब्राह्मणो! आओ! दौड़ो!! हे अवध के रहनेवालो! आओ! दौड़ो!! सारे अयोध्या के राम प्यारे हैं। उनको तिलक चढ़ाओ।

हे हज्जामो! आओ! दौड़ो!! हे ब्राह्मणो! आओ! दौड़ो!! हे अयोध्या के रहनेवालो! दौड़ो! दौड़ो!! हमारे अवध में सुवर्ण का मण्डप है। जाओ। ला दो।

सीता मण्डप की ओट में अपने पति से निवेदन करती है कि सुवर्ण-निर्मित मण्डप में हमारा व्याह न होगा। कुश और बाँस-पत्तियों से मण्डप सजा दो।

हे हज्जामो! आओ! दौड़ो!! हे ब्राह्मणो! आओ! दौड़ो!! हे अवध के रहनेवालो!! दौड़ो! दौड़ो!! हमारे अवध में सुवर्ण-निर्मित मुकुट है। जाओ। ला दो।

मुकुट की आड़ में सीता अपने पति से अनुरोध करती है कि सुवर्ण-रचित मुकुट से हमारा व्याह न होगा। इसलिए फूल का मुकुट ला दो।

हे हज्जामो! दौड़ो! दौड़ो!! हे ब्राह्मणो! दौड़ो!! हे अवध के वाशिन्दो! दौड़ो! दौड़ो!! हमारे अवध में सोने का कलश है। ला दो।

कलश की ओट में सीता अपने पति से निवेदन करती है कि सोने के कलश से हमारा विवाह न होगा। अतः मिट्टी का कलश मँगवा दो।

यह गीत हिन्दू-सभ्यता के उस समय का स्मरण दिलाता है, जब लोग सुवर्ण-निर्मित मण्डप और मुकुट की अपेक्षा बाँस-पत्तियों तथा फूल के मुकुट और मण्डप को ही उत्कृष्ट समझते थे। यह गीत गाँवों की प्राचीन संस्कृति का एक सुन्दर प्रमाण है। इसमें गाँव के प्राचीन आदर्श का परिचय सीता के मुख से अपने स्वाभाविक रूप में कराया गया है।

(२)

पिपरक पात झलामलि हे
बहि गेल तितल बतास
ताहि तर कोन बाबा पलंगा ओछाओल
बाबा क आयल सुख नींद हे
चलइत-चलइत अइलि बेटी कोन बेटी
खटिआ के पउआ धयले ठाढ़ि हे
जाहि घर आहे बाबा धिआ हे कुमारि
से हो कोना सुतथि निचित हे
अतना बचनिया जब सुनलन्हि कोन बाबा
घोड़ा चढ़ि भेला असवार हे
चलि भेल मगह मुंगेर हे
पुरूब खोजल बेटी पछिम खोजल
खोजल में मगह मुंगेर हे
तोहरा जुगुति बेटि वर नहिं भेंटल
खोजि अएलौं तपसि भिखार हे
निरधन तपसिया हमें न बिआहव
मरि जएवौं जहर चबाय हे

पीपल के झिलमिल पत्ते हैं। मन्द-मन्द शीतल हवा बह रही है। उस पीपल की ठंडी छाँह में अमुक पिता पलंग बिछा कर बैठा और ठंडी हवा के झोंके से गाढ़ी नींद में सो गया।

यह देख कर अमुक बेटी वहाँ पलंग का डाँड़ पकड़ कर खड़ी हुई, और बोली—

'हे पिता, जिसके घर में कुँआरी कन्या है, भला वह किस तरह सुख की नींद सोयेगा ?'

यह सुन कर उसका पिता घोड़े पर सवार हुआ, और दूल्हा की

तलाश में निकला। उसने पूरब ढूँढ़ा, पछिम ढूँढ़ा, मगध और मुंगेर भी ढूँढ़ डाला; लेकिन उसकी कन्या के उपयुक्त वर नहीं मिला।

अन्त में उसने लौट कर अपनी कन्या से कहा—'हे बेटी, तुम्हारे उपयुक्त वर नहीं मिला। अतः मैंने तुम्हारे लिए एक निर्धन वर तलाश किया है।'

कन्या ने कहा—

'हे पिता, निर्धन तपस्वी को मैं नहीं व्याहूँगी। (निर्धन को व्याहने के पूर्व ही) मैं गरल-पान कर मर जाऊँगी।'

इस गीत से मालूम होता है कि जिस समय का यह गीत है, उस समय कन्या अपना जीवन-संगी चुनने के लिए स्वतंत्र थी और वह अपनी इच्छा के अनुरूप योग्य वर का वरण करती थी। इसीलिए जब पिता ने अपनी कन्या के उपयुक्त वर न ढूँढ़ कर एक निर्धन तपस्वी को तिलक चढ़ाया तो कन्या ने उसका विरोध किया। इसके अतिरिक्त कन्या के विवाह के लिए पिता को कितनी चिन्ता होती है, यह कवि ने 'जाहि घर आहे बाबा धिया हे कुमारी, से हो कइसे सुतथि निचिंत हे' में बड़े मार्मिक ढंग से चित्रित किया है।

(३)

देखु देखु देखु सखिया श्यामल पहुनमा हे
जिनका देखइत सखी मोहि जात मनमा हे
मिथिला के असही-दुसही डारे ने कोइ टोनमा हे
तातें सहेलिया मोरी दइ दिउ डिठौनमा हे
घोरवा चढ़ल आवै छयला अलबेलबा हे
घोरवा गुमान भरे करे फनफनमा हे
जोहर जरित जिन जेवर झनझनमा हे
झुकि झुकि चुचुकारे झुले मोरिया छोरनमा हे
भाल विशाल पर तीन रेखनमा हे
मनहु जनावे तीन लोकन अइसनमा हे
गोल-गोल गाल पर डोले अलकनमा हे

झुकि-झुकि पूछे मानो केहि मन ठेकनमा हे
मुशकन मद पीके डोले मोतिया कुंडलनमा हे
बोलिया अनमोलिया पर अंग पुलकनमा हे
मलवा अलबेलबा सखी देवय सिखनमा हे
आउ- आउ शरनिया हुनकि चाहु कल्यनमा हे
जनके हित करते-करते बढ़े कर-कमलनमा हे
अँखिया में रहते-रहते श्याम भेल रंगनमा हे
मुट्ठी एक ऊँच छथिन सिया से सजनमा हे
एके गढ़वैया गढ़े दुहुँ के गढ़नमा हे
धन-धन किशोरी मोरी जेहि लागि ललनमा हे
आपहिं सँ बनि अयलन्हि मिथिला मेहमनमा हे
जुग-जुग जीवथु सखि दुलहिन दुलहनमा हे
सब सखि मंगल गावे बरसे सुमनमा हे

हे सखी, देखो। साँवरे दूल्हे को देखो, जिसे देखते ही मन आकर्षित हो जाता है।

मिथिला की कोई डायन दूल्हे पर टोना न कर दे। हे सखी, नजर से बचाने के लिए दूल्हे के माथे में काजल का टीका लगा दो।

हे सखी, देखो वह अलबेला दूल्हा घोड़े पर सवार होकर आ रहा है। घोड़ा गुमान से भरा है। चुस्ती से अकड़ कर कूद रहा है। उसकी पीठ पर जवाहर से जड़ा हुआ जीन है। गहने से लदे हुए उसके अंग-प्रत्यंग झंकृत हो रहे हैं।

दूल्हे के मुकुट के झूलते हुए छोर झुक-झुक कर घोड़े को पुचकार रहे हैं।

दूल्हे के विशाल ललाट पर चन्दन की तीन रेखाएं हैं, जैसे वे तीनों लोक की विशालता की सूचना दे रही हों।

दूल्हे के गोल-गोल गाल पर काले-काले छल्लेदार बाल बिखर रहे हैं, जैसे वे झुक-झुक कर दूल्हे के मन की बात पूछ रहे हों। दूल्हे की मद-भरी

मुसकान पी कर मोती से जड़े हुए कुंडल डोल रहे हैं, और उसकी अनमोल बोली सुनकर श्रोता आनन्द-विभोर हो जाते हैं।

हे सखी, लगता है जैसे दूल्हे के बेशक़ीमती हार कह रहे हों—'हे मनुष्य, यदि कल्याण चाहते हो तो दूल्हे की शरण आओ।'

सज्जनों का हित करते-करते दूल्हे के कर कमल खिल गये हैं, और श्रद्धालु भक्तों की आँखों में रहते-रहते उसका रंग साँवला हो गया है।

हे सखी, दूल्हा दुलहिन सीता से एक मुट्ठी ऊँचा है। मालूम होता है, एक ही कारीगर ने दोनों की सृष्टि की है।

हे सखी, हमारी सौभाग्यवती सीता धन्य है जिसके लिए ऐसा सुन्दर दूल्हा स्वयं मिथिला का मेहमान बन कर आया।

हे सखी, दूल्हे और दुलहिन की यह युगल जोड़ी युग-युग जीये।

इस प्रकार सखियाँ प्रफुल्लित होकर मंगल गाने लगीं, और दूल्हे पर बार-बार फूलों की वर्षा की।

(४)

वर की माँगे—वर सोने क अंगुठी
रूमाल माँगे
वर चन्दन में रोली लगाय माँगे
वर की माँगे
वर सिकरी माँगे—
वर सिकरी में करी लगाय माँगे
वर की माँगे
वर दुलहिन माँगे—
वर दुलहिन में परदा लगाय माँगे

दूल्हा क्या माँगता है?
सोने की अँगूठी माँगता है—रूमाल माँगता है।
चन्दन में रोली लगा कर माँगता है।
दूल्हा क्या माँगता है?

सिकड़ी माँगता है—सिकड़ी में कड़ी लगा कर माँगता है।
दूल्हा क्या माँगता है?
दुलहिन माँगता है—दुलहिन में पर्दा लगा कर माँगता है।

(५)

जरी क टोपी में रूपा लगे
पेन्हु त रामजी देखव भरि नजरी
हँसु त रामजी देखव भरि नजरी
चलु त रामजी देखव भरि नजरी
आजु त रामजी अवधपुर नगरी
काल्हु त रामजी जनकपुर नगरी
सोने क कुंडल में मोती जरे
पेन्हु त रामजी देखव भरि नजरी
चलु त रामजी देखव भरि नजरी
सोने क माला में हीरा जरे
पेन्हु त रामजी देखव भरि नजरी
इतर क पानी में चन्दन घिसे
करू त रामजी देखव भरि नजरी

जरी की टोपी में रूपा खिल रहा है। हे दूल्हा, जरा पहन तो लो, आँखें भर कर देखूँ?

हे दूल्हा, जरा हँस तो दो, आँखें भर कर देखूँ?

जरा चलो तो आँखें भर कर देखूँ?

आज दूल्हा अवध में है। कल जनकपुर रहेगा।

सोने के कुंडल में मोती सुशोभित है। हे दूल्हा, जरा पहन तो लो, आँखें भर कर देखूँ?

सोने के हार में हीरा सुशोभित है। हे दूल्हा, जरा पहन तो लो, आँखें भर कर देखूँ?

जरा चलो तो, आँखें भर कर देखूँ?

इत्र के जल में चन्दन घिसा हुआ है। हे दूल्हा, जरा लगा तो लो, आँखें भर कर देखूँ ?

(६)

दुलहा आए दुअरिया में– घन साजु हे सखिया इजोरिया में
दउरि चलत प्रभु हँसत सखी सब जनमाए बाजीगरिया से
ठुमुकि चलत कहत सखी सब जनमाए हाथि हथिसरिया में
ठारि भए प्रभु कहत सखी सब जनमाए शैल सगरिया में

दूल्हा द्वार पर आ गया। हे सखी, चलो हम जमात में सज-धज कर चाँदनी रात में दूल्हे का स्वागत करें।

दूल्हा दौड़ कर चलता है तब सखियाँ ताली पीट देती हैं। कहती हैं—'लगता है जैसे दूल्हे की माँ ने दूल्हे को अस्तबल में घोड़े के साथ प्रसंग कर पैदा किया है।'

दूल्हा द्वार पर आ गया। हे सखी, चलो हम जमात में सज-धज कर चाँदनी रात में दूल्हे का स्वागत करें।

दूल्हा धीरे-धीरे पाँव उठाता है तो वे कहती हैं—'लगता है जैसे दूल्हे की माँ ने दूल्हे को हाथी के साथ प्रसंग कर फ़ीलख़ाना में पैदा किया है।'

और जब दूल्हा संकोच में पड़ कर रुक जाता है तो वे कहती हैं—'मालूम होता है, जैसे दूल्हे की माँ ने पहाड़ के साथ प्रसंग कर दूल्हे को समुद्र में पैदा किया है।'

दूल्हा द्वार पर आ गया। हे सखी, चलो हम जमात में सज-धज कर चाँदनी रात में दूल्हे का स्वागत करें।

(७)

चितचोरवा आजु बन्हैलनि हे
एहि चितचोरवा के शिर मणि मउरवा
छोरवा छवि छहरओलनि हे
एहि चितचोरवा के चोखे दृग कोरवा
ओठवा अनुठवा कहओलनि हे

सोने के उखरिया में मणि के मुसरवा
आठे चोट चउरवा छोरओलनि हे
ओहि रे चउरवा के बान्हु शुभ करवा
सिया प्यारी बरवा कहओलनि हे
एहि चितचोरवा के लालि-लालि ठोरवा
·मनमोरवा भरमओलनि हे
चितचोरवा आजु वन्हैलनि हे

हे सखी, आज यह चित्तचोर बाँध दिया गया।

इस चित्तचोर के शिर पर मणि का मुकुट है, जिससे सौन्दर्य उमड़ा पड़ता है।

हे सखी, इस चित्तचोर की आंखों की कोर नुकीली है। होंठ अनूठे हैं।

सोने के ऊखल में मणि का मूसल है जिससे छांट-छांट कर चावल छुड़ा लिया गया। उस चावल को सुन्दर हाथों में रख कर राम सीता का दूल्हा बन गया।

हे सखी, दूल्हे के होंठ लाल-लाल हैं जो दर्शकों के चित्त को आकर्षित कर लेते हैं।

हे सखी, आज यह चित्तचोर, बन्धन में बाँध दिया गया।

(८)

धरिअउ मूसर सम्हांरि अठोंगर विध भारी हे
आठ ही चोट अहाँ कसि-कसि मारू
देखु अहाँ के बरिआरी
सार मंडप चहुँ ओर घुमाओल
वेदी क नजर निहारी.
एहि विधि करत अठोंगर चारु दुलहा
सखी सब गावत गारी
अठोंगर विध . भारी हे

हे दूल्हे, मूसल सँभाल कर पकड़ो। अठोंगर की विधि (अत्यन्त) कठिन है।

मूसल की मोटी धार से आठ बार कस-कस कर धान कूटो। देखूँ, तुम्हारे बाजू में कितना बल है।

हे दूल्हे, अठोंगर की विधि (अत्यन्त) कठिन है।

साला—दुलहिन का भाई दूल्हे को (उसकी गरदन में चादर लपेट कर) वेदी के चारों ओर (वेदी पर दृष्टि रख कर) घुमा रहा है।

इस प्रकार चारों दूल्हे—राम, लक्ष्मण, भरत और शत्रुघ्न अठोंगर की विधि सम्पन्न कर रहे हैं। सखियाँ गाली दे रही हैं।

हे दूल्हे, अठोंगर की विधि (अत्यन्त) कठिन है।

(९)

दुलहा देखन में छथि छोट, विद्या गुनन में छथि मोट
दुलहा अहाँ लिय खाउ बरफी, कोवर में मिलत अशरफी
दुलहा अहाँ लिय खाउ पेरा, न अइ में करू बखेरा
दुलहा तनि लिय खाउ बताशा, मत करू बहुत तमाशा
दुलहा तनि लिय खाउ धनिया, अहाँ क कोवर में मिलत कनिया

दूल्हा देखने में छोटा है। पढ़ने में खोटा।
हे दूल्हा, तुम बर्फ़ी खाओ। कोहवर में तुम्हें अशरफ़ी मिलेगी।
हे दूल्हा, पेड़ा खाओ। बखेड़ा मत करो।
हे दूल्हा, बताशा खाओ। तमाशा मत करो।
हे दूल्हा, धनिया खाओ। कोहवर में तुम्हें कनिया (दुलहिन) मिलेगी।

(१०)

मोर पछुअरवा लवंग केर गछिया
लवंगा चुअए आधि रात हे
लवंगा में चुनि-चुनि सेजिया डँसाओल
इंगुर ढेंउरल चारु कोन हे

ताहि सेजिया सुतलन्हि दुलहा कओन दुलहा
संगे भडुअबक धिआ हे
आशुर सुतु आशुर बइसु कन्या सुहवे
घाम सँ चादर होय मइल हे
अतना वचनिया जब सुनलन्हि कन्या सुहवे
रूसलि नइहरवा के जाथि हे
एक कोस गेलि दोसर कोस गेलि
तेसर कोस नदि छछकाल हे
आ रे आ रे केवट मलहवा रे भइया
जल्दी से नइया लय आउ हे
आजुक रतिया सुनरि अतहि गँवाऊ
विहने उतारब पार हे
आ रे आ रे केवट मलहवा रे भइया
अहाँक बोलि मोहि ने सोहाय हे
सेजयहिं छाँड़ल कुँअर कन्हैआ
जइसँ सुरुजव क जोत हे
एक लेवय आवय आजन-बाजन
दोसर आवय सोजन लोग हे
तेसर लावन आवय दुलहा सँ कोन दुलहा
मोहि मनावन होय हे

मेरे पिछवाड़े लौंग का गाछ है। लौंग आधी-आधी रात को चूता है। लौंग बीन-बीन कर मैंने सेज सजाई और कोहवर के चारों किनारे ईंगुर और चोआ-चन्दन से चर्चित किया।

उस सेज पर अमुक दूल्हा सोया और उसके साथ (उसकी प्रियतमा) अमुक कन्या सोई।

दूल्हे ने कहा—'हे प्यारी, तुम मुझसे हट कर सोओ। हट कर बैठो। पसीने से मेरी चादर मैली हो जायगी।'

यह सुन कर उसकी प्रियतमा रूठ कर नैहर चली। वह एक कोस गई। दो कोस गई। जब वह तीसरा कोस तय करने लगी तो सामने भयानक नदी दीख पड़ी।

नायिका ने कहा—'रे केवट भाई, जल्दी नाव लाओ, और मुझे पार लगा दो।'

मल्लाह ने कहा—'हे सुन्दरी, आज की रात तुम मेरे ही साथ बिताओ। कल प्रातःकाल तुम्हें पार लगा दूँगा।'

नायिका ने उत्तर दिया—'रे केवट भाई, मुझे ऐसी कलुषित बोली नहीं भाती। मैंने अपनी सेज पर (तुमसे सुन्दर) सूर्य के प्रकाश की तरह देदीप्यमान अपने प्रियतम का परित्याग कर दिया, और मुझे वापिस ले जाने के लिए हित-कुटुम्ब, मेरे पुरजन-परिजन और मेरे प्रियतम अमुक दूल्हा आ रहे हैं।'

इस गीत में प्राचीन आर्य-संस्कृति का एक क्षीण आभास वर्त्तमान है, जब आर्य-ललनाएँ लाख प्रलोभन मिलने पर भी धर्म से च्युत नहीं होती थीं। गीत की नायिका जब अपने पति से अपमानित होकर नैहर चली तो रास्ते में उसके सौन्दर्य्य पर एक मल्लाह लट्टू हो गया। इस पर उस सती साध्वी स्त्री ने उस मल्लाह को जो उत्तर दिया, वह उसके उच्च चरित्र-बल का परिचायक है।

(११)

साँवली सुरतिया बिलोकु सखिया
हे विलोकु सखिया
जादूवाली अपन जदुआ बचाए रखिह
हे बचाए रखिह
अपन टोनावाली टोनमा सम्हार रखिह
हे सम्हार रखिह
शिर के मऊरिया विलोकु सखिया
हे विलोकु सखिया
लाल-पीत जामा-जोरा देखु सखिया
हे देखु सखिया

मुखवा के पनमा विलोकु सखिया
हे विलोकु सखिया
जादू-भरी अँखिया निहारु सखिया
हे निहारु सखिया

हे सखी, इस साँवरी सूरत को तो देखो। हे सखी, तनिक देख लो।

हे जादूवाली जोगन, अपने-अपने तंतर-मंतर रोक रक्खो।

रोक कर रक्खो अपने-अपने तंतर-मंतर!

हे टोनेवाली जादूगरनी, अपने-अपने टोने सँभाल कर रक्खो।

सँभाल कर रक्खो अपने-अपने टोने। दूल्हे पर कोई वशीकरण टोना ना डाले।

हे सखी, दूल्हे के सिर के मुकुट को तो देखो। तनिक सिर के मुकुट को देख लो।

हे सखी, उनके लाल-पीले आभरण को तो देखो। हे सखी, तनिक उन्हें देख लो।

हे सखी, उनके होंठ के पान की लाली तो देखो। हे सखी, तनिक उन्हें देख लो।

और हे सखी, उनकी जादू-भरी आँखें भी देखो! हाँ हे सखी, तनिक उन्हें देख लो।

(१२)

मिथिला नगरिया की चिकनी डगरिया
सखि धीरे-धीरे
चले जात दुनु भइया, सखि धीरे-धीरे
दाएँ-बाएँ गौर-श्याम
ठुमुक धरत पाँव, सखि धीरे-धीरे
विहरत शहर डगरिया, सखि धीरे-धीरे
निरखत धवल धाम
हरखि कहि-कहि ललाम
चितवत कलस अटरिया, सखि धीरे-धीरे

देखन महु देव-योग
हँसि-हँसि कहत लोग, सखि धीरे-धीरे
जादू-भरी नजरिया, सखि धीरे-धीरे

मिथिला नगर की चिकनी डगर पर—जा रहे री सखी, धीरे-धीरे!
दोनों भाई—दाएँ-बाएँ
साँवले और गोरे; राम और लक्ष्मण।
री सखी, थम-थम कर उठाते हैं पाँव, धीरे-धीरे।
शहर की गली-गली और डगर-डगर में—
विहर रहे हैं, री सखी, धीरे-धीरे!
लो घूर-घूर कर निहार रहे हैं धवल प्रासादों को—
और उसके लावण्य की दाद दे रहे हैं—पुलक-पुलक कर!
हेर रहे हैं एक टक अट्टालिकाओं की मुंडेर को—
अपनी चितवन से, री सखी, धीरे-धीरे!
लोग हँस-हँस कर कह रहे हैं—
देवता के तुल्य हैं वे देखने में।
आह, उनकी आँखें जादू-भरी हैं, री सखी, धीरे धीरे!

(१३)

विजुवन विजुवन तलिया खनावल
तलिया कँ चिकनियो माटि हे
ताहि पइसि मालिन कमल रोपावल
भँओरा पइसि रस लिउ हे
आँख अहाँक देखु दुलरुआ कमल कँ फुलवा
ओठ अहाँक लगै बिमफल हे
दाँत अहाँक देखु दुलहुआ
अनार केर दनमा
गरदन शीशा कँ होर हे

एतना सुरतिया के दुलहा से कोन दुलहा
कोन विधि रहलि कुमार हे
बाबा जँ हमर दर रे देवनिया
पितिया जोतथि कुँर खेत हे
भाय जँ हमर जीरा कँ लदनिया
तेंहि सासु रहलि कुमार हे
बाबा जे छोड़लन्हि दर रे देवनिया
पितिया कयल कुँर खेत हे
भइया जे छोड़लन्हि जीरा के लदनिया
अब सासु होयत बिआह हे

विजुवन में तालाब खुदाया। उसकी मिट्टी चिकनी है। उसमें पैठ कर मालिन ने कमल का पौधा लगाया, जिसमें क्रीड़ा कर भौंरा कमल का रस पीता है।

दूल्हे की सास कहती है—'हे दूल्हा, तुम्हारी आँखें ऐसी हैं, मानो कमल के फूल हों। तुम्हारे होंठ कुंदरू फल की तरह लाल हैं। तुम्हारे दाँत अनार के दाने की तरह बिखरे हैं, और तुम्हारी गरदन सुराही की होड़ करती है। इतना सौन्दर्य्य पाकर भी हे अमुक दूल्हा, न मालूम तुम अब तक कैसे क्वारे रहे ?'

दूल्हे ने कहा—'हे सास, मेरे पिता दरबारदारी करते थे। चाचा गृहस्थी का काम सँभालते थे, और मेरे भाई जीरे के व्यापारी थे। इसलिए मैं अब तक क्वारा रहा।

लेकिन, अब मेरे पिता ने दरबारदारी का पेशा छोड़ दिया। चाचा गृहस्थी का काम सँभालते रहे और मेरे भाई ने जीरे का व्यापार करना छोड़ दिया। इसलिये हे सास, अब मेरा व्याह होगा।

इस गीत में कवि ने गरदन की उपमा सुराही से देकर हिन्दी में एक नई मिसाल पेश की है। यह संस्कृत और हिन्दी-साहित्य के लिए बिलकुल

अनोखी बात है। हिन्दी में तुलसी, सूर आदि महाकवियों ने गरदन की उपमा शंख से दी है—

'रेखा रुचिर, कम्बु कल ग्रीवा,
जनु त्रिभुवन-सुखमा की सीवा।'

गीत में व्यवहृत 'सुराही' की उपमा से प्रतीत होता है कि इस पर मुगल-कालीन संस्कृति की छाप है। क्योंकि फ़ारसी और उर्दू-साहित्य में गरदन की उपमा सुराही से दी गई है—

'कुरबान तेरी आँख पै, हो दीदए-सागर
गरदन पे फ़िदा शीशए, बिल्लौर की गरदन।'

(१४)

कोवर लिखल कोशिला रानी
अओरो सुमित्रा रानी हे
आम कें घौंद लिखल केकइया रानी
बड़ रे यतन सये हे
ताहि कोवर सुतलन्हि कोन दुलहा
संगे कन्या सुहवे हे
मुहमा उघारि जब प्रभु देखलन्हि
किय किय अभरन हे
मांग के **टीका** प्रभु तोहे छहु
देवरा शंखा चुड़ि हे
चन्द्रहार सासु दुलरइतिन
बाजुबन्द देवरानी हे
पुत मोरा नयना के इजोरवा
ननद नवरंग चोलि हे
भँइसुर माँग के टिकुलिया
ए हो रे सब अभरन हे

रानी कौशल्या और सुमित्रा ने कोहबर को विविध प्रकार से सजाया और कैकेयी ने बड़े यत्नपूर्वक आम के फले हुए गुच्छे के चित्र लिखे।

ऐसे सुचित्रित कोहबर में अमुक दूल्हा सोया, और उसके साथ उसकी नवोढ़ा दुलहिन भी सोई।

दूल्हे ने अपनी नवोढ़ा दुलहिन का घूंघट खोला, और पूछा—

'हे प्रियतमे, तुम्हारे पास कौन-कौन आभूषण हैं ?'

दुलहिन ने उत्तर दिया—'हे सजन, तुम मेरी माँग का शृंगार हो। मेरा देवर शंख की चूड़ी है। मेरी सास मेरे गले का चन्द्रहार है, और देवरानी मेरा बाजूबन्द। मेरा पुत्र मेरा आँखों का दिव्य नूर है। मेरी ननद नवरंगी चोली है, और मेरा भँसुर मेरी माँग की टिकली। हे सजन, यही मेरे शरीर के आभूषण हैं।'

कितने सुन्दर भाव हैं ? यदि हमारे देश की सभी कुल-ललनाएँ सोने-चाँदी के कृत्रिम गहनों को ठुकरा कर परिवार के लोगों को ही अपना गहना समझ लें, तो सामाजिक गृह-कलह सदा के लिए बन्द हो जायँ।

(१५)

कथि बिनु आहे अमा चउरवो ने सीझल
कथि बिनु अँखियो ने नींद हे
दूध बिनु आहे बेटी चउरवो ने सीझल
पुत्र बिनु अँखियो ने नींद हे
जाहि दिन आगे बेटी तोहरो जनम भेल
भरला भदउआ के रात हे
दाइ तोहर गे बेटी मनहिं बेदिल भेल
घरे-वरे ठोकल केंवारु हे
फूआ तोहर गे बेटी मनहिं कुपित भेल
गोरे-मुरे चादर लपटाय हे

गोइठि कसिय गील बोरसि भरयलन्हि
दुख सँ काटलि रात हे
जाहि दिन आगे बेटी पुत्र हे जनम लेल
भेल पूर्णिमा के रात हे
दाइ तोहर गे बेटी मनहिं हुलसि गेल
घरे-घरे खोलल किवार हे
फूआ तोहर गे बेटी मनहि हरसित भेल
सब सखी सोहर उठाउ हे
बाप तोहर गे बेटी मनहिं हरसित भेल
कठउत मोहर लुटाउ हे
धूप भरिय बेटी बोरसि भरयलन्हि
सुख सँ काटल आ हे रात हे

बेटी ने पूछा—'हे माँ, किस वस्तु के अभाव में चावल नहीं गला, और किसके बिना आँख में नींद नहीं आई?'

माँ ने कहा—'हे बेटी, दूध के अभाव में चावल नहीं गला, और पुत्र के बिना आँख में नींद नहीं आई। हे बेटी, जिस दिन तुम्हारा जन्म हुआ, उस दिन भादों की अँधेरी रात थी। तुम्हारी दादी का चित्त उदास था। उसने घर-घर के द्वार बन्द कर शोक मनाये। तुम्हारी फूआ आगबगूला हो गई और सिर से पैर तक चादर लपेट कर सो गई। और, मैंने जंगल के गीले कंडे लेकर अँगीठी जलाई और बड़ी बेचैनी में रात काटी।

लेकिन हे बेटी, जिस दिन मेरे पुत्र का जन्म हुआ, उस दिन पूर्ण चाँदनी खिल गई। तुम्हारी दादी बाँसों उछल पड़ी। उसने घर-घर के द्वार खोल कर उत्सव मनाये। तुम्हारी फूआ आनन्द-विह्वल हो गई। सखियों ने मिल कर मंगल गाये। तुम्हारे पिता बड़े प्रसन्न हुए, और कठौता-भर मुहरें दान कीं। और हे बेटी, मैंने सुगन्धित धूप भर कर अंगीठी जलाई तथा बड़े सुखपूर्वक रात काटी।'

(१६)

कहमहिं लिखल मोर रे मजुरवा
कहमहिं लिखल आठ दल रे
कोवर लिखल मोर रे मजुरवा
वेदिय लिखल आठ दल रे
कहमहि बोलल कारी रे कोयरिया
कहमहिं बोलल मजूर रे
आम डारि बोलल कारी रे कोयलिया
दुअरहिं बोलल मजूर रे
कोवरहिं बोलल दुलहा से कोन दुलहा
जकर अति बड़ भाग रे
केहि मोरा लिखलन्हि एहो प्रेम कोवर
केहि सेज फूल छिरिआउ रे
साली मोरा लिखलन्हि ए हो प्रेम कोवर
सरहज फूल छिरिआउ रे
ताहि कोवर सुतलन्हि दुलहा से को न दुलहा
कोन सुहबे बेनिया डोलाउ रे
बेनिया डोलैवइत बँहिया मुरुचि गेल
सुहबे त रोदन पसारु रे
चुपे रहु चुपे रहु सुहबे से कोन सुहबे
भोरे देव बंहिया जुटाय रे

कहाँ मोर-मयूर चित्रित हुए? कहाँ अष्टदल कमल लिखा गया? कोवर में मोर-मयूर चित्रित हुए। वेदी के इर्द-गिर्द अष्टदल कमल लिखा गया।

कहाँ काली कोयल कूकी? कहाँ मयूर बोला।

आम की डाल पर काली कोयल कूकी, दरवाजे पर मयूर बोला।

कोवर में अमुक सौभाग्यशाली दूल्हा बोला—'यह प्रेम-कोवर किसने लिखा? किसने सेज पर फूल बखेरा?'

मेरी साली ने यह प्रेम-कोवर लिखा, और सलहज ने सेज पर फूल बखेर दिया। कोवर में अमुक दूल्हा सोया और अमुक दुलहिन उसे पंखा से हवा करने लगी।

पंखा झलते समय दुलहिन की बाँह में मोच खा गई। वह रोने लगी। दूल्हे ने कहा—हे प्यारी, चुप रहो। मैं सुबह होते ही यह पीड़ा हर लूँगा।

(१७)

विआहन जयता रे हजरिया
विआहन जयता रे
ढोलक मंजीरा बांधि दुलहा
विआहन जयता रे
छुरी कटारी बांधि दुलहा
विआहन जयता रे
पथरे जयता रे हजरिया
पथरे जयता रे

ढोलक सितारा बाँधि दुलहा
पथरे जयता रे
छुरी कटारी बाँधि दुलहा
पथरे जयता रे
दुअरे जयता रे हजरिया
दुअरे जयता रे
भाय भतीजा साथ में वर
दुअरे जयता रे
छुरा कटारी बाँधि दुलहा
दुअरे जयता रे

मड़वे ज़यता रे हजरिया
मड़वे जयता रे
ढोल सरंगी बाँधि दुलहा
मड़वे जयता रे
सास-ससुर संग साथ में वर
मड़वे जयता रे
कोवर जयता रे हजरिया
कोवर जयता रे

साली सरहज साथ में वर
कोवर जयता रे
ढोल सितारा बाँधि दुलहा
कोवर जयता रे
पलंगे जयता रे हजरिया
पलंगे जयता रे

इतरक शीशी हाथ नेने
पलंगे जयता रे
हँसिक बोऽलु हे धनि तों
हँसिक बोऽलु हे
सखी सलेहर साथ में कोना
हँसिक बोऽलु हे

हजरिया (हजार-दो हजार जिसे तिलक चढ़ाया गया हो) दूल्हा व्याह करने जायगा। दूल्हा ढोलक, मंजीरे बाँध कर व्याह करने जायगा।

छुरी, कटारी बाँध कर दूल्हा व्याह करने जायगा।

हजरिया दूल्हा पैदल ही जायगा। ढोल्क, सितार बाँध कर पैदल ही व्याह करने जायगा। छुरी, कटारी बाँध कर दूल्हा पैदल ही व्याह करने जायगा।

हजरिया दूल्हा दरवाजे पर जायगा। भाई, भतीजे को साथ में लेकर दूल्हा दरवाजे पर जायगा। छुरी, कटारी बाँध कर दूल्हा दरवाजे पर जायगा।

हजरिया दूल्हा मंडप में जायगा। ढोलक, सारंगी बाँधकर दूल्हा मंडप में जायगा। सास, ससुर को साथ में लेकर दूल्हा मंडप में जायगा।

हजरिया दूल्हा कोहवर-घर में जायगा। साली और सरहज को साथ में लेकर दूल्हा कोहवर घर में जायगा। ढोलक और सितार बाँध कर दूल्हा कोहवर-घर में जायगा।

हजरिया दूल्हा पलंग पर जायगा। इत्र की शीशी हाथ में लेकर दूल्हा पलंग पर जायगा।

हे धन, जरा हँस कर बोलो! हे प्यारे, कैसे हँस कर बोलूँ? सखी-सहेलियाँ साथ में हैं। हँस कर कैसे बोलूं?

नचारी

'नचारी' के गाने का कोई खास मौसिम, कोई खास मुहूर्त नहीं। अन्तःपुर में सूनी सेज पर, बेटी के विवाह के अवसर पर, पावस ऋतु में खेतों की मेंड़ पर, संध्या और प्रातःकाल चौपाल में बैठ कर प्रायः हर समय 'नचारी' गाया जाता है। भुक्खड़ और भिखमंगे साधु समर्थ गृहस्थों के द्वार पर इन्हें गा-गाकर भीख माँगते हैं, और शिव की प्रार्थना की ओट में अपनी आर्थिक दुरवस्था का नग्न चित्र खींच कर श्रोताओं में करुणा का भाव जागृत करते हैं। इसलिए इन गीतों में श्रमजीवी किसान और मजदूरों का दर्द-भरा हुंकार भी सुनने को मिल जाता है।

'नचारी' शैली के गीतों में शिव की उपासना का भाव बड़ी उत्कृष्ट रीति से निरूपित हुआ है। किसी-किसी पद में शिव की बरात का उल्लेख, किसी-किसी में उनके स्वभाव, चरित्र और रहन-सहन का परिचय, किसी-किसी में उनके तांडव नृत्य का चित्रण और किसी-किसी पद में कवियों ने दार्शनिक और धार्मिक आदर्शवाद का स्तर निर्धारित किया है। हाँ, आत्म-निवेदन, स्तुति और आत्मबोध का भाव प्रबल हो जाने के कारण इनमें दर्शन का रंग गहरा नहीं है।

अक्सर कन्या-पक्ष की तरफ से दूल्हे शिव को दुलहिन पार्वती से हीन और लघु प्रदर्शित करने का प्रयास किया जाता है। और यह सब गहरे व्यंग्य के रूप में इतनी कुशलता से कहा गया है कि उन्हें पढ़ते ही बनता है। पदावली में यत्र-तत्र सरल और शिष्ट हास्य का भी पुट मिलता है। जहाँ इस तरह के पदों में प्रयुक्त शब्दावलियाँ अपनी व्यंजनावृत्ति के द्वारा दूल्हे के रूप-रंग और उसके हृदय की न जाने कितनी भावनाओं का मनोवैज्ञानिक अध्ययन उपस्थित करती हैं, वहाँ दूसरी ओर मैथिल स्त्रियों के तर्जबयान

जूड़े में लिपटा हुआ सर्प ससर कर दशों दिशाओं में दौड़ पड़ेगा, और कार्त्तिक का पालतू मयूर उसे पकड़ कर निगल जायगा।

गठीली जटाओं में विराजमान गंगा सहस्र-सहस्र धाराओं में पृथिवी पर फूट बहेगी, जो लाख सँभालने के बावजूद काबू में नहीं आयेगी।

गले की रुण्डमाल टूट कर बिखर जायेगी, और साथ में भूतों की असंख्य सेना नाचने लगेगी।

ऐसी दशा में हे गौरी, तुम डर कर भाग जाओगी। नृत्य कौन देखेगा ?

हे सखी, 'विद्यापति' ने यह पद्य गाया है। गा कर सुनाया है। सुनती हूँ, शिव ने गौरी की प्रार्थना स्वीकार कर ली, और उक्त चार बाधाओं का निराकरण कर अपना विकट नृत्य दिखलाया।

शिव नृत्यों में तीन विशेष प्रसिद्ध हैं—

(१) हिमालय का सांध्य नृत्य
(२) हिमालय का तांडव नृत्य
(३) चिदम्बरम् का नदान्त नृत्य

पहला, सान्ध्य बेला में गौरी को सिंहासन पर बैठा कर कैलाश पर्वत पर शिव नृत्य करते हैं। यह शिव की सात्विक वृत्ति का नृत्य है।

दूसरा नृत्य तांडव तामसिक वृत्ति का सूचक है। इसका स्थान श्मशान भूमि है। गीत में इस विकट नृत्य की ओर संकेत-मात्र किया गया है।

तीसरा नृत्य नदान्त है। इसका उल्लेख दाक्षिणात्य लोक-गीतों में मिलता है।

(२)

सुनिऐन्हि हर बड़ सुन्दर
आगे देखिऐन्हि विभूति भयंकर
सुनिऐन्हि हर अओताह रथ पर
आगे देखिऐन्हि बूढ़ बरद पर
सुनिऐन्हि पाट पटम्बर
आगे देखिऐन्हि फाटल बघम्बर

सुनिअैन्हि गारा मोती माल लय
आगें देखिअैन्हि रुद्रक हार लय

सुनती थी, शंकर बड़े सुन्दर हैं। लेकिन देखती हूँ—भयंकर विकराल स्वरूप।

सुनती थी, शंकर रथ पर आयेंगे। लेकिन देखती हूँ—बूढ़े बैल पर।

सुनती थी, शंकर पीताम्बर पहनते हैं। लेकिन देखती हूँ—फटा हुआ व्याघ्रचर्म।

सुनती थी, शंकर के गले में मोती का हार है। लेकिन देखती हूँ—रुद्राक्ष।

(३)

उमा कर वर बाउरि छवि घटा
गला माल बघछाल वसन तन
बूढ़ बयल लटपटा
भसम अंग शिर गंग तिलक शशि
बाल भाल पर जटा
अति सुकुमारि कुमारि मोरि गिरिजा
वर बुढ़वा पेट सटा
कहत 'कारनाट' सुनिय मनाइनि
काहे करत जिव खटा

उमा का दूल्हा बौराहा और देखने में अत्यन्त कुरूप है। उसके गले में मुण्डमाल, कमर में व्याघ्र-चर्म और सवारी के लिए एक लटपटा बूढ़ा बैल है।

उसके अंग-प्रत्यंग में भस्म है। मस्तक पर गंगा विराजमान हैं। जूड़े के ऊपर द्वितीया का चाँद है। योगियों की ऐसी उसकी जटाएँ हैं।

हे सखी, मेरी बेटी गिरिजा अत्यन्त सुकुमार है। लेकिन उसका दूल्हा बूढ़ है। उसके पेट-में-पेट सटा है।

कवि 'कारनाट' कहता है—'हे मनाइन, सुनो। दिल छोटा मत करो। तुम्हारी मनोकामना पूरी होगी।'

(४)

हम नहिं आजु रहब एहि आङ्गन
जौं बुढ़ होयता जमाय
एक तँ वैरि भेल विध विधाता
दोसर धिआ केर बाप
तेसर वैरि भेल नारद ब्राह्मण
जेहि लायल बूढ़ जमाय
धोती लोटा पोथी पतरा
से हो सब लेवैन्ह छिनाय
जौं किछु बजताह नारद ब्राह्मण
दाढ़ी धय घिसिआय
ऐपन निपलन्हि पुरहर फोड़लन्हि
फेंकलन्हि चउमुख दीप
धिया लय मनाइनि मन्दिर पैसलि
केओ जनु गावय गीत
भनहिं 'विद्यापति' सुनिय मनाइनि
इहो थिक त्रिभुवननाथ
शुभ-शुभ कय गौरि विआहिय
इहो वर लिखल ललाट

यदि मेरा दामाद बूढ़ा हुआ तो आज इस आँगन में नहीं रहूंगी।

एक तो विधाता टेढ़ा है। तिस पर कन्या का बाप भी दुश्मन हो गया। एक और दुश्मन है—ब्राह्मण नारद, जो हाथ धोकर पीछे पड़ गया है, और निपट बूढ़ दामाद ढूँढ़ लाया है।

उसकी धोती, पोथी, लोटा, पत्रा सब छीन लूंगी। यदि उसने रोब दिखलाया तो दाढ़ी पकड़ कर उसे घसीटूंगी।

वेदी तोड़ दी गई। पुरहर,[1] तोड़ दिया गया। चौमुख दीप फेंक दिया गया। मनाइन कन्या को लेकर मन्दिर में जा बैठी। गायिकाओं ने गाना बन्द कर दिया।

'विद्यापति' कहते हैं—हे मनाइन[2], सुनो। शंकर तीनों लोक के देवाधिदेव हैं। खुशी-खुशी गौरी का विवाह कर दो। गौरी के भाग्य में यही दूल्हा विधाता ने लिख दिया है।'

(५)

हे भोला बाबा केहन कयलौं दीन
खेती पथारी भोला से हो लेल छीन
भाई सहोदर से हो भे गेल भीन
घर में न खरची बाहर न मिले रीन
गाँव के मालिक न पड़ै दइय नीन
एके गो लोटा छलइ भाइ भेलइ तीन
पनिया पिवइत काल होइय छिनाछीन
एके गो बैल बच गेल महाजन लेलक रीन
कर कुटुम्ब सब भेलइ परमीन

ओ भोले शंकर, तुमने मेरे दिन कितने दुखद बनाये?

जो थोड़ी-बहुत खेती-बाड़ी थी, वह भी तुमने छीन ली। और तो और, सग भाइयों ने भी मुझसे बँटवारा कर लिया। घर में खर्च नहीं है। बाहर ऋण नहीं मिलता। गाँव का जमींदार रात में चैन की नींद नहीं सोने देता। एक लोटा है, और भाई तीन हैं। अतः पानी पीने के वक्त छीना-झपटी होती है। एक बैल बच गया था, जिसको महाजन ने ऋण में हड़प लिया। हाय! हितमित्र और सगे-सम्बन्धी सब पराये हो गये।

---

१ जल से भरा हुआ मिट्टी का कलश। २ विधि-व्यवहार और गीतों की तजरबाकार औरत।

(६)

योगिया के लालि-लालि अँखियान हे
जइसे चम्पा के फूल
ए जी वइसने जे हमरो चुन्दरियान हे
दुनु तालमतूल
जोगिया के गोर में खँड़ऊआ शोभै हे
हाथ शोभै करतार
ए जी मुखवा में मोहिनि बसुलियान हे
मोहे जग संसार
जोगिया के शोभैन मृगछालान हे
हमरो पट चीर
ए जी दुनु के सिअएवइन गुदरिआन हे
होयवइ संगे रे फकीर

योगी की लाल-लाल आँखें हैं, जैसे चम्पा के फूल। हे सखी, मेरी कुसुम्भी चुँदरी भी ठीक उसी तरह लाल है।

योगी के पैर में खड़ाऊँ, और हाथ में कठताल है। मुख में मोहिनी बाँसुरी है, जिसकी मीठी तान पर सारा संसार मुग्ध है।

हे सखी, योगी के शरीर में मृगछाला सुशोभित है, और मेरी कमर में रेशमी घेरदार घाघरा। मैं दोनों को जोड़ कर गुदड़ी सिलाऊँगी, और योगी के साथ ही जोगन हो जाऊँगी।

(७)

दूर दूर छीआ
एहन के संग कोना रहति धीआ
दूर दूर छीआ
एहन बौराहा संग कोना जयती धीआ
दूर दूर छीआ
पाँच मुख शोभैछैन

तीन अँखिया
दिगम्बर वेष देखि फाटे मोरा हिया
दूर दूर छीआ
काँख तर झोड़ी शोभैन
धथुरक बीआ
सह-सह करैछैन साँप सखिया
दूर दूर छीआ
भाँग केर मोटरी इफीम केर बीआ
ओढ़ना बाघम्बर छैन
फाटे मोरा हिया
धान लेलथिन दुब लेलथिन
आओर लेलथिन दिया
सासु जे परीछन चललिन
साँप कलकैन 'फू' आ
दूर दूर छीआ
जो इ कदापि विष लागत मोरा धीआ
कोहवर में मरि जैतन
अकारथ जतइन जीआ
दूर दूर छीआ
भनहिं 'विद्यापति' सुनु सखिया
गौरी के लिखलछइन बुढ़वा अइसन पिया
दूर दूर छीआ

छी! दूर! दूर!! (व्यंग्य और घृणासूचक अभिव्यक्ति)
ऐसे अवधूत—दिगम्बर के साथ मेरी बेटी कैसे रहेगी?
ऐसे बौराहा के साथ बेटी पार्वती कैसे जायगी?
दूर! दूर! छी!!

दूल्हे के पाँच मुख हैं, तीन नेत्र। उसका नंग-धड़ंग वेष देख कर कलेजा फट रहा है। उसकी काँख के नीचे झोली है। उसमें धतूर के बीज हैं। हे सखी, उसके समस्त शरीर में सर्प सहर-सहर कर रहा है।

छी! दूर! दूर!!

उसकी बगल में भंग की झोली है, और उसमें अफ़यून के बीज। ओढ़ने के लिए व्याघ्र-चर्म है जिसे देख-देख कर मेरा कलेजा फट रहा है।

छी! दूर! दूर!!

दूल्हे की सास धान के नवीन अंकुर, हरित दूर्वादल और दीपक जलाकर परिछन करने चली कि सहसा सर्प ने फन फैला कर क्रोध से 'फू' किया।

हे सखी, संयोगवश यदि सर्प ने मेरी बेटी को डँस लिया तो कोहबर में ही उसकी अकाल मृत्यु होगी, और उसके प्राण व्यर्थ जायेंगे।

छी! दूर! दूर!!

कवि 'विद्यापति कहते हैं—'हे सखी, गौरी के ललाट में विधाता ने वृद्ध पति लिख दिया। कोई दूसरा क्या करे?'

(८)

सब टा खाइय गेलैन भांग
फूजि गेलैन वसहा
चिवाइय गेलैन भांग
सबटा खाइय गेलैन भांग
कार्त्तिक गणपति दुनु छैन नदान
बसहा के संग में करैछ्थ कूद-फान
सबटा खाइय गेलैन भांग
घुरि-फिरि अओतन खोजतन भांग
किछियो न छैन अब कि करताह महान
मांगि-चांगि अयतन उठैतन तूफान
बैल सब खाइय गेलैन

मचौतन घमासान
सबटा खाइय गेलैन भांग
भनहिं 'विद्यापति' सुनु हे मनाइन
तइ लेल कि करवैन
आनि लैतन मांग
सबटा खाइय गेलैन भांग

बैल भंग खा गया। बैल खुल गया, और भंग की बनी हुई पत्ती चबा गया।

बैल सब भंग खा गया।

कार्त्तिक और गणेश—शिव के दोनों लड़के बड़े लापरवाह हैं। बैल के साथ कूद-फाँद करने में ही वक़्त गुज़ार देते हैं, और भंग की निगरानी नहीं करते।

बैल सब भंग खा गया।

थोड़ी भी भंग नहीं बची। अब दिगम्बर शिव क्या लेकर रहेंगे?

बाहर से जब वह मांग-चांग कर लौटेंगे, तो आज ज़मीन-आसमान एक कर देंगे।

हाय! बैल सब भंग खा गया। नशाख़ोर शिव आज सिर पर आसमान उठा लेंगे।

'विद्यापति' कहते हैं—'हे मनाइन, चिन्ता मत करो। वह पुनः मांग-चांग कर भंग ले आयेंगे।'

(६)

वर देखि सब के लागल टकाटक
विधि ककरो न सक
पाँच मुख, तीन नेत्र
आग भकाभक
चन्द्रमा ललाट शोभैन गंगा झकाझक
केओ जान मोट डाँट केओ लकालक

भूत पिचाश देखि सखी लटापट
विधि ककरो न सक
भनहिं 'विद्यापति' सुनु हे मनाइन
गौरी बड़ तप कैलन
पयलन एहन वर
विधि ककरो न सक

दूल्हे की सूरत देख कर सब की टकटकी बँध गई। हे सखी, ब्रह्मा की लकीर को भला कौन टाले?

शिव के पाँच मुख हैं, तीन नेत्र। अंग-प्रत्यंग में भभूत भक-भक खिल रहा है। ललाट में द्वितीया का चाँद, और गंगा विराजमान हैं।

हे सखी, ब्रह्मा की लकीर को भला कौन टाले?

बरातियों को तो देखो। कोई उसमें हृष्ट-पुष्ट है। कोई दुबला-पतला। भूत-पिशाचों की भयावनी जमात को देखकर उमा की सभी सखियाँ एक दूसरे को पीछे की ओर ढकेलती हुई भय के मारे भागने लगीं।

कवि 'विद्यापति' कहते हैं—'हे मनाइन, सुनो। गौरी ने बड़ी कठिन तपस्या की है। फलस्वरूप उसे ऐसा सुभग दूल्हा मिला है।'

(१०)

माइ हे अजगुत भेल
गौरी के उचित वर विधि नहिं देल
तेल फूलेल शिव के
कोवर रखि देल
लगावे के बेर शिव
भसम लेपि लेल—माइ हे अजगुत भेल
पेड़ा जलेबी शिव के
कोवर रखि देल,
भोजन के बेर शिव
भांग पिवि लेल—माइ हे अजगुत भेल

तोसक गलइचा शिव के
कोवर रखि देल
सुते के बेर शिव
मृगछाला राखि लेल—माइ हे अजगुत भेल
हाथी घोड़ा शिव के
बान्हल रहि गेल
चढ़े के बेर शिव
बसहा चढ़ि लेल—माइ हे अजगुत भेल

हे सखी, आश्चर्य की बात है कि गौरी को, उसके उपयुक्त दूल्हा विधाता ने नहीं दिया।

शिव के कोहबर-घर में तेल-फुलेल रख दिये गये। लेकिन उनने तेल-फुलेल न लगा कर अंग-प्रत्यंग में भस्म लेप लिया।

जलेबी और पेड़े शिव के कोहबर-घर में रख दिये गये। किन्तु, खाने के वक्त उनने खूब छक कर भंग छान ली, और नशे में गर्क़ हो गये।

शिव के कोहबर-घर में तोशक और गलीचे बिछा दिये गये। किन्तु, सोने के वक्त उन्होंने मृगछाला बिछा ली।

हे सखी, उनकी सवारी के लिए हाथी और घोड़े बाँधे ही रह गये। और विदा होने के वक्त उनने बैल पर सवार होकर यात्रा की।

(११)

अति बुढ़ वर भेल
गौरी के मनक बात मने रहि गेल
अति बुढ़ वर भेल
बुढ़वा भुतनी संग करए कलोल
गौरी के भोग ओ बिलास रहि गेल
अति बुढ़ वर भेल
कतहुँ जगह नहि साँप क लेल
देखितो में छथि अकलेल बकलेल

अति बुढ़ वर भेल
एहन धिआ के इहो वर किय भेल
हृदय विचारि कोना विधिना देल
अति बुढ़ वर भेल

हे सखी, उमा का ब्याह अत्यन्त वृद्ध दूल्हे से हुआ। उमा के मन की बात मन ही में रह गई।

हे सखी, एक ओर उसका बूढ़ा दूल्हा भूतनियों के साथ प्रेम-क्रीड़ा करता है। दूसरी ओर हमारी प्यारी सखी उमा भोग-विलास से विरक्त होकर और भस्मशायिनी बन कर दिन-रात तप करती है।

हे सखी, उसके दूल्हे का स्वभाव इतना विचित्र है कि जब सर्पों के बैठने के लिए अन्यत्र स्थान नहीं मिलता तो वे उसीके अंग-अंग में लिपट कर विश्राम लेते हैं।

देखने में भी वह उजबक, निरा गोबरगणेश है।

समझ में नहीं आता कि आखिर विधाता ने क्या सोच कर ऐसी सुन्दर कन्या की तक़दीर में ऐसा उजबक दूल्हा लिख दिया।

(१२)

गौरी दुख भोगती—
भंगिया के संग गौरी दुख भोगती
नित दिन भंगिया ला भांग पिसती
गौरी दुख भोगती
खन नहि चैन कखन सुतती
मांग-चांग लयथिन धान कूटती
मांड़ संग गील भात कोना खैती
गौरी दुख भोगती
फूजत बसहा डाँट धरती
एकसर घर में कोना रहती

गौरी दुख भोगती
सासु-ससुर सुख नै जनती
ओरहन सुनि-सुनि नित कनती
गौरी दुख भोगती

बेटी गौरी दुख भोगेगी। अपने भंगेरी पति के साथ गौरी दुख भोगेगी।

नित्य नियमपूर्वक अपने भंगेरी पति के लिए भंग पीसेगी। गौरी दुख भोगेगी।

उसे पल-भर के लिए भी विश्राम नहीं मिलेगा। जाने वह कब सोयेगी?

इधर-उधर से भिक्षाटन कर भीख लायेगी, और धान कूटेगी।

न जाने वह किस प्रकार माँड़ के साथ गीला भात खायेगी?

जब उसके पति का बूढ़ा बैल खुल जायगा तब वह उसे डाँट-डपट कर खूँटे में बाँधेगी, और घर में अकेली ही सोयेगी।

सास-ससुर के राज्य के सुख भी न जान सकेगी। उल्टे उलाहना सुन कर नित्य बिसूर-बिसूर कर रोयेगी।

(१३)

वरदो न बाँधे गौरा तोर भंगिया
गौरा तोर भंगिया
अँगने-अँगने खाए पथार
रोमे गेलहुँ झुकि-झुकि मार
एक मन होए शिव के दियैन उपराग
देहरि वैसल छथिन वासुकि नाग
कारतिक गनपति दुइ चरवाह
इ हो दुनु-बालक वरद हराह
भनहिं 'विद्यापति' सुनह हे समाज
इ हो दुनु बेकति के एको के ने लाज

हे गौरी, तुम्हारा भंगेरी पति बैल भी नहीं बाँधता।

तुम्हारे भंगेरी पति का बैल हमारे आँगन में घूम-घूम कर पथार खा जाता है।

जब उसे डपट कर भगाना चाहती हूँ, तब वह सींगें झाड़ कर मार बैठता है।

सोचती हूँ कि शिव को उलाहना दूँ, लेकिन उनकी देहली पर भयंकर नाग फन फैला कर बैठा है।

कात्तिक और गणेश—ये दोनों बैल के चरवाहे हैं, किन्तु अभी दोनों बच्चे हैं। और बैल मरखहा है।

कवि 'विद्यापति' कहते हैं—'हे समाज के सभ्य पुरुष, सुनो। दम्पत्ति शिव और पार्वती दोनों में एक के भी शर्म नहीं है। दोनों-के-दोनों निर्लज्ज हैं।'

(१४)

कहलो ने जाइछइ भोला विपति के हाल
भोला विपति के हाल
माय-बाप धय गेल फिकिर जंजाल
नारी बिन घर भेलइ नरक समान
भोला विपति के हाल
एक टा पुतर छिका तिनि जेहन काल
राजा नगर से त देलन्हि निकाल
रोजी पुँजी छीन लेलन्हिं घर धन माल
वन-बन डोलु शिव नामी कंगाल
सुनि तेरो नाम जस दिन प्रतिपाल
तोरे चरन पर टेकब कपाल
भनहिं 'विद्यापति' सुनह हे कंगाल
एक बार भोला हेरथुन्, हो जएब नेहाल

हे शिव, अपने दुख की बात कही भी न जाती। माँ-बाप मुझ पर चिन्ताओं का बोझ लाद कर स्वयं विदा हो गये।

स्त्री के बिना घर नर्क के समान प्रतीत होता है। एक पुत्र है, जो साक्षात यम का स्वरूप है।

राजा ने नगर से निर्वासित कर दिया। उसने मेरी रोजी-पूँजी हड़प ली, और धन-दौलत लूट ली।

हे शिव, मैं वन-वन डोल रहा हूँ। मैं मशहूर कंगाल हूँ, और तुम हो दीन-बन्धु। अब मैं नित्य तुम्हारे ही चरणों की वन्दना करूँगा।

कवि 'विद्यापति' कहते हैं—'हे कंगाल, सुनो। यदि एक बार भी शिव तुम्हारी ओर देख देंगे तो तुम्हारा दुख-दारिद्रय दूर हो जायगा।'

(१५)

बइजनाथ दरबार में हम त खुशी सँ रहवइ ए
कोई माँगे अन-धन सोना
कोई माँगे रूप
कोई माँगे निरमल काया
कोई माँगे पूत
ब्राह्मण माँगे अन-धन सोना
वेश्या माँगे रूप
कोढ़िया मांगे निरमल काया
बाँझिन माँगे पूत—हम त खुशी सँ रहवइ ए
कथिए लागि अन-धन सोना
कथिए लागि रूप
कथिए लागि निरमल काया
कथिए लागि पूत—हम त खुशी सँ रहवइ ए
लुटवै लागि अन-धन सोना
देखवै लागि रूप
तीर्थ चलएला निरमल काया
जल-भरि लावए पूत—हम त खुशी सँ रहवइ ए

वैद्यनाथ—शंकर के दरबार में मैं प्रसन्नता से रहूँगा।

कोई अन्न-धन और सोना माँगता है। कोई रूप माँगता है। कोई स्वस्थ शरीर माँगता है, और कोई पुत्र की याचना करता है।

शंकर के दरबार में मैं प्रसन्नता से रहूँगा।

ब्राह्मण अन्न-धन और लक्ष्मी माँगता है। वेश्या रूप माँगती है। कोढ़ी स्वास्थ्य माँगता है, और बाँझिन पुत्र की याचना करती है।

मैं शंकर के दरबार में प्रसन्नता से रहूँगा।

किसलिए अन्न-धन और सोना है?

किसलिए रूप?

किसलिए स्वस्थ शरीर है?

और, किसलिए पुत्र?

अन्न-धन और सोना दान करने के लिए है।

रूप देखने के लिए है।

स्वस्थ शरीर तीर्थ-यात्रा करने के लिए है।

और प्यासे को जल पिलाने के लिए पुत्र है।

(१६)

शुभ दिन लगन विआहन गौरा बनि ठनि दुलहा अएला हे
कंठ गरल उर नर सिरमाला अंगनाग लपटैला हे
भाल तिलक शशिपाल लगैला जटा से गंग बहैला हे
बूढ़ वरद असवार सदाशिव डमरु डिमिक बजैला हे
भूत प्रेत डाकिन साकिन सँग जोगिन नाच नचैला हे
अंधरा बहिरा लंगरा लुल्हा अगनित भेस धरैला हे
स्वान सूअर सिरगाल मुखरतनु संग बरिअतिया लैला हे
नगर निकर चढ़ि-चढ़ि है गै रथ अगुआनन अगुऐला हे
नजर परत बरिआत भयंकर सबही बिररि परैला हे
साहस करि सब सखियन सँग मिलि मैना परिछन कैला हे
नाग छोरल फुफकार डेरैला खसत परत घर अएला हे

संग बरिअतिया हुलसत छतिया शिव जनवासा गैला हे
व्याह उछाह उमा शिवशंकर विशेश्वर पद गैला हे

शंकर पूर्व निश्चित मंगलमय लग्न पर गौरी को व्याहने के लिए दूल्हा बन कर आये।

कंठ में गरल, हृदय-प्रदेश पर मनुष्य के मुण्ड की माला, अंग-प्रत्यंग में भयंकर सर्प, ललाट पर द्वितीया के चाँद का तिलक और बड़ी-बड़ी जटाओं में गंगा की धारा—इस वेश-भूषा में बन-ठन कर शंकर दूल्हे के रूप में आये।

वह एक बुड्ढे बैल पर सवार हैं। डिम-डिम डमरू बजा रहे हैं। उनके साथ में भूत, प्रेत, डाकिन और जोगिन का असंख्य दल नृत्य करता हुआ आ रहा है। उनमें कितने अन्धे हैं। कितने बहरे। कितने लंगड़े और लूले हैं। बहुरूपिये-सा विविध प्रकार के वेश धारण कर वे आ रहे हैं। उनमें कितने के मुख कुत्ते के हैं। कितने के मुख सूअर के और कितनों के स्कन्ध पर गीदड़ और गदहे का मुख जड़ा है।

नगर के निकट आने पर वे सब हाथी, घोड़े और रथ पर सवार हो-हो कर दूल्हे के आगे-आगे चलने लगे।

जब कन्या-पक्ष के लोगों की दृष्टि इस विचित्र दृश्य की ओर आकृष्ट हुई तो वे डर कर सिर पर पाँव रख कर भागे।

अन्त में कन्या की माँ मैना ने हिम्मत करके सखियों को साथ लेकर दूल्हे का परिछन किया। इतने में नाग ने फन फैला कर भयंकर फूत्कार किया और वे भयभीत हो कर गिरती-पड़ती भाग खड़ी हुई।

उधर दूल्हा बरातियों को साथ लेकर प्रसन्न-चित्त से जनवासे लौट गया।

'विशेश्वर' ने उमा और शंकर के विवाहोत्सव की उमंग में यह पद गाया है।

(१७)

शिव एम्हर[1] सुनि जाउ
एम्हर सुनि जाउ भोला
एम्हर सुनि जाउ
पानी लिउ पैर धोउ
बाघम्बर बिछाउ
डमरू बजाउ नाच देखाउ
अहाँ तब कहुँ जाउ
कुंडी लिउ सोंटा लिउ
भांग घोंटवाउ[2]
एक लोटा पिविलिउ[3]
तब कहुँ जाउ
भोला एम्हर सुनि जाउ
दाल लिउ चाउर लिउ
खिचरी बनाउ
हमरा परमेश्वर छथिन[4]
अहाँ भरपेट खाउ
शिव एम्हर सुनि जाउ
एम्हर सुनि जाउ शिवजी
एम्हर सुनि जाउ

(१८)

बम बैद्यनाथ गौरी वर
भोला चाकर राखह हे

---

१ यहाँ। २ जल के साथ बार-बार रगड़ कर और बारीक पीस कर परस्पर मिलाना। ३ पी लो। ४ हैं।

चाकरी में बाग लगाएव
लोढ़ी-लोढ़ी गुलफुलवा लाएव
ओहि[1] फ़ुलवा के हार बनाएव
पारवती पहनाएव
पारवती पति आज्ञा पाएव
गंगाजल भरि लाएव
बाबा बैद्यनाथ मस्तक पर
सिसियन - ढारि - चढ़ाएव[2]
बाबा चाकर राखह हे
चाकरी में दरसन पाएव
परसन[3] पाएव खरची
राम नाम जागीरी पाएव
तीन बात के अरजी

(१९)

अद्‌भुत रूप योगी एक देखल
डमरू देल बजाय गे माई
गाल छइन बोकटल
मुँह छइन चोकटल
मुँह मधे एको गो ने दाँत गे माई
सउँसे देह बुढ़बा के थर-थर कँपइन
पुरुष बड़ भोगिआर गे माई
आगे माई तोड़ि देवइनि रूद्रमाला
फोड़ि देवइनि डमरू
टुक-टुक करवइन बघछाल गे माई
अद्‌भुत रूप योगी एक देखल
डमरू देल बजाय गे माई

---

१ उस । २ शीशियों से जल उँडेल कर पूजा करूँगा । ३ स्पर्श करने से

हे सखी, आज मैंने एक विचित्र योगी देखा है जो डमरू बजा रहा था।

उसके गाल भीतर की ओर धँसे हुए हैं। मुँह सूखा हुआ है। उसके मुंह में एक भी दांत नहीं हैं। उस बुड्ढे के अंग-प्रत्यंग काँप रहे हैं। (फिर भी) वह देखने में आकर्षक लगता है।

हे सखी, उसकी रुद्रमाल तोड़ डालूँगी। उसका डमरू फोड़ डालूंगी। और उसके व्याघ्र-चर्म फाड़ कर चिथड़े-चिथड़े कर दूँगी।

हे सखी, आज मैंने एक विचित्र योगी देखा है जो डमरू बजा रहा था।

(२०)

केहि खोजल वर केहि ढूँढल वर
केहि बूढ़ लयला बोलाय गे माई
केकरा कहल बूढ़ चउका चढ़ि बइसल
ककरा से होइछइन विआह गे माई
हजमे खोजल वर बाभन ढूँढ़ल वर
बबे बूढ़ लयलन बोलाय गे माई
अगुए कहल बूढ़ चउका चढ़ि वइसल
गौरी से होयत विआह गे माई
ककरा के मारू केकरा गरिआऊ
ककरा के फँसिया चढ़ाउ गे माई
हजमे के मारू बभने गरिआऊ
बबे के फँसिया चढ़ाऊ गे माई
कओन-कओन धन छओ आहे बूढ़ वर
कथि लागि करइछ विआह गे माई
धन में धन हए गोला वरदवा
खेत मघे उपजय भांग गे माई
मरथु हजमा हे मरथु ब्राह्मण
मरथु निर्दय बावा गे माई

ढगरे-ढगरे पिलुआ अगुआ के परउन
जिनि वर खोजलन भिखार गे माई

हे सखी, किसने बुड्ढे दूल्हे की तलाश की? किसने बुड्ढे दूल्हे को ढूंढ़ कर पसन्द किया? किसकी अनुमति से यह बुड्ढा दूल्हा विवाह-मंडप की वेदी पर बैठ गया? और किस रूपवती कन्या से इसका ब्याह होने वाला है।

हे सखी, हज्जाम ने बुड्ढे दूल्हे की तलाश की। ब्राह्मण ने बुड्ढे दूल्हे को ढूँढ़ कर पसन्द किया। अगुवे की अनुमति से यह बुड्ढा दूल्हा विवाह की वेदी पर बैठा, और रूपवती गौरी से इसका ब्याह होनेवाला है।

हे सखी, किसे मारूँ? किसे गाली दूं, और किसे फाँसी की तख्ती पर चढ़ाऊँ?

हे सखी, हज्जाम को मारो। ब्राह्मण को गाली दो, और अपने बाबा को फाँसी की तख्ती पर चढ़ाओ।

रे बुड्ढा दूल्हा, तुम्हारे पास कौन-कौन-सी सम्पत्ति है, और तुम क्यूँ ब्याह कर रहे हो?

मेरे पास धन-में-धन एक गोला बैल है, और जो कुछ थोड़ी-बहुत खेती-बाड़ी है उसमें भंग की फसल (अच्छी) होती है।

यह सुन कर कन्या ने कहा—'वह हज्जाम मर जाय, वह ब्राह्मण मर जाय, मेरा वह कठोर-हृदय बाबा भी मौत की दाढ़ में चला जाय, और अगुवे के अंग-अंग में कीड़े पड़ जायें जिनने ऐसा खूसट और भिखमंगा दूल्हा मेरे लिए तलाश किया।'

(२१)

आइ बुढ़ा रुसता गे माई
हमरो बूढ़ दिगम्बर हर
आइ रुसता गे माई
काटल भांग रहए आँगन में

बसहा गेल चिवाई
जखनहे सुनताह बुढ़ा दिगम्बर
करत में महा लराई—आइ बुढ़ा रुसता गे माई
पीसल भांग रहे कुंडी में
गणपति देलन हेराई
जखनहे अओताह बुढ़ा दिगम्बर
करब में कओन उपाई—आइ हर रुसता गे माई
आँखि तरेरि बुढ़ा देल दमसाई
गणपति गेल पराई
चहुँ दिशि खोजथिन बुढ़ा दिगम्बर
कोई न देत बताई—आइ बुढ़ा रुसता गे माई

हे सखी, आज बुड्ढे शंकर रूठ जायेंगे। मेरे बुड्ढे दिगम्बर पति आज रूठ जायेंगे।

कटी हुई भंग आँगन में रक्खी थी, उसे बैल चवा गया।

बुड्ढे दिगम्बर को इसकी खबर मिलेगी, तो वह आगबगूला हो जायेंगे।

पीसी हुई भंग कुंडी में रक्खी थी। गणेश ने कुल-की-कुल जमीन पर गिरा दी। बुड्ढे दिगम्बर आयेंगे तब मैं क्या जवाब दूंगी?

जब बुड्ढे दिगम्बर को इसकी खबर मिली तब उन्होंने क्रोधित होकर गणेश को फटकारा। गणेश नौ-दो ग्यारह हो गये। वह उसे चारों ओर ढूंढ़ने लगे। लेकिन कोई उन्हें उसकी टोह नहीं बतलाता।

हे सखी, आज बुड्ढे शंकर रूठ जायेंगे।

(२२)

अनका जे देथ शिव अपने भिखारी
अनका के अन-धन सम्पत्ति नारी
अनका के कोठा कोठरी अटारी
अपना टुटल घर चारु दिशा बारी

अनका के खोआ पुरी अओर तरकारी
अपना के आक-भांग धथुर अहारी
अनका के हाथी-घोड़ा पालकी सवारी
अपना के बूढ़ बैल बघम्बर धारी

हे सखी, दूसरे को शिव मालामाल कर देते हैं, और स्वयं भिक्षुक हैं।

दूसरे को अन्न-धन, स्त्री, कोठा, कोठरी और अटारी देते हैं, और स्वयं बाड़ी और टूटी हुई झोंपड़ी में निवास करते हैं।

दूसरे को अनेक प्रकार के मेवा-मिष्ठान देते हैं और स्वयं आक, भंग और धतूर की पत्ती चबाते हैं।

दूसरे को हाथी-घोड़ा और पालकी चढ़ने के लिए देते हैं, और स्वयं व्याघ्रचर्म पहन कर बुड्ढे बैल पर सवारी करते हैं।

समदाउनि

मिथिला का लोक-साहित्य करुण रस से ओत-प्रोत है। करुण रस के इतने गीत शायद ही संसार के किसी प्राचीन अथवा नवीन लोक-साहित्य में मिल सकें। कविता के आदि अस्तित्व का मूल कारण करुणाजनक परिस्थिति ही है—

मा निषाद ! प्रतिष्ठां त्वमगमः शाश्वतीः समाः
यत् क्रौञ्चमिथुनादेकमवधीः काममोहितम्

वाल्मीकि मुनि का यह करुण श्लोक करुणाजनक घटना का ही परिणाम है।

भवभूति ने भी करुणरस को मुख्य माना है—

एकोरसः करुण एव निमित्तभेदात्
भिन्नः पृथक्पृथगिवाश्रयते विवर्त्तान्

एक करुण रस ही निमित्त-भेद से शृंगारादि रसों के रूप में पृथक् पृथक् प्रतीत होता है। शृंगारादि रस करुणरस के ही विवर्त्त हैं।

विवाह-संस्कार की समाप्ति के बाद जब दुलहिन डोली में बैठ कर ससुराल जाने की तैयारी करती है, उस समय मिथिला में एक विशिष्ट शैली का गीत गाया जाता है जो 'समदाउनि' के नाम से प्रसिद्ध है। विदा के समय दुलहिन की माँ, बहन, भावज और उसकी हमजोलियाँ सब उसके गले लिपट कर रोती हैं। उस समय उनके संवेदनाशील गीतों को सुन कर पाषाण-से कठोर हृदयवालों की आँखें में भी सावन-भादों की झड़ी लगा देती हैं, और उनकी वियोग-वेदना से हृदय-पटल फटने लगता है।

'समदाउनि' का सब से बड़ा गुण है—स्वाभाविकता। इसका शृंगार प्रेम और करुणा के मोतियों से हुआ है। वर्णन झरने के माफ़िक साफ और

भाषा सीधी तथा साफ-सुथरी है। वास्तव में कविता वही है, जो पढ़ने और सुननेवालों के दिल पर असर करे।

'समदाउनि' बेटी की विदाई के अवसर के गीत हैं। समय के परिवर्तन के साथ-साथ 'समदाउनि' गीत-शैली की दुनियां भी व्यापक-विस्तीर्ण होती जा रही है। पहले जहाँ 'समदाउनि' गीत-शैली में बेटी के विदा-काल के ही करुण, मर्मभेदी चित्र अंकित किये जाते थे, आज वहाँ इन गीत-शैलियों में मृत्यु काल के कारुणिक दृश्य को भी—जब आत्मा भौतिक और नश्वर शरीर का परित्याग कर अज्ञात लोक की ओर प्रयाण करती है—विषय-वस्तु का अंग समझ लिया गया ह। अधिकांश लोक-गायकों अथवा गायिकाओं ने छन्द की पगडंडी छोड़ कर मानव-जीवन के किसी भी करुण प्रसंग को इस गीत-शैली का निर्दिष्ट वर्ण्य-विषय मान कर अपनी वाणी को रूप-रंग प्रदान किया है। अतः 'समदाउनि' गीत-शैली का प्रधान सुर विवाह-संस्कार की समाप्ति के बाद कन्या के विदाकालीन मार्मिक दृश्य की अभिव्यक्ति ही नहीं, प्रकृति की करुणाजनक घटना तथा संवेदनाशील मानव-हृदय का अंकन भी है।

यहाँ कुछ करुण रस के गीत दिये जाते हैं —

(१)

जखन चलल हरि मधुपुर सजनि गे
कै देल व्रज के उदास
केहि विधि हरि बिनु रहु हम सजनि गे
केकर करुअ हम आस
छन-छन दिन सम हरि-बिनु सजनि गे
पहर लागत एक मास
अब केहि मुरली अधर बिच सजनि गे
बजबइत उर लेत बास
केकरा सँ कहबो कठिन दुख सजनि गे
कै देल मोहन निरास

जिअबो में कोना हम पिय बिनु सजनि गे
करबो में तन के विनास
ब्रजनारी संग लै वृन्दावन
अब के रचत नित रास
राधिका कहत सब सखि मिलि सुनु हे
मिलत कन्हैया तोहिं पास

हे सखी, जब श्रीकृष्ण मधुपुर चले गये, तब सारा व्रज शोक-सागर में डूबने लगा।

हे सखी, श्रीकृष्ण के बिना कैसे रहूँ? मैं किसकी आशा करूँ?

हे सखी, श्रीकृष्ण के बिना एक-एक क्षण दिन की तरह, और एक-एक पहर एक-एक महीना की तरह प्रतीत होता है।

हे सखी, अब कौन होंठों के बीच मुरली रख कर मधुर शब्द सुनायेगा, और इस हृदय में कौन विहार करेगा?

हे सखी, मैं यह कठिन दुःख किससे कहूँ? श्रीकृष्ण ने मेरी आशा पर पानी फेर दिया।

हे सखी, प्रियतम श्रीकृष्ण के बिना मैं कैसे जिऊँगी। अब तो इस शरीर का विनाश कर देना ही उचित है।

अब व्रजांगनाओं को साथ लेकर वृन्दावन में कौन रास-क्रीड़ा करेगा?

राधिका को विरह-व्याकुल देख कर उसकी सखियाँ सान्त्वना देने लगीं—

'हे राधे, श्रीकृष्ण तुम्हारे पास हैं। तुम्हें अवश्य मिलेंगे।'

इस 'समदाउनि' में कवि ने विरह की यंत्रणा से कातर राधा का वियोग-चित्रण जिस स्वाभाविक ढंग से किया है, वह पढ़ने के क़ाबिल है। उर्दू-साहित्य के सिद्ध-हस्त शायर मीर असर ने भी वियोग का करुण चित्र कुछ इसी प्रकार खींचा है—

दिन कहाँ चैन, रात ख्वाब कहाँ
बिन तेरे आये दिल को ताब कहाँ

अब न दिन ही कटे, न रात कटे
किस तरह अर्सए, हयात कटे

कविवर मीर साहब की उपर्युक्त पंक्तियाँ और एक ग्रामीण कवि की निम्न पंक्तियों का पाठक तुलनात्मक दृष्टि से मुलाहिज़ा करें—

छन-छन दिन-सम हरि-बिनु सजनि गे
पहर लागत एक मास

(२)

जइती बड़ि हे दूर
लगती बड़ि हे बेर
अँगने-अँगने बुलु हँसइत जमाय
धिआ हे समोधु सासु मन चित्त लाय
गैया के बँधितो में खुटा हे लगाय
बछिया के लेल जाइय भागल जमाय
जइती बड़ि हे दूर
लगती बड़ि हे बेर
गैया जँ हुँकरय दुहान केर बेर
बेटी क माए हुँकरय रसोइया केर बेर
बाट रे बटोहिया कि तुहि मोर भाय
एहि बाटे देखलो में धिआ धी जमाय
जइती बड़ि हे दूर
लगती बड़ि हे बेर
देखलौं में देखलौं अशीकवा तर ठाढ़
धीआ हकन कानु हँसइय जमाय
धिअवा के कनइत में गंगा बहि गेल
दमदा के हँसइत में चादरि उड़ि गेल

बहुत दूर जाऊँगी। बड़ी देर लगेगी। मेरे दामाद आँगन में हँसते हुए चहलकदमी कर रहे हैं।

दामाद ने कहा—'हे सास, अपनी बेटी को अच्छी तरह समझा-बुझा दो।'

सास ने कहा—'गाय को खूँटे में बाँधा जाता है। लेकिन बछिया को कौन बाँधता है? हाय! मेरा दामाद मेरी बेटी को लिए भागा जाता है।'

बहुत दूर जाऊँगी। बड़ी देर लगेगी।

दूध दुहने के समय गाय हँकारती है। बेटी की माँ बेटी की जुदाई में भोजन करने के समय बिसूर रही है।

'हे पथिक, तुम मेरे भाई हो। क्या तुमने रास्ते में मेरी बेटी और दामाद को देखा है?

पथिक ने उत्तर दिया—'हे बहन, रास्ते में मैंने अशोक के वृक्ष के नीचे तुम्हारी बेटी और दामाद को देखा है। तुम्हारी बेटी की आँखों से सावन-भादों की झड़ी लग रही है, और तुम्हारा दामाद क़हक़हा लगा रहा है। तुम्हारी बेटी इस कदर बिसूर रही है कि उसके रोने से गंगा नदी उमड़ बही है, और तुम्हारे आनन्द-विह्वल दामाद के हँसने से मेरी चादर उड़ गई है।'

यह गीत 'समदाउनि' का सुन्दर उदाहरण है। गीत में कवि ने बेटी की जुदाई में बिसूरती हुई माँ, और माँ की याद में तड़पती हुई बेटी—दोनों के हृदय निकाल कर रख दिये हैं। निम्न-लिखित पंक्तियों के शब्द-शब्द से करुणा फूट बही है—

गैया के बाँधितो में खुटा में लगाय
बछिया के लेल जाइय भागल जमाय
धिअवा के कनइते में गंगा बहिगेल
दमदा के हँसइते में चादरि उड़ि गेल

'बेटी के रोने से गंगा नदी उमड़ बही, और दामाद के क़हक़हा लगाने से राह चलते हुए पथिक की चादर उड़ गई', में कवि ने कैसी युक्तिपूर्ण एवं कवित्वमयी कल्पना की है। भोली-भाली ग्राम-देवियों के सरल कंठ से इन पंक्तियों को सुन कर मैं कई बार अश्रु-भरी आँखों में डूब चुका हूँ।

(३)

नयन नीर अविरल किय ढारल
कह-कह सुन्दरि नारि
कंचन-तन झामरि-सन देखिय
के धनि पढ़लक गारि
केहन चकमक चानक शोभा
सुरभित अलस समीर
चारि दिशा अछि मदनक बेढ़ल
तिख-तिख पुहुपक तीर
की दुख पड़लह कह-कह नागरि
आब तेजह अनुताप
कनइत देखि सेज पर सूतलि
मोर मन थर-थर काँप
आजु सुनिय पति मातु-पिता-मुख
हेरल सपनहि माँझ
छोटि मोर बहिन भाय मन पारल
कछमछ काटल साँझ
माइक नेह जखन मन पारल
जे देलक प्रतिपालि
तिनका कनइत तेजि कतै छी
केहन जगतक चालि
पिता-भाय जत सखिगन सब छल
सब सौं कएलहुँ कात
से सब चरचा करइत होयत
हिय भेल पिपरक पात
भरि दिन छोटि बहिन कोरहिं कै
केहन बिहँसि खेलाय

अबइत काल निठुर मोर भाउजि
कर सों लेलन्हि छोड़ाय
अवइत काल बबा की कहलन्हि
लेलन्ह पैर छोड़ाय
थर-थर हमर हृदय छल कँपइत
रथ पर लेल चढ़ाय
तखनुक ध्यान अपन घर आँगन
परिजन सकल समाज
आजुक सपन सकल मन पारल
तें उदास चित्त आज
शैशव अओर किसोर वयस जहँ
संगे-संगे जीवन विताय
तहि ठाँ सौं कथिलै सुनु हे पति
आनल सबके कनाय
चुप रहु चुप रहु कामिनि सुनु-सुनु
काल्हिहिं आवत कहारि
रथ चढ़ि जाएव नइहर सुन्दरि
कथिलै रुदन पसारि
मातु-पिता ओ भाय-बहिन सब
देखब सुन्दर नारि
'कुमर' भनहिं पुन घर घुरि आयब
रहि नइहर दिन-चारि

'हे सुन्दरी, कहो तुम्हारी आँखों से इस तरह लगातार आँसुओं की झड़ी क्यों लग रही है ? तुम्हारा यह कुन्दन-सा दमकता हुआ शरीर मैला क्यों हो गया ? हे प्रियतमे, क्या तुम्हें किसी ने गाली दी ?

देखो, आसमान में चमकते हुए चाँद की मन्द मुसकान छा गई। सुगन्ध से तर ठंडी हवा मन्द-मन्द बहने लगी, और दिशा-विदिशाएँ मदन के फूल के

तीखे बाणों से बिंध गईं। हे सुन्दरी, इस समय तुम्हारे हृदय में कौन ऐसी पीड़ा है, जो तुम इस प्रकार सेज पर बिसूर रही हो? सेज पर तुम्हें इस तरह बिसूरते देख कर मेरा मन थर-थर काँप रहा है।'

नायिका ने कहा—'हे सजन, आज मैंने स्वप्न में माता-पिता का दर्शन किया। छोटी बहन और प्रिय भाई की याद भी ताज़ी हो उठी, जिससे रात बड़ी बेचैनी में कटी। नेहमयी माँ के निःस्वार्थ प्रेम की सुध हो आई, जिसने मुझे पाल-पोस कर बड़ा किया। हाय! ऐसी नेहमयी माँ को विलाप करती हुई छोड़ कर मैं कहाँ आ गई? हाय! इस संसार की लीला कैसी विचित्र है?

हे प्रियतम, माँ-बाप, भाई-बहन और सभी सखियों से तुमने मुझे जुदा कर दिया। वे सब मेरा स्मरण कर रहे होंगे। मेरा हृदय पीपल के पत्ते की तरह काँप रहा है।

मैं नित्य अपनी छोटी बहन को गोद में लेकर पुचकारती थी। लेकिन वहाँ से विदा लेने के वक़्त निर्मम भावज ने उसे मेरे हाथ से छीन लिया। विदा लेने के समय न मालूम मेरे पिता ने क्या कहा? उन्होंने अपना पैर छुड़ा लिया। हृदय थर-थर काँप रहा था। और हे प्रियतम, तुमने मुझे झपट कर डोली में बिठा लिया। आज के स्वप्न ने विदा-समय की सभी स्मृतियाँ मेरे हृदय-पटल पर एक-एक कर अंकित कर दीं। इसीलिए आज मन उदास है।

हे प्रियतम, जिस मैके में मैंने अपने प्रिय कुटुम्बों के साथ शैशव और किशोरावस्था बिताई, उस मैके से तुमने मुझे क्यूँ जुदा किया?

उसके प्रियतम ने कहा—'हे प्रिये, चुप रहो। कल मैं कहार बुलाऊँगा। तुम डोली में सवार हो कर मैके जाना। तुम क्यों बिसूरती हो? अपने माँ-बाप, भाई-बहन और सभी हित-कुटुम्बों से तुम्हारी फिर भेंट होगी। 'कुमर' कवि कहते हैं कि तुम वहाँ दो-चार दिन सुखपूर्वक रह कर फिर लौट आना।'

इस मार्मिक और करुणापूर्ण गीत में कवि ने मैके से बिछुड़ी हुई एक नवोढ़ा दुलहिन की व्यथा का चित्र खींचा है। इसकी पंक्ति-पंक्ति में शिशिर ऋतु के प्रभात में जलाशयों से उठनेवाले कुहरे-सी धूमिल आह है।

(४)

केम्हर सँ डाँरी आयल
कहाँ रे के ले जाय
उत्तर सँ डाँरि आयल
दक्खिन के ले जाय
जब डाँरि चलल उत्तर राज देश
बाबा मन पड़ि गेल हे माइ
बाबा मोरा रखितथि पगरिक फेंच जकि

अब डाँरी जायत ससुर देश राज
दूध क माछि होयवौं हे
जब डाँरि चलल पूव राज
बाबू मन पड़िय गेल
बाबू मोरा रखितथि धोतिया क फेंच जकि

अब डाँरी जायत ससुर देश राज
घर क बढ़निया होएवौं हे
जब डाँरी चलल दखिन राज
अमा मन पड़ि गेल हे
अमा मोरा रखितथि पिजरा क सुगा जकि

अब डाँरी चलल ससुर-घर देश
घर क पोतन होएवौं हे
जब डाँरी चलल पछिम राज
भउजि मन पड़ि गेल हे
भउजि मोरा रखितथि बसिया भात जकि

अब डाँरी चलल ससुर-घर देश
घरक चालन होएवौं हे

कहाँ से यह डोली आई है, और कहाँ जायगी ?

उत्तर से यह डोली आई है, और दक्षिण जायगी।

जब डोली उत्तर की ओर चली, तब अपने बाबा की याद ताज़ी हो आई। बाबा मुझे पगड़ी के पेच की तरह रखते थे। लेकिन अब यह डोली मुझे ससुर के राज्य में ले जायगी, जहाँ मैं दूध की मक्खी हो जाऊँगी।

जब डोली पूरब की ओर चली, तब अपने पिता की याद तड़पाने लगी। मेरे पिता मुझे धोती के पेच की तरह रखते थे। लेकिन अब यह डोली मुझे ससुर के राज्य में ले जायगी, जहाँ मैं घर की बोहारी हो जाऊँगी।

जब डोली दक्षिण की ओर चली, तब मुझे अपनी माँ की याद ताज़ी हो आई। मेरी माँ मुझे पिंजड़े के सुग्गे की तरह रखती थी। लेकिन अब यह डोली मुझे ससुर के देश में ले जायगी, जहाँ मैं घर की पोतन (कपड़ों का तह किया हुआ एक क़िस्म का कूँचा, जिसे भिँगो कर आँगन लीपा जाता है) हो जाऊँगी।

जब डोली पश्चिम की ओर चली, तब भावज की याद ताज़ी हो आई। भावज मुझे बासी भात की तरह रखती थी। लेकिन अब यह डोली मुझे ससुर के देश में ले जायगी, जहाँ मैं घर की चलनी हो जाऊँगी।

गीत के एक-एक शब्द बेबसी और करुणा में शराबोर हैं। इसमें कवि ने मैके से जुदा और ऐसी जुदा कि अब जीते जी दो-चार बार ही मैकेवालों से मिलने की आशा हो, एक वियोगाकुल रमणी की मनोदशा का चित्रण बड़े ही स्वाभाविक ढंग से किया है।

'पिता मुझे धोती के पेच की तरह रखते थे। लेकिन अब यह डोली मुझे ससुर के राज्य में ले जायगी, जहाँ घर की बोहारी हो जाऊँगी', इन पंक्तियों को पढ़ कर कौन ऐसा सहृदय है, जिसकी आँखों से अश्रु प्रवाहित न हो जाय।

(५)

गंगा उमड़ि गेल यमुना उमड़ि गेल
उमड़ल घोंघा सेमार हे

एक नइ उमड़ल बाबा कौन बाबा
आयल धर्म क बेर हे
कहिति त आहे बेटी तमुआ तनइति
आओर रेशमक ओहार हे
कहिति त आगे बेटी सुरज अरोधितौं
मोरे बदन न झमाय हे
कथि लागि बबा तमुआ तनाएब
कथि लागि रेशम ओहार हे
कथि लागि बाबा सुरज अरोधब
जएवौं सुन्दर वर पास हे
हम भइया मिलि एक कोख जनमल
पिअलि सोरहिया क दूध हे
भइया के लिखइन एहो चउपरिया
हमरो लिखल परदेश हे
ककरहि कानल में नग्र लोग कानय
ककरहि दहलल भुइँ हे
कोन निरबुधिया क आँगि टोपी भिंजल
ककर हृदय कठोर हे
बबा क कनले में नग्र लोग कानल
अमा क कनल दहलल भुइँ हे
भइया निरबुधिया के आँगि टोपी भिंजल
भउजि के हृदय कठोर हे
केहि जे कहय बेटी नित्य बोलायब
केहि कहय छौ मास हे
केहि कहय एतही भय रहथि
केहि कहय दुर जाऊ हे

वबा कहथि नित्य बोलाएब
भइया कहथि छौ मास हे
अमा कहथि एतहीं भए रह
भउजि कहथि दुर जाउ हे

गंगा उमड़ आई। यमुना उमड़ कर बह चली। घोंघे और सेवार भी उमड़ बहे। हाय! धर्म का मुहूर्त्त आया, लेकिन अमुक पिता नहीं उमड़े।

पिता ने कहा—'हे बेटी, अगर तुम कहो तो मैं शामियाना तना दूँ, रेशम का पर्दा लगा दूँ, और सूर्य्य की आराधना करूँ कि वह अपनी धूप से तुम्हारा गोरा बदन काला न करें।'

बेटी ने उत्तर दिया—'हे पिता, आप क्यों शामियाना तनायेंगे, क्यों रेशम का पर्दा लगायेंगे और क्यों सूर्य्य की आराधना करेंगे? मैं बगैर किसी कठिनाई के ही प्रियतम के पास चली जाऊँगी।

हे पिता, मेरा और मेरे भाई का एक ही कोख से जन्म हुआ। हमने एक ही साथ कामधेनु गाय का दूध पिया। लेकिन विधाता ने भाई की क़िस्मत में यह चौपाल लिखा, और मेरी किस्मत में परदेश।'

किसके रोने से सारे गाँव के लोगों ने रो दिया?

किसके रोने से पृथिवी दहल उठी?

किस निर्बुद्धि के विलाप करने से उसके शरीर की मिरज़ई और टोपी भींग गई, और किसका हृदय पाषाणवत् कठोर है?

पिता के रोने से सारे गाँव के लोगों ने रो दिया।

माँ के रोने से पृथिवी दहल उठी।

निर्बुद्धि भाई के रोने से उसके शरीर की मिरज़ई और टोपी भींग गई, और मेरी भावज का हृदय पाषाणवत् कठोर है।

किसने कहा—'नित्य बुलाऊँगा?'

किसने कहा—'छः महीने पर बुलाऊँगा।'

किसने कहा—'नित्य यहीं रहो?'

और किसने कहा—'आँखों के ओझल हो जाओ।'

पिता ने कहा—'नित्य बुलाऊँगा।'
भाई ने कहा—'छः महीने पर बुलाऊँगा।'
माँ ने कहा—'नित्य यहीं रहो।'
और भावज ने कहा—'आँखों के ओझल हो जाओ।'
कैसा मर्म-बेधी चित्रण है!

(६)

कथिलै रुदन पसारहु नागरि
कमल-नयन मुरझाय
के की कहलक सुन्दरि कहु-कहु
सोचहि हंस सुखाय
कथिलै रुदन पसारव हे पति
नइहर जाएब आसे
मातु-पिता-मुख देखब कखनहिं
किछु दिन नइहर बासे
कते दिन लै परतारव हे पति
आब मरब विष खाय
काल्हिक भामिनि भाग हुनक भेल
सब जनि नइहर जाय

हे सुन्दरी, तुम क्यों विलाप कर रही हो? तुम्हारे कमल-नयन क्यों मलिन हो रहे हैं?

हे सुन्दरी, कहो तुम्हें किसने क्या कहा, जो तुम्हारे प्राण कंठगत हो रहे हैं?

हे प्रियतम, भला मैं क्यों विलाप करूँ? नैहर जाने की मेरी इच्छा है। कुछ दिन नैहर में रह कर माँ-बाप का दर्शन कब करूँगी? तुम मुझे और कितने दिनों तक दिलासा दोगे? यदि तुमने नैहर जाने की अनुमति नहीं दी तो मैं गरल-पान कर शरीर त्याग दूँगी। जो सुहागिन हमसे पीछे श्वसुर-गृह आई, वह भी अपने नैहर चली गई।

यह उक्ति अपनी जन्म-भूमि और बन्धु-बान्धवों का परित्याग कर श्वसुर-गृह में बसी हुई नवोढ़ा नायिका की मनोदशा को खूब दर्शाती है।

(७)

अइसन निरमोहिया से जोरलि पिरितिया
बिछुरइत बिलमो न होय आहे सखिया
गौना कराइ पिया देहरी बइसवलन्हि
अपने चलल परदेश आहे सखिया
सासु जी के घर में ननद भेल बइरिन
हमरो गुजारा कोना होय आहे सखिया
फोरवइ में शंखा चुरी फारबइ में चोलिया
से धरवइ जोगिनिया क वेष आहे सखिया
दास कबीर एहो गावल समदाउनि
करवइ मे पिया के उदेश आहे सखिया

हे सखी, मैंने ऐसे निर्मोही से प्रेम किया कि बिछुड़ने में जरा भी देर न हुई। द्विरागमन करा कर वह मुझे घर में बिठा गया, और स्वयं परदेश चला गया।

सास के घर में ननद मेरी बैरिन हो गई। हे सखी, कहो अब मेरे ये दिन कैसे कटें ?

हे सखी, मैं अपनी यह शंख की चूड़ी तोड़ डालूँगी। कंचुकी फाड़ दूँगी। और प्रियतम की टोह में जोगिन बन कर अलख जगाऊँगी।

कबीरदास ने यह 'समदाउनि' गाया है। हे सखी, मैं (अवश्य) कभी-न-कभी प्रियतम की खोज कर लूँगी।

(८)

जब माधो चललन माधोपुर नगरिया
छाड़ि देल सकल समाज—आहे सखिया
एहो में जनितौं पिया माधोपुर जयता
बाँधितो में रेशम क डोर—आहे सखिया

रेशम बँधनमा टुटिए फाटि जएतइ
बाँधितो में अँचरा लगाय—आहे सखिया
अँचरा के फारि-फारि कगदा बनइतौं
लिखितौं में पिया के सन्देश—आहे सखिया
काते-कुते लिखितौं हुनक कुशलिया
बिचे में पिया क वियोग—आहे सखिया

जब श्रीकृष्ण मधुपुर जाने लगे तो सभी हित-कुटुम्बों का परित्याग कर दिया। हे सखी, यदि मैं जानती कि वह मधुपुर जायेंगे तो उन्हें रेशम की डोर में बाँध कर रखती। रेशम की डोर टूट जाती, अतः उन्हें चुँदरी के आँचल में बाँध कर रखती। आँचल फाड़-फाड़कर काग़ज़ बनाती। उस पर अपने प्रियतम को प्रणय-सन्देश लिख कर भेजती। पत्र के हाशिये में कुशल-क्षेम लिखती, और बीच में अपने प्रियतम का वियोग।

(६)

बड़ रे यतन हम सिया जी के पोसलौ
सेहो रघुवंशी ने ने जाय आहे सखिया
रानी जे रोबै रामा रोबै रनिबसवा
राजा जे रोबैं दरबजवा हे सखिया
हाथी जे रोबै रामा रोबै हथिसरवा
घोड़ा जे रोबै घोड़सरवा हे सखिया
टोला ओ परोस मिलि अओर सब रोयलैं
रोवै नगरिया के लोग आहे सखिया
मिलि लिअ मिलि लिअ संग के सहेलिया
अब ने अयतन सिया राज आहे सखिया

हे सखी, बड़े प्रेमपूर्वक जिस सीता का लालन-पालन किया, उसी सीता को राम लिये जा रहा है।

रानियाँ रंग-महल में रो रही हैं। राजा दरवाजे पर विलाप कर रहे हैं।

हाथी फीलखाने में रो रहे हैं। घोड़े अस्तबल में रो रहे हैं। अड़ोस-पड़ोस और सारे गाँव के लोग रो रहे हैं।

हे सखी, चलो हम सीता से अन्तिम विदा ले आवें। वह पुनः इस देश में लौट कर नहीं आयेगी।

(१०)

छोट अँगनमा माइ बरि परिवार हे
मिलइत-जुलइत माइ हे भय गेल साँझ
उठु अमा उठु अमा विदा मोहि दिउ
पउतिया सँठइत अमा लेलि लुलुआय
पथर के छतिया गे बेटी बिहुँसि न हे जाऊ
चलइत के बेरि बेटी देलि समुझाए
उठु भउजी उठु भउजी विदा मोहि दिउ
वसिया देअइत भउजी लेलि लुलुआय
पथर के छतिया ननदो पसिझियो ने जाउ
चलइत के बेरिया ननदो देलि समुझाय
उठु बाबा उठु बाबा विदा मोहि दिउ
दहेजवा देअइत बाबा लेलि लुलुआय
पथर के छतिया बेटी बिहुँसि ने जाऊ
चलइत के बेरिया बेटी देलि समुझाय
उठु बाबू उठु वाबू विदा मोहि दिउ
कपड़ा देअइत बाबू लेलन्हि लुलुआय
पथर के छतिया बेटी बिहुँसि ने जाउ
चलइत के बेरिया बेटी देलि समुझाय
उठु भइया उठु भइया विदा मोहि दिउ
गहना देअइत भाय लेलन्हि लुलुआय
पथर के छतिया बहिन बिहुँसि न हे जाउ
चलइत के बेरिया बहिन देलि समुझाय

छोटा आँगन है। बड़ा परिवार। मिलने-जुलने में ही शाम हो गई।

हे माँ, उठो। हे माँ, उठो। विदा दो।

यह सुन कर पिटारी साँठती हुई माँ ने मुझे तिरस्कारसूचक शब्दों में धिक्कारा।

'पत्थर की तरह कठोर कलेजावाली हे बेटी, विदा के समय मत हँसो'—इस प्रकार माँ ने मुझे समझाया।

हे भावज, उठो! हे भावज, उठो! विदा दो। यह सुन कर जलपान परोसती हुई भावज ने मुझे तिरस्कारसूचक शब्दों में दुत्कारा।

'पत्थर की तरह कठोर कलेजावाली हे ननद, विदा के समय मत हँसो'—इस प्रकार भावज ने मुझे समझाया।

हे बाबा, उठो! हे बाबा, उठो! मुझे विदा दो। यह सुन कर दहेज देते हुए बाबा ने मुझे दुत्कारा।

'पत्थर की तरह कठोर कलेजावाली हे बेटी, विदा के समय मत हँसो'—इस प्रकार मेरे बाबा ने समझाया।

हे पिता, उठो! हे पिता, उठो! मुझे विदा दो। यह सुन कर कपड़े देते हुए पिता ने मुझे दुत्कारा।

'पत्थर की भाँति कठोर कलेजावाली हे बेटी, विदा के समय मत हँसो'—इस प्रकार मेरे पिता ने समझाया।

हे भाई, उठो! हे भाई, उठो! मुझे विदा दो। यह सुन कर गहने देते हुए मेरे भाई ने मुझे दुत्कारा।

'पत्थर की तरह कठोर कलेजावाली हे बहन, विदा के समय मत हँसो'—इस प्रकार मेरे भाई ने समझाया।

(११)

मिलि लिय सखिया दिवस भेल रतिया
चित्त भेल जग सँ उदास
सात भाय केर एक बहिनिया
से कोना जइति ससुरार

कोन भाय यमुना में नाव खिरओतनि
कोन भाय जयता संग-साथ
निर्गुण भाय यमुना में नाव खिरओतनि
सगुण भाय जयता संग-साथ
नहिरक लोग सब कउरना करथिन
ससुरा में उधम-बधाय

हे सखी, आओ एक बार गले लग कर मिल लें। दिन रात हो गये। संसार से चित्त विरक्त हो गया।

सात भाइयों के बीच एक बहन है। हाय! वह ससुराल कैसे जायगी?

कौन भाई यमुना के बीच से नाव खेकर पार लगायेगा। कौन भाई साथ जायगा?

निर्गुण भाई यमुना के बीच से नाव खेकर पार लगायेगा। और सगुण भाई साथ जायगा।

नैहर के लोग विलाप कर रहे हैं, और ससुराल में उत्सव मनाया जा रहा है।

(१२)

बर रे यतन सँ सीता जी कैं पोसलौं
सेहो रघुवंशी ने ने जाय
मिलि लिय मिलि लिय सखि सब मिलि लिय
सीता बेटी जइति ससुरार
कथि केर डोलिया केहनि ओहरिया
लागि गेल बतिसो कहार
चननक डोलिया सबजि ओहरिया
लागि गेल बतिसो कहार
आगु आगु रघुवर पाछु पाछु डोलिया
तकरा पाछु लछमन भाय

बड़े यत्नपूर्वक सीता का लालन-पालन किया। उसी सीता को राम लिये जा रहा है।

हे सखी, एक बार मिल लो। गले लग कर मिल लो। बेटी सीता ससुराल जायगी।

किस वस्तु की डोली है? किस रंग का पर्दा लगा है? उसे बत्तीस कहार उठा कर चल पड़े।

चन्दन की डोली है। उसमें सब्ज रंग का पर्दा लगा है। उसे बत्तीस कहार उठा कर चल पड़े।

आगे-आगे राम हैं। पीछे-पीछे डोली, और उसके पीछे लक्ष्मण जा रहे हैं।

(१३)

कोन देश सँ अयले रे सोनरवा
बइसि गेलै बबा क दुआर
पूर्बहिं देश सँ अयलै सोनरवा
वइसि गेलै ववा क दुआर
नीक-नीक गहना गढ़िहे रे सोनरा
सीता बेटी जइति ससुरार
के मोरा साँठत पउति पेटारिहुँ
के साँठत धेनु गाय
के मोरा साँठत फूटलि बासन
ककरहिं हृदय कठोर
माय मोर साँठत पउती पेटारिहुँ
बाबा साँठत धेनु गाय
भाय मोर साँठत फूटलि बासन
भउजिक हृदय कठोर
धिआ क जनम जनि दिअह विधाता
धियर डूबथि बिच धार

रे सोनार, तुम किस देश से आये हो? और बाबा के दरवाजे पर बैठ गये हो?

सोनार पूरब से आया है, और बाबा के दरवाजे पर बैठ गया है।

रे सोनार, तुम कुछ अच्छे-अच्छे गहने गढ़ कर दो। बेटी सीता ससुराल जायगी।

कौन पिटारी साँठ[1] कर देगा? कौन धेनु गाय देगा?

कौन फूटी हाँड़ी साँठ कर देगा? और किसका हृदय कठोर है?

मेरी माँ पिटारी साँठ कर देगी। बाबा कामधेनु गाय देगा।

भाई फूटी हाँड़ी साँठ कर देगा, और मेरी भावज का हृदय कठोर है।

हे विधाता, कन्या का जन्म मत दो। उसके जीवन की नौका मँझधार में डूब जाती है।

(१४)

चइत बइशाख केर धूप मतओना
धिया मोरा जइति कुम्हलाय
जौं हम जनितों धिया सासुर जयती
बाटहि बिरिछ लगाय
एक कोस गेली धिया दुइ कोस गेली
तेसर में लागल तरास
बांस कोंपर सन भाय हम तेजल
कमलक फुल सन बाप
पुरइन दह सन माय हम तेजल
छुटि गेल बबा केर राज
डाँरि उघारि जब देखलन्हि धिया
काँकरि जका हिया फाट

---

१ दहेज देना। भिन्न-भिन्न प्रकार की वस्तुएँ; जैसे—कंघे, दर्पण, लहँगे आदि सँभाल-सँभाल कर पिटारी में रखना।

बेटी की माँ चिंता कर रही है—चैत और वैशाख की धूप मूर्च्छित कर देनेवाली होती है। मेरी बेटी प्रखर ताप से कुम्हला जायगी। यदि जानती कि बेटी ससुराल जायगी तो रास्ते में—सड़क के दोनों किनारे दरख्त लगवा देती।

बेटी एक कोस गई। दो कोस गई। तीसरे कोस में प्यास के मारे उसके कंठ सूख गये।

वह मन-ही-मन सोचने लगी—मैंने बाँस की कोंपल के समान भाई का परित्याग कर दिया। कमल के फूल की भांति पिता को छोड़ आयी।

पुरइन से हरे-भरे सरोवर के समान मा को त्याग दिया, और बाबा के सुखमय राज्य से भी मेरा बिछोह हो गया।

जब डोली का पर्दा हटा कर उसने इधर-उधर देखा तो जन्मभूमि की याद आ जाने से उसका कलेजा ककड़ी के समान विदीर्ण हो गया।

(१५)

सुभग पवित्र भूमि मिथिला नगरिया
हमरा के कहाँ ने ने जाइछे रे कहरिया
जूही वो चमेली, चम्पा, मालति कुसुम गाछ
केवरा गुलाव सभ सुनु रे कहरिया
सुन्दर सुन्दर वन सुन्दर सुन्दर घन
सुन्दर सुन्दर सभ गाछ रे कहरिया
केरा ओ कदम्ब आम पिपर परास गाछ
आब कहाँ देखवइ हाय रे कहरिया
ककरा नयनमा सँ गंगा नीर बहि गेल
ककरहिं हृदय कठोर रे कहरिया
माता जी क नयन सँ गंगा नीर बहि गेल
पिता जी क हृदय कठोर रे कहरिया
केहि मोरा साँठल पउति पेटरिया हे
केहि मोरा देल धेनु गाय रे कहरिया

माय मोरा साँठल पउति पेटरिया हे
पिता मोरा देल धेनु गाय रे कहरिया
लालि-लालि डोलिया में सबुज ओहरिया
लागि गेल बतिसो कहार रे कहरिया
गोर तोरा परिअऊ अगिला कहरिया रे
तनियक डँड़िया रोकु रे कहरिया
भाय मोरा रहितथि डोलि संग चलितथि
बिनु भाय डोलिया सून रे कहरिया
नहिअरा के मुँह हम देखवइ कोना आब
नहिअरा के सपना करयले रे कहरिया
बाबू जी के मुँह हम देखब कोना आब
चाची कोना बिसरब हाय रे कहरिया
भाय ओ भतीजा अओर सखिया सलेहर
आब कोना देखवइ हाय रे कहरिया
आगा-आगा रामचन्द्र पाछाँ भाय लछमन
पहुँचि गेल झटपट अवध नगरिया
आरति उतार लागल कोशिला महलिया
सभ सखि मंगल गाउ रे कहरिया

रे कहार, मिथिला की सुंदर और पवित्र भूमि से नाता छुड़ा कर मुझे कहाँ लिये जा रहे हो ?

जहाँ जूही, चमेली, गुलाब आदि के फूल-गाछ लहराया करते हैं। जहाँ के वन-उपवन अत्यन्त मनोरम हैं। सुन्दर बादल आसमान में मंड़ला रहे हैं। किस्म-किस्म के सुंदर गाछ हैं—केला, पीपल, पलाश आदि।

इन्हें अब कहाँ देखूंगी ?

किसकी आँखों से गंगा-जल उमड़ बहा ? और किसका हृदय प्रस्तर के समान कठोर है।

माँ की आँखों से गंगा-जल उमड़ बहा, और पिता का हृदय प्रस्तर के समान कठोर है ?

किसने मुझे उपहार में पिटारी साँठ कर दी ? और किसने कामधेनु गाय दी ?

माँ ने उपहार में पिटारी साठ कर दी, और पिता ने कामधेनु गाय दी।

लाल रंग की डोली में सब्ज रंग का पर्दा लग गया। उसको बत्तीस कहार कंधे पर उठा कर द्रुत वेग से चल पड़े।

रे अगिला कहार, मैं तुम्हारे पैरों पडतीं हूँ। पल-भर के लिए डोली रोक लो। मेरे भाई होते तो डोली के साथ-साथ चलते। बिना भाई के डोली सूनी लगती है।

रे कहार, नैहर का मुख अब कैसे देखूंगी ? हाय, मेरे लिए नैहर स्वप्न हो गया।

पिता का मुख कैसे देखूँगी ? और अपनी चाची की याद कैसे भूलूंगी ?

भाई, भतीजे, सखी और अपनी बहन को कैसे देख पाऊँगी ?

डोली के आगे-आगे राम हैं—पीछे-पीछे लक्ष्मण। वे बात-की-बात में अयोध्या पहुंच गये। रानी कौशल्या उनकी आरती उतारने लगी, और सखियाँ प्रसन्न होकर मंगल गाने लगीं।

झूमर

'झूमर' मोहन की उस मधुर वंशी-ध्वनि की तरह है, जो अपने स्वर-वैचित्र्य से मानस-जगत को आन्दोलित करती हुई शिरा-शिरा में कम्पन भर देती है। स्थूल दृष्टिवालों के लिए तो वंशी एक निर्जीव बाँस-मात्र है, लेकिन जिसकी आँखों में भेद-भरी चितवन है उसके लिए तो प्रेम की शलाका से तप्त वंशी के उस सरल हृदय में प्रेम की गुनगुनाहट और जीवन के मौन रहस्यों की कथा भरी है।

'झूमर' की दो किस्में हैं—(१) सन्देशात्मक, और (२) भावात्मक। सन्देशात्मक 'झूमर' में भौंरे, काक, कोयल और राहगीरों के द्वारा प्रवासी साजन को विरहिणी नायिका की ओर से सन्देश भेजे गए हैं। और भावात्मक 'झूमर' में बुद्धिवाद हुंकार कर उठा है अथवा यों कहिये कि भावात्मक 'झूमर' में रसात्मक अनुभूति और आनन्द का साधारणीकरण है। लेकिन अब तक हमें जो 'झूमर' उपलब्ध हुए हैं, उन्हें देखने से पता चलता है कि भावात्मक 'झूमर' की संख्या प्रायः नगण्य है और उनमें मुश्किल से दश-प्रति-शत रचनाएँ उच्च कोटि में शुमार करने योग्य हैं।

'झूमर' का उत्पत्तिकाल पुराना है। अपढ़ गँवारों के कंठ से निकलते-निकलते इसके पैरायों और कड़ियों में काफ़ी परिवर्त्तन हो चुके हैं। इसकी भाषा, भाव, शैली और विषय सामयिकता के मनोहर साँचे में ढल कर परिष्कृत हो गये हैं। 'झूमर' के एक ग्रामीण विशेषज्ञ का कहना है कि 'झूमर' काल के प्रारम्भिक गीति-काव्य पुरानी फुलवाड़ी के वर्गे-ज़र्द—पीले पत्ते की तरह हैं जो 'निर्गन्धा इव किंशुकाः'-से प्रतीत होते हैं। लेकिन 'झूमर' के उत्तर-काल की रचनाशैली काव्य की फुलवाड़ी की फूली हुई लता है, जो अपनी उग्र गन्ध से तबीयत को गुलज़ार करती है। 'झूमर' के प्रारम्भिक

काल के अधिकांश 'झूमर' गीत प्रायः अनमेल लम्बे-लम्बे चरणों के संग्रह होते थे, जिसके (ग़ज़ल के पहला शेर—'मतला' की तरह) दोनों चरणों की तुक एक दूसरे से परस्पर मिली होती थी। कोई-कोई 'झूमर' गीत उर्दू शायरी 'कसीदे' की तरह व्यक्ति-विशेष की प्रशंसा में लिखे जाते थे, और कोई-कोई अपनी भाव-प्रवणता और रागात्मिका शक्ति से रंगारंग की कैफ़ियतें जाहिर करते थे।

'झूमर' की एक अपनी दुनिया है। इसका मज़मून प्रेम से शराबोर और पाक ख़यालातों से लबालब भरा है। पंक्ति-पंक्ति में वारुणी और शब्द-शब्द में जादू का असर है। यह हर ऋतु और हर महीने में गाया जाता है। 'झूमर' का अर्थ है—झुमाना, मस्ती में नचाना। जब गायिकायें वायु के मन्द-मन्द झकोरों-सी झूमती हुई अपने कोकिल-कंठों से इसे गाती हैं, तब पृथिवी का पत्ता-पत्ता नाच उठता है, और आनन्द की एक मन्दाकिनी-सी फूट बहती है। तिस पर इसकी साहजिकता और स्पष्टता तो सोने में सुगन्ध ला देती है। वह हमें भावार्थ निकालने—अनुसंधान करने का मौका नहीं देती। अपितु उसका उत्तर उसके स्वच्छ हृदय-मुकुर में स्पष्ट झलक उठता है। वस्तुतः यही चीज है, जो 'झूमर' को लोकोत्तर-आनन्ददायक बनाती है।

कुछ उदाहरण लीजिए।

निम्नलिखित 'झूमर'—जो खासकर हिंडोले पर बैठकर गाया जाता है, में देवर; जिसने बड़े प्रेम से रेशम की डोरी गूँथकर हिंडोले लगाये हैं—अपनी भावज से झूला झूलने को कहता है। लेकिन उसकी भावज जो अपने नादान शिशु को गोद में लेकर हिंडोले पर बैठना खतरे से खाली नहीं समझती, उसके प्रस्ताव को स्पष्ट अस्वीकार करती है। पाठक देखें कि महज इतनी-सी बात निम्नलिखित 'झूमर' में कितने कोमल ढंग से दरशाई गई है—

(१)

छोटका देवर रामा
बड़ रे रंगीलवा

रेशम के डोरिया न
देवरा बान्हथि हिंडोरवा
रेशम के डोरिया न
से झूलि लिअउ न
भउजी कल के हिंडोरवा
त झूलि लिअउ न
कोना क झूलू देवरा
कल के हिंडोरवा
से मोरा गोदी न
कोमल कुसुम बलकवा
से मोरा गोदी न
बबुआ सुतइअउ भउजी
सोने के पलंगिया
से झूलि लिअउ न
भउजी कल के हिंडोरवा
से झूलि लिअउ न
सोने के पलंगिया
से गिरि जयतइ बबुआ
से टूटि जयतइ न
देवरा जनम पिरितिया
से टूटि जयतइ न
देवरा जनम सनेहिया
से छूटि जयतइ न

इस छोटे-से गीत में कवि ने एक माँ के निस्वार्थ वात्सल्य-रस-पूरित हृदय का, जो अपने शिशु के मंगल के लिए विश्व के भारी-से-भारी प्रलोभनों को भी लात मारने को तैयार है, कितना सुकुमार अंकन किया है !

(२)

निम्नलिखित रचना 'झूमर' का एक सुन्दरतम उदाहरण है। इसमें नायिका अपने भाई का विवाह देखने अपने मैके जाना चाहती है। वहाँ जाने के लिए उसके प्रियतम की रज़ामन्दी ज़रूरी है। प्रियतम टालमटोल करता है। सुनिये—

पिया हे नइहर में भाई के विवाह
देखन हम जायव
सुनऽहे प्राण देखन हम जायव
धनि हे धय देहु सिरवा पर हाथ
कतेक दिन रहव
सुन हे प्यारी कतेक दिन रहव
पिया हे नय धरबइ सिरवा पर हाथ
बरस बिति जयतइ
सुनऽअ हे प्राण बरस बिति जयतइ
धनि हे करवह सोलहो सिंगार
के ही के देखलाएव
सुन हे प्यारी केही के देखलाएव
पिया हे करवइ मे सोलहो सिंगार
सखी के देखलायव
सुनऽअ हे प्राण सखी के देखलायव
धनि हे अयतइ मे जाड़ा के रात
केहीं के गोदी सोएव
सुन हे प्यारी केही के गोदी सोएव
पिया हे अएतइ मे जाड़ा के रात
अम्मा के गोदी सोएव
सुनऽअ हे प्यारे अमा के गोदी सोएव

धनी हे अएतइ मे फागुन के बहार
केहि से रंग खेलब
पिया हे अएतइ मे फागुन के बहार
भउजि संग खेलव
सुनऽअ हे प्यारे भउजि संग खेलव
धनि हे करबइ मे दोसरो विवाह
तोहीं के न बोलाएव
सुनऽअ हे प्यारी तोहीं के न बोलाएव
पिया हे नइहर में भाइ अयह वकील
तोही के बँधवाएव
पिया हे नइहर में भाइ छथ दरोगा
तोही के पिटवाएव

ओ प्रीतम, मैके में मेरे भाई का विवाह है। देखने जाऊँगी। ओ प्राण, देखने जाऊँगी।

अयि प्रियतमे, पहले अपने सिर पर हाथ रख कर कसम खाओ कि तुम वहाँ कितने दिन रहोगी? ऐ प्यारी, तुम वहाँ कितने दिन रहोगी?

ओ प्रीतम, मैं सिर पर हाथ रख कर कसम नहीं खाऊँगी। मैं वहाँ वर्षों रहूँगी। ओ प्राण, मैं वहाँ वर्षों रहूँगी।

अयि प्रियतमे, तुम वहाँ सज-धज कर सोलह प्रकार के शृंगार किसे दिखाओगी? अयि प्यारी, किसे दिखाओगी?

ओ प्रीतम, मैं सज-धज कर सोलह प्रकार के शृंगार प्यारी सखी को दिखाऊँगी। ओ प्राण, अपनी प्यारी सखी को दिखाऊँगी।

अयि प्रियतमे, जाड़े की रात आयेगी तब तुम किसकी गोद में सोओगी। अयि प्यारी, तुम किसकी गोद में सोओगी।

ओ प्रीतम, जाड़े की रात आयेगी, तब अपनी माँ की गोद में सोऊँगी। ओ प्राण, मैं अपनी माँ की गोद में सोऊँगी।

अयि प्रियतमे, होली की बहार आयेगी तब तुम किसके साथ आमोद-प्रमोद करोगी ? ओ प्रियतमे, तुम किसके साथ आमोद-प्रमोद करोगी ?

ओ प्रीतम, होली की बहार आयेगी, तब अपनी भावज के साथ आमोद-प्रमोद करूँगी। ओ प्राण, मैं अपनी भावज के साथ आमोद-प्रमोद करूँगी।

अयि प्रियतमे, तुम जाओ। मैं दूसरा विवाह कर लूँगा, और मैं तुम्हे कभी नहीं बुलाऊँगा। अयि प्यारी, मैं तुम्हें कभी नहीं बुलाऊँगा।

दूसरा विवाह करने की बात सुन कर उसकी प्रिया व्यंग्यपूर्वक अपने प्रियतम के प्रश्न का जवाब देती है—

ओ प्रियतम, मैके में मेरा भाई वकील है। तुम दूसरा विवाह कर लोगे तो मैं तुम्हें जेल भिजवा दूँगी।

ओ प्राण, मैके में मेरा भाई दारोगा है। यदि तुम दूसरा विवाह कर लोगे तो मैं तुम्हें सजा दिलाऊँगी। ओ प्राण, मैं तुम्हें सजा दिलाऊँगी।

(३)

बँसिया बजा के कान्हा मोरा मन हरलन्हि
मधुवन में गेल न
मोरा वंशीवाला कान्हा मधुवन में गेल न
ओहि मधुवनमा में कुबरी जोगिनिआ
त जादू कयलन्हि न
मोरा वंशीवाला कान्हा पर जादू कयलन्हि न
अपने जँ गेला हरि जी देश रे विदेशवा
त दइय गेल न
एक सुगना खेलओना त दइय गेल न
दिन के जँ देवउ सुगना दही-चूरा भोजना
त राति के सुगना न
देवउ सूते के पलंगिया त राति के सुगना न
अगली पहर राति पिछलि राति न
सुगना काटय लागल चोलिया त पिछली राति न

एक मन करइ सुगना बाँहि धरि ममोरितौं
त दोसर मनमा न
सुगना पिया के खेलनमा त दोसर मनमा न
इहँमा के उड़ल सुगना जाय परदेशवा
त बइसे सुगना न
हाथ लेल प्रभु जँघिया बइसओलन्हि
त कहू रे सुगना न
मोरा घरे के कुशलिआ त कहू रे सुगना न
माए अहाँ क रोअथि साँझु भिनुसरवा
त बहिनि अहाँ के न
रोअथि आपन ससुररिया त बहिनि अहाँ के न
धनी अहाँ क रोअथि आधि-आधि रतिया
त सेजिए देखि न
धनि के फटइछइन करेजवा त सेजिय देखि न

मेरे कृष्ण ने वंशी बजा कर मेरा मन मोह लिया, और स्वयं मधुवन चले गये। उस मधुवन में एक कुब्जा जोगन रहती है, जिसने मेरे वंशीवाले कृष्ण पर जादू कर दिया है। मेरे प्रियतम तो स्वयं परदेश चले गये, और मेरे मनोरंजन के लिए एक खिलौना—सुग्गा छोड़ गये।

रे सुग्गे, मैं तुम्हें दिन में दही-चूरा खाने को दूँगी, और रात में सोने के लिए लाल पलंग। जब पहली और चौथी पहर रात बीत गई तब सुग्गा ने कठोर चोंच से मेरी चोली कुतर डाली।

रे सुग्गे, तुमने मेरी चोली कुतर डाली। अगर तुम मेरे प्रियतम का प्यारा खिलौना न होता तो तुम्हें हाथों में लेकर मरोड़ डालती।

सुग्गा उड़ कर सीधे परदेश जाता है। वियोगिन का प्रियतम सुग्गा को अपनी जंघा पर बिठाता है, और घर का कुशल-क्षेम पूछता है। सुग्गा कहता है—

तुम्हारी माँ तुम्हारे वियोग में सुबह-शाम आँसू बरसाती है। तुम्हारी बहन अपनी ससुराल में तुम्हारे लिए ज़ार-ज़ार रो रही है। तुम्हारी प्रियतमा आधी-आधी रात को सेज सूनी देख कर तड़पती है, और उसका हृदय विदीर्ण हो रहा है।

(४)

फुलवा पहिनि हम सोयलौं अँगनमा
अबा-जाइ कएलौं
ओ मोरा राजा अबा-जाइ कएलौं
इ देहिया मोर अमा के पोसल
कोना हक लगएलौं
ओ मोरे प्यारे कोना हक लगएलौं
फुलवा अइसन हम चमकइत रहलि
धूरमइल कइ देलौ
टिकवा पहिनि हम सोएलौं अँगनमा
अबा-जाइ कयलौं
ओ मोरा राजा अबा-जाइ कएलौं
इ देहिया मोरा चाची के पोसल
कोना हक लगएलौं
सोनमा अइसन हम चमकइत रहलि
पीतर कइ देलौं
ओ मोर राजा पीतर कइ देलौं

अजी ओ प्रियतम, मैं कर्णफूल पहन कर आँगन में सोई थी। तुमने आना-जाना किया। यह शरीर मेरी माँ का पाला हुआ था। तुमने कैसे हक़ जताया? अजी ओ प्यारे, तुमने कैसे हक़ जताया? मैं फूल की तरह सुगन्धित थी। तुमने धूल की तरह नीरस बना दिया।

अजी ओ प्रियतम, मैं मांगटीका पहन कर आँगन में सोई थी। तुमने आना-जाना किया। यह शरीर मेरी चाची का पाला हुआ था। तुमने कैसे

हक़ जताया ? मैं सोने की तरह चमकती थी। तुमने पीतल बना दिया। अजी ओ प्यारे, तुमने पीतल बना दिया।

(५)

कोन वन हारि बाँस झुरमुट गे सजनी
कोन वन पिक कुहु कुहुकल गे सजनी
बाबू वन हारि बाँस झुरमुट गे सजनी
सँइए वन पिक कुहु कुहुकल गे सजनी
जौं हम जनितओं बलमु जयतइ परदेशवा
रखितऔं कलेजवा छिपाए गे सजनी
कथिए फारिए कोरा कागज गे सजनी
कथिए काजर-मसिहान गे सजनी
अँचरा फारिय कोरा कागज गे सजनी
नयना काजर मसिहान गे सजनी
ककरा हम बुझिअऊ कयथा गे सजनी
ककरा हाथ चिट्ठि लिखि भेजिअऊ गे सजनी
घरहिं में देवरा कएथवा गे सजनी
राही हाथ चिट्ठि लिखि भेजह गे सजनी
अऊँठि-पऊँठि देवर लिखह खेम कुशलवा
माँझे ठँइया धनी के विरोग
बाट रे बटोहिया कि तोहिं मोरा भाय
हमरो समाध नेने जइह रे बटोहिया
हमरो समाध बलमु आगु कहिह
कहिह में वचनि बुझाय
तोहरो बलमु जी के जनिअउ न सुन्दरि
कोना कहवइ वचनि बुझाय
हमरो बलमुआ के घुट्टि शोभइन धोतिया
जइसे रहे जइ जमिंदार

जहँमा जँ देखिह् भइया दस-बीस लोगवा
ताहाँ चिठि रखिह् छपाय
जहँमा जँ देखिह् असगर बलमुआ
ताहाँ चिट्ठि दिअह् पसार
चिठिया पढ़इते में हरि मुसकयलन्हि
केता धनि लिखलक विरोग
देहि रे सहेबवा रोज रे तलबबा
अब हम धरु अपन बाट

हे सखी, किसके उपवन में यह बाँसों का हरा-भरा झुरमुट है, और किसके उपवन में यह कोयल कूक रही है ?

हे सखी, तुम्हारे पिता के उपवन में यह बाँसों का हरा-भरा झुरमुट है और तुम्हारे प्रियतम के उपवन में यह कोयल कूक रही है।

हे सखी, यदि मैं जानती कि मेरे धन के लोभी प्रियतम परदेश जायेंगे, तो मैं उन्हें कलेजे में रखती। अब उन्हें प्रणय-संदेश लिख कर भेजूँगी; लेकिन मेरे पास न तो कोरा काग़ज़ है और न स्याही।

मैं किस वस्तु का कोरा काग़ज़ तैयार करूँ, और किस वस्तु की स्याही ?

हे सखी, अपने आँचल को फाड़ कर कोरा काग़ज़ बना लो, और अपनी आँखों के काजल की स्याही।

नायिका अनपढ़ है। अपनी अनुभूतियों को क़लम पर उतारने में असमर्थ। इसलिए वह जिज्ञासा करती है—

हे सखी, मैं पत्र लिखने के लिए किस लेखक की मदद लूँ और उसको किसके हाथ प्रियतम को भेजूँ ?

उसकी सखी ने कहा—तुम्हारे तो घर में ही तुम्हारा देवर पत्र-लेखन-कला में पटु है। उसीसे पत्र लिखा लो और उसे किसी राह चलते हुए मुसाफ़िर के हाथ भेज दो।

नायिका देवर के पास जाती है, और पत्र का मज़मून बतलाती है—हे देवर, पत्र के चारों कोने पर कुशल-क्षेम लिखो और उसके बीच में मेरे प्रियतम का वियोग।

हे पथिक, तुम मेरे भाई हो। मेरा प्रणय-संदेश मेरे प्रियतम के पास लेते जाओ। उन्हें मेरा सन्देश भली भाँति समझा देना।

पथिक ने कहा—हे बहन, तुम्हारे प्रियतम की मैंने सूरत तक नहीं देखी। मैं उसे तुम्हारा प्रणय-संदेश कैसे कहूँगा?

नायिका ने कहा—हे पथिक, मेरे प्रियतम घुटने तक धोती पहनते हैं और ऐसे ठाट-बाट से रहते हैं, जैसे कोई बाबू जमींदार रहे। जहाँ उन्हें मित्रों की गोष्ठी में देखना वहाँ चिट्ठी छिपा रखना और जहाँ अकेला देखना, वहाँ चिट्ठी खोल कर दे देना।

पथिक नायिका का पत्र लेकर उसके प्रियतम के पास गया। पत्र पढ़ कर उसका प्रियतम मुसकिराया और बोला—मेरी प्रियतमा ने कितना वियोग लिखा है?

पथिक ने कहा—मुझे पुरस्कार मिले। मैं अपना रास्ता नापूँ। मैं आपकी वियोगिन प्रिया का प्रणय-संदेश लाया हूँ।

'अँचरा फारिए कोरा काग़ज गे सजनी, नयना काजर मसिहान' (आँचल को फाड़ कर काग़ज़ बना लो और आँखों के काजल की स्याही।) में वियोगिन का हृदय उमड़ पड़ा है। इन पंक्तियों में वेदना तड़प उट्ठी है। पुरानी 'झूमर'—शैली का यह गीत विरह का एक सजीव वर्णन है।

(६)

बोलिया सुना क कहाँ गेलौं रे
माटी के सुगनमा
उड़ि-उड़ि सुगना कदम चढ़ि बइसल
कदम के सब रस ले लेल हे
माटी के सुगनमा

उड़ि-उड़ि सुगना लवंग चढ़ि बइसल
लवंगा के सब रस ले लेल हे
माटी के सुगनमा
उड़ि-उड़ि सुगना जोवन चढ़ि बइसल
जोबना के सब रस ले लेल हे
माटी के सुगनमा

रे मिट्टी के सुग्गे, अपनी बोली सुना कर तू कहाँ चला गया? मेरा मिट्टी का सुग्गा उड़ कर कदम की डाल पर बैठा, और कदम का सब रस चूस लिया। मेरा मिट्टी का सुग्गा उड़ कर लौंग की डाल पर बैठा और लौंग का सब रस चूस लिया। मेरा मिट्टी का सुग्गा उड़ कर जोबन की डाल पर बैठा, और जोबन का सब रस चूस लिया। रे मिट्टी के सुग्गे, तू अपनी बोली सुना कर कहाँ चला गया?

(७)

नयना में शीशा लगाउ
बलमु नयना में शीशा लगाउ
जकरा दुआरि पर गंगा बहय
से कोना कुँइया पर जाय
बलमुआ नयना में शीशा लगाउ
जकरहिं घर में पतिवरता तिरिया
से कोना बेसबा सँग जाय
बलमुआ नयना में शीशा लगाउ
जकरहिं हिया परमात्मा बसय
से कोना रन-बन भरमाय
वलमुआ नयना में शीशा लगाउ

रे सजन, ज़रा अपनी आँखों में शीशा लगा कर तो देख। जिसके दरवाज़े पर गंगा बहती है, भला वह कुएँ पर क्यों जायगा?

रे सजन, ज़रा अपनी आँखों में शीशा लगा कर तो देख।

जिसके घर में पतिव्रता नारी है, भला वह वेश्या के पास क्यों जायगा ?

जिसके हृदय-मन्दिर में परमात्मा है, भला वह जंगलों में उसकी खोज क्यों करेगा ?

रे सजन, ज़रा अपनी आँखों में शीशा लगा कर तो देख ।

(८)

सोने क झारी गंगाजल पानी
पिउ पिया पानी पिलाउ जल्दी सँ
दिल अति व्याकुल भेल गरमी सँ
सोने क थाली में जेओना परोसल
जेंउँ पिया भोजना जेंवाउँ जल्दी सँ
दिल अति व्याकुल भेल गरमी सँ
लवंगा में चुनि-चुनि बिड़िया लगएलौं
चाभु पिया चभाउ जल्दी सँ
दिल अति व्याकुल भेल गरमी सँ
फुलवा क डाली सँ सेजिआ डँसयलौं
सोउ पिया सेजिया सुलाउ जल्दी सँ

मेरा दिल गर्मी से व्याकुल हो गया। ओ प्रियतम, सोने के घड़े में गंगा का जल है। पी लो, और मुझे भी पिलाओ।

सोने की थाली में भोजन परोसे हैं। ओ प्रीतम, खाओ। और मुझे भी खिलाओ।

लौंगों से सजा-सजा कर पान की गिलौरियाँ लगाईं। ओ प्रीतम, चाभो और मुझे भी चभाओ।

ओ प्रीतम, फूलों की डाली से सेज सँवारी है। सोओ, और मुझे भी सुलाओ।

मेरा दिल गर्मी से व्याकुल हो गया।

(९)

अहाँ क नजर दुनु छँहिया
बलमु दुपहरिया गँवा लिउ हे
चार महीना पिया जाड़ा रहइअ
थर-थर काँपे करेजा
बलमु दुपहरिया गँवा लिउ हे
चार महीना पिया गरमी रहइय
ठोपे-ठोपे चुए पसीना
बलमु तनि बेनिया डोला दिउ हे
चार महीना पिया बरसा रहइअ
ठोपे-ठोपे चुए मन्दिरवा
बलमु तनि बंगला छवा दिउ हे

ओ प्रीतम, ज़रा मैं तुम्हारी दोनों आँखों की शीतल छाँह में चिलचिलाती हुई दोपहरी तो बिता लूँ?

ओ प्रीतम, चार महीने तो कड़ाके का जाड़ा पड़ता है और मेरा कलेजा थर-थर काँपता है। इसलिए तुम्हारी दोनों आँखों की शीतल छाँह में जरा दोपहरी तो बिता लूँ।

ओ प्रीतम, चार महीने तो भीषण गर्मी पड़ती है और मेरे शरीर से बूँद-बूँद पसीना टपकता है। ज़रा पंखा तो झल दो। ओ प्रीतम, तुम्हारे युगल नयनों की कोमल छाँह में ज़रा दोपहरी तो बिता लूँ।

चार महीने तो पावस-ऋतु रहती है और मेरी यह घास-फूस की झोंपड़ी टप-टप चूने लगती है। ओ प्रीतम, एक बँगला तो बनवा दो। ओ प्रीतम, तुम्हारी दोनों नज़रों की शीतल छाँह में ज़रा दोपहरी तो बिता लूँ।

(१०)

पूर्व में पौ फटती है। तालाब में कमलिनी खिलती है। चिड़ियाँ धीरे-धीरे खुशी का सन्देश सुनाती हैं। निम्नलिखित गीत में एक तरुणी अपने प्रीतम

से, जो अभी गाढ़ी निद्रा में खर्राटे ले रहा है, पर्दे की जटिलता और लोक-लाज के कारण शयनागार से उठ जाने का अनुरोध कर रही है—

भोर भेल हे पिया भिनुसरवा भेल हे
पिया उठु न पलंगिया अब कोइलिया बोलै न
उठवे करब गे धनी उठवे करब हे
देही न मुरेठवा हम कलकतवा जयबइ हे
कलकतवा जयब हे पिया कलकतवा जयब हे
हम बाबा के बुलबाइए नइहरवा जयवइ हे
नहिहरवा जइव गे धनी नहिहरवा जइब हे
जेतना लागल अयह रुपइआ तेतना धइए देहि न
धइए जबओ हे पिया धराइए जबओ हे
जेहन अयलौं बाबा घरसँ तेहन बनाए देहु हे
बनाए देवौं गे धनी बनाए देवौं हे
हम अंगूर के शरबतवा पिलाए देवौं हे
हम मोतीचूर के लड्डुआ खिलाए देवौं हे
नहिए बनबइ हे पिया नहिए बनबइ हे
जेहन अयलौं बाबा घर सँ तेहन नहिय वनवौं हे

कालिमा फट गई। उजेला छा गया। कोयल कूकने लगी। ओ प्रीतम, अब पलंग छोड़ो और जाओ।

प्रिये, मैं तो जाऊँगा ही, पर पहले मुरेठा तो ला दो। मैं कलकत्ते जाऊँगा।

उसकी प्रियतमा कहती है—ओ प्रीतम, यदि तुम मेरी बातों से नाराज होकर कलकत्ते जाओगे तो जाओ। पर मैं भी अपने पिता को बुला कर नैहर चली जाऊँगी।

पति ने जवाब दिया—प्रिये, यदि तुम नैहर जाती हो तो जाओ। पर तुम्हारी शादी में मेरे जितने रुपये लगे हैं, सब रख दो।

पत्नी कहती है—मेरे प्रीतम, मैं तो वे रुपये रख जाऊँगी, अथवा रखवा दूँगी; पर मैं यहाँ जैसी अपने पिता के घर से आई, तुम भी ठीक वैसी ही बना दो।

पति जवाब देता है—प्रियतमे, मैं तुम्हें मोतीचूर की मिठाई खिला कर और अंगूर का शरबत पिला कर ठीक वैसी बना दूँगा। उसी प्रकार की बना दूँगा। पर तुम्हारी शादी में मेरे जितने रुपये लगे हैं, सब रख दो।

उसकी प्रियतमा कहती है—ओ प्रीतम, मैं वैसी कभी नहीं बनूँगी। कभी नहीं बनूँगी। मैं यहाँ जैसी अपने पिता के घर से आई फिर वैसी कभी नहीं बन सकूँगी।

(११)

एक ओरि बिके राम दही-चूरा चीनिया
त एक ओरि हे राम
बिके सोने क सिकरिया
त एक ओरि हे राम
अपना महलिया से निकलल सुन्दरिया
त करु सोनरा राम
करू सिकरी के मोलवा
त करु सोनरा राम
तोरा से न होतओ सुन्दरि
सिकरी के मोलवा
त भेज दिअउन हे सुन्दरि
अपन ससुर जी के
हमरो ससुर जी सोनरा
राजा के नोकरिया
त हुनि कि जनता हे सोनरा
सिकरी के मोलवा

तोरा से न होतओ सुन्दरि
सिकरी के मोलवा
त भेज दिअउन हे सुन्दरि
अपन देवरवा
हमरो देवरवा सोनरा
पढ़ल पंडितवा
त हुन कि जनता हे सोनरा
सिकरी के मोलवा
तोरा से न होतओ सुन्दरि
सिकरी के मोलवा
त भेज दिअउन हे सुन्दरि
अपन बलमु जी के
हमरो बलमु जी सोनरा
लरिका अबोधवा
त हुनि कि जनता हे सोनरा
सिकरी के मोलवा
करु सिकरी के मोलवा
त करु सोनरा राम
त रोअत हयत हे सोनरा
गोदि के बलकवा
काँचे तोर वयसवा सुन्दरि
काँचे तोर वलमुआ
त कहाँ पयलौं हे सुन्दरि
गोदि में बलकवा
हमरो ही बाबू भइया
बर निरबुधिया

त भुलि गेलन्हि हे सोनरा
लरिका के सुरतिया
त दइवे देलन्हि हे सोनरा
गोदि में बलकवा

एक ओर दही-चूरा और चीनी बिक रही है, और एक ओर सोने की सिकड़ी।

कोई सुन्दरी अपने महल से निकल कर सोने की दूकान पर जाती है—ओ सोनार, सिकड़ी की मोल-तोल करो।

हे सुन्दरि, तुझसे सिकड़ी की मोल-तोल नहीं होगी। तुम इस मामले में नादान हो। जाओ अपने श्वसुर को भेज दो।

रे सोनार, मेरे श्वसुर तो राजा के नौकर हैं। वह सिकड़ी की मोल-तोल क्या जानेंगे?

हे सुन्दरि, तुझसे सिकड़ी की मोल-तोल नहीं होगी। तुम इस मामले में गँवार हो। जाओ अपने देवर को भेज दो।

रे सोनार, मेरे देवर तो पंडित हैं। वह सिकड़ी की क़ीमत नहीं जानते।

हे सुन्दरि, तुझसे सिकड़ी की मोल-तोल नहीं होगी। तुम इस मामले में गँवार हो। जाओ अपने बालम को भेज दो।

रे सोनार, मेरे बालम तो निपट अबोध हैं। वह सिकड़ी की कीमत कैसे आँक सकेंगे?

रे सोनार, सिकड़ी की मोल-तोल झटपट खतम करो। मेरी गोद का नादान शिशु रोता होगा।

हे सुन्दरि, तुम्हारी वयस कच्ची है। तुम्हारे बालम की उम्र भी कच्ची है। फिर तुम्हारी गोद में बच्चा कहाँ से टपक पड़ा?

रे सोनार, मेरे बाबू और भाई बड़े निर्बुद्धि हैं। उनने दूल्हा के रूप पर लट्टू होकर बग़ैर उसकी उम्र का ख़याल किये ही—मेरा व्याह कर दिया। और यह बच्चा तो ईश्वर की विशेष कृपा का फल है।

(१२)

कहमा लगएलौं में जुही-चमेली
कहमा लगएलौं अनार हे
नारियर के गछिया
दुअरे लगएलौं में जुही-चमेली
अंगने लगएलौं अनार हे
नारियर के गछिया
कय फूल फूलै जुही-चमेली
कय फूल फूलै अनार हे
नारियर के गछिया
दस फूल फूलै जुही-चमेली
दुइ फूल फूलै अनार हे
नारियर के गछिया
केहि सखि सुंघलन जुही-चमेली
केहि सखि चिखलन्हि अनार हे
नारियर के गछिया
देवरा छहेला सुंघे जुही-चमेली
सँइया रंगीला अनार हे
नारियर के गछिया

हे सखी, तुमने कहाँ जूही-चमेली लगायी, कहाँ अनार और कहाँ नारियल लगाये ?

हे सखी, दरवाजे पर मैंने जूही-चमेली लगाई, और आँगन में अनार तथा नारियल लगाये।

हे सखी, जूही-चमेली में कितने फूल खिले ? और अनार तथा नारियल में कितने फल आये ?

हे सखी, जूही-चमेली में दश फूल खिले, और अनार तथा नारियल में दो फल आये।

हे सखी, किसने तुम्हारी जूही-चमेली की खुशबू ली, और किसने अनार तथा नारियल चखा?

हे सखी, मेरे मौजी देवर ने जुही-चमेली की खुशबू ली, और मेरे रंगीले साजन ने अनार तथा नारियल चखा।

(१३)

दुइ चारि सखि सब साँवरि गोरिया
कुसुम लोढ़ै न
चललि खेतवा के अरिया
कुसुम लोढ़ै न
मंगवा में ईंगुर शोभै
ताहि पर चोटिया
त पोरिया-पोरिया न
शोभै अंगुठी मुँदरिया
त पोरिया-पोरिया न
हाथ में लेल फूल क चंगेरिया
त रहिया चलइत न
मारै तिरछि नजरिया
त रहिया चलइत न
कुंजन करै झकझोरिया
रसिक संग न

दो-चार सखियाँ मिल कर जिनमें कोई साँवरी है, कोई गोरी—फूल के खेत में फूल लोढ़ने निकलीं।

उनके माथे पर ईंगुर-बिन्दी शोभा देती है। उसके ऊपर काली चोटी बल खा रही है। उनकी पतली नाजुक उँगलियों में अँगूठी शोभा देती है। उनके हाथ में फूल की डलिया है, और वे राह चलती हुई अपनी आँखों से तीर

बरसा रही हैं, और कुंजों के झुरमुट में अपने प्रेमियों के साथ अठखेलियाँ करती हैं।

(१४)

तेरा बेलों की जाति बहार
मलिनिया बाग में
केहि लगावै बेली-चमेली
केहि लगावै अनार—मलिनिया बाग में
देवरा लगावै बेली-चमेली
सँइया लगावै अनार
कइसन लागै बेली-चमेली
कइसन लागै अनार
महमह लागै बेली-चमेली
बड़ मीठ लागै अनार—मलिनिया बाग में

हे मालिन, तुम्हारी बाड़ी में बेलों की जाति के फूलों की बहार है।
हे मालिन, तुम्हारी बाड़ी में कौन बेली-चमेली लगाता है? कौन अनार?
मेरा देवर मेरी बाड़ी में बेली-चमेली लगाता है, और प्रियतम अनार।
बेली-चमेली कैसी होती है? अनार कैसा लगता है?
बेली-चमेली खुशबूदार होती है। अनार मीठा लगता है।
हे मालिन, तुम्हारी बाड़ी में बेलों की जाति के फूलों की बहार है।

(१५)

हमरो बलमु जी के लामि-लामि केशिया
घुँघुर शोभय न
माथे कालि रे जुलुफवा
घुंघुर शोभय न
हमरो बलमु जी के कालि-कालि अँखिया
गजब करय न

मारय तिरछी नजरिया
गजब करय न
हमरो बलमु जी के साँवरी सुरतिया
तिलक डारय न
लाले माथे रे चननिया
तिलक शोभय न

हमारे साजन के लम्बे घुँघराले बाल हैं जो उनकी कान्ति को चार चाँद लगाते हैं।

उनके माथे पर काले-काले अलकें हैं जो बड़े भले लगते हैं।

हमारे साजन की काली-काली आँखें हैं जो सितम ढाती हैं। उनकी घायल करनेवाली तिरछी आँखें सितम ढाती हैं।

हमारे चन्दन का लेप किये हुए साजन साँवले वर्ण के हैं। उनके माथे पर लाल चन्दन भला लगता है।

(१६)

कोन फूल फूलै आधी-आधी रतिया
कोन फूल फूलै भिनुसार मधुवन में
बेली फूल फूलै आधी-आधी रतिया
चम्पा फूल फूलै भिनुसार मधुवन में
घर पछुअरवा लोहरवा भइया हित बसु
लालि पलंग बिनि देहु मधुवन में
फुलवा में लोढ़ि-लोढ़ि सेजिया डसैलौं
राजा बेटा खेलइअ शिकार मधुवन में
हटि सुतु हटि बइसु सासुजी के बेटवा
घामे चोलिया हयत मलिन मधुवन में
होय दिअउ होय दिअउ सासुजी के बेटिया
धोबी घर देवइ धोआय मधुवन में

धोबिया के बेटा पिआ हे बरा रंगरसिया
चोलिया मसोरि रस लेत मधुवन में

आधी रात को मधुवन में कौन फूल खिलता है ? और प्रातःकाल कौन फूल खिलता है ?

आधी रात को मधुवन में बेली खिलती है। और प्रातःकाल चम्पा खिलता है।

हे मेरे घर के पिछवाड़े बसे हुए लोहार, तुम मेरा हितू हो। इस मधुवन में तुम मेरे लिए एक लाल पलंग बना दो।

जब पलंग बन कर तैयार हुआ तो फूल चुन-चुन कर मैंने उसे सजाया। राजा का बेटा—मेरा साजन मधुवन में शिकार खेलने आया है।

हे मेरे साजन, तुम मुझसे हट कर सोओ। हट कर बैठो। तुम्हारे शरीर के पसीने से मेरी चोली मैली हो गयी।

हे मेरी सास जी की बेटी, चोली मैली होने दो। इस मधुवन में धोबी रहता है। वह तुम्हारी चोली साफ़ कर देगा।

हे साजन, धोबी का बेटा बड़ा रंगीला है। वह इस मधुवन में मेरी चोली मसल कर रस चूस लेगा।

(१७)

नइहरा में सुनइत रहलि पिआ छइ लरिकवा
त दिनमा चारि न
पिया के नइहर में बोलयवौं
त दिनमा चारि न
बेचबइ मे गोल वरदा किनबइ धेनु गइया
त दुधवा पिलाय न
पिया के करवौं जबनमा
त दुधवा पिलाय न
पोसिय पालि पिया के कयलौं जबनमा
त भोग क दिनमा न

पिया भागल जाय परदेशवा
त भोग क दिनमा न
बारह बरिस पर पिया मोरा अयलन्हि
लव जमुनिया पेड़ तर न
पिया धुनिया रमओलन्हि
लव जमुनिया पेड़ तर न

नैहर में सुनती हूँ कि मेरे प्रियतम नादान हैं। उनकी उम्र बहुत कच्ची है।

इच्छा होती है कि उन्हें दो-चार दिनों के भीतर बुला लूँ।

उन्हें दूध पिलाने के लिए लाल बैल बेच कर एक गाय खरीदूँगी, और दूध पिला कर उन्हें जवान बनाऊँगी।

जब मैंने उन्हें दूध पिला कर जवान बनाया, तब वह ऐन मौके पर प्रवासी हो गये।

बारह वर्षों के बाद वह लौटे और नये जामुन के गाछ के नीचे उनने धूनी रमायी।

(१८)

जेवना जेमइहौं बलमु
हम गोदयवौं गोदना
गोरि-गोरि बँहिया सबुज रंग चुड़िया
प्यारे झलकय मोर कलइया
गोदयवौं गोदना
पनिया पिअइहौं बलमु गोदयवौं गोदना

हे साजन, मुझे गोदना गुदा दो। मैं तुम्हें मीठे पकवान खिलाऊँगी।

हे प्रियतम, मेरी गोरी-गोरी बाँह है। उस पर सब्ज रंग की चूड़ी एक अजीब रंग ला रही है।

हे साजन, मुझे गोदना गुदा दो। मैं तुम्हें जल पिलाऊँगी।

(१९)

जल्दी से लोटिहो राजा जारा के रात लाल
पछिमहि जइहो राजा पूव मति जइहो लाल
हमरा ला सारी लइह बंगलापारी लाल लाल
चोलिया जे लइह राजा लखनउ सिलाई लाल
बंगला कोर सारी पेन्हि जयवइ बजरिया लाल
तोहरो ला लएवइ राजा बंगला खिल्ली पान लाल
लखनउ के चोलिया पेन्हि जयवइ बजरिया लाल
तोहरो ला लएवउ स्वामी छोटि-छोटि नेमुआ लाल

हे साजन, जल्द वापिस आना। जाड़ा की रात आने ही वाली है।

हे राजा, पछिम जाना। पूरब मत जाना। मेरे लिए उपहार में बंगला पार की लाल साड़ी लाना।

और हे राजा, मेरे लिए लखनऊ की सिली हुई चोली लाना।

बंगला किनारी की साड़ी पहन कर मैं बाजार जाऊँगी, और तुम्हारे लिए बंगला खिल्ली पान लाऊँगी।

लखनऊ की सिली हुई चोली पहन कर मैं बाजार जाऊंगी। और हे राजा, तुम्हारे लिए उपहार में छोटे-छोटे बिजौरा नीबू लाऊँगी।

(२०)

चलु गोरिया चलु गोरिया गंगा असननमा हे
वाट के बटखरचा लिहो ठेकुआ पकवनमा हे
आरो लिहो आहे गोरिया सतुआ पिसनमा हे
वरका भइया तानि देलन्हि अपनी चदरिया हे
चादरि के खूँट पकरी गेलि असननमा हे
कोई सखी पेन्हय रामा चीर अभरनमा हे
कोई सखी साटे रामा टिकुली सेनुरवा हे
दलसिहसराय में जाक सतुआ पिसनमा हे
चलु गोरिया चलु गोरिया गंगा असननमा हे

गंगा-किनार जाऽक कएलिअइ असननमा हे
गंगा मइया देलन्हि रामा गोदी में वलकवा हे
खेलइते-धुपइते रामा अनलओ वलकवा हे
हुनको चढ़एबइन रामा फुलवा के मलवा हे

चल री गोरी, चल हम गंगा नहा आयें। बाट-खर्च के लिए ठेकुवे और पकवान ले लें, और थोड़ा सत्तू भी बाँध लें।

हे सखी, मेरे बड़े भाई ने अपनी चादर तान कर पर्दा कर दिया। चादर का खूँट पकड़ कर मैं स्नान करने गई। ओ राम, कोई सखी चीर पहनती हैं; कोई आभरण। कोई मांग में टिकली साटती है, और कोई सिर में इंगुर-बिन्दी लगाती है।

दलसिंहसराय जाकर सत्तू खाऊँगी।

चल री गोरी, चल हम गंगा नहा आयें।

गंगा-किनारे जाकर स्नान किया। माँ गंगा ने पुरस्कार में एक बच्चा दिया। हँसते-खेलते बालक को गोद में लेकर घर आई।

हे सखी, माँ गंगा को फूल का हार पूजा के रूप में भेंट करूँगी।

(२१)

सासु के अँगना में पनमा के पेरवा
खेलब हरि झूमरी
पान अइसन पातर मैना ननदो के
रहि गेल गरब खेलब हरि झूमरी
मचिया बइसल अहाँ सासु हे बरइतिन
मैना ननदो के धय देहु नेआर
अइया खइअउ भइया खइअउ
छोटकि पतोहुआ खेलब हरि झूमरी
मोरा मैना लरिका कुँवार
दुअरा बइसल तुहुँ ससुर बरइता
मैना ननदो के रहि गेल गरब हे

खेलब हरि झूमरी
जब बरिअतिया अएलइ गोंयरवा
मैना ननदो के उठल वेदन
हे खेलब हरि झूमरी
जब बरिअतिया दुअरिया पर अएलइ
हँसइन कहरिया हँसइन बजनिया
चार गोर कोना ले जाउ
चुपे रहु बजनिया चुपे रहु कहरिया
चार गोर भले विधि जयतइ
हे खेलब हरि झूमरी
कनइन मइया हे कनइन बहिनिया
कहमा से लयले बेटा होरिला
चुपे रहु मइया हे चुपे रहु बहिनि
एक रात गेलि ससुररिया

सास के आँगन में पान का पेड़ है।

पान की तरह पतली मैना ननद के पैर भारी हो गये।

हे मचिया पर बैठी हुई सास, मैना ननद के ससुराल जाने की तिथि नियत कर दो। उसके पैर भारी हो गये।

हे मेरी छोटी पतोहू, मैं तुम्हारे भाई को खाऊँ, बाप को खाऊँ। मेरी बेटी मैना अभी कुँआरी है। जाने कैसे उसके पैर भारी हो गये?

मैना की भावज ने अपने श्वसुर से चुंगली खाई—

हे दरवाजे पर बैठे हुए मेरे ससुर, मैना ननद के पैर भारी हो गए।

जब बरात गाँव के हल्के में आई तब मैना ननद प्रसव-पीड़ा से कराहने लगी।

जब बरात दरवाजे पर आई तब बजनिये हँसने लगे। कहरिये खिल्ली उड़ाने लगे—

दो पैर से चार पैर हो गये। ओ राम, चार पैर को डोली में बिठा कर हम कैसे चलेंगे?

हे बजनिये, चुप रहो। हे कहरिये, चुप रहो। चार पैर डोली में बैठ कर बड़ी सरल रीति से जायेंगे।

माँ रो रही है। बहन आँसू बहा रही है। हे बेटा, तुम्हारी बहू के पेट में यह बच्चा कहाँ से कूद पड़ा?

हे माँ, चुप रहो। हे बहन, आँसू मत बहाओ। विवाह की बात पक्की हो जाने पर मैं एक दिन ससुराल गया था, और तभी मेरी बहू के पैर भारी हो गये थे।

(२२)

कओन रंग मूँगिया कओन रंग मोतिया
कओन रंगे
सिया दुलहिन के दूल्हा कओन रंगे
लाल रंग मूँगिया सबूज रंग मोतिया
सबूज रंगे न
सिया दुलहिन के दूल्हा साँवरे रँगे
टूटि जयतइ मूँगिया फूटिए जयतइ मोतिया
बिछुड़ि जयतइ
सिया दुलहिन के दूल्हा बिछुड़ि जयतइ
बिछि लेवइ मूँगिया बटोरि लेवइ मोतिया
मनाए लेवइ
सिया दुलहिन के दूल्हा मनाए लेवइ
कहाँ शोभे मूँगिया कहाँ शोभे मोतिया
कहाँ शोभे
सिया दुलहिन के दूल्हा कहाँ शोभे
गले शोभे मूँगिया मुकुट शोभे मोतिया

पलंग शोभे
सिया दुलहिन के दूल्हा पलंग शोभे

हे सखी, किस रंग का मूँमा है? किस रंग का मोती? और दुलहिन सीता का दूल्हा किस रंग का है?

हे सखी, लाल रंग का मूँगा है। सब्ज रंग का मोती। और दुलहिन सीता का दूल्हा साँवले रंग का है।

हे सखी, मूँगा टूट जायेंगे, मोती फूट जायेंगे, और सीता दुलहिन का दूल्हा बिछुड़ जायेंगे।

हे सखी, मूँगा बीन लूँगी, मोती बटोर लूँगी और सीता दुलहिन के दूल्हे को मना लूँगी।

हे सखी, कहाँ मूँगा शोभित होता है? कहाँ मोती? और दुलहिन सीता का दूल्हा कहाँ शोभा पाता है?

हे सखी, गले में मूँगा शोभित होता है। मुकुट में मोती। और दुलहिन सीता का दूल्हा पलंग पर शोभा पाता है।

(२३)

बारह बरिस के हमरो उमिरवा
बबा कएलन हे
भइया कएलन हे
सखि मोरा गवनमा भइया कएल्न हे
केहि जएतइ हाजीपुर केहि जयतइ पटना
से केहि जयतइ हे
शहरवाले रमुनवा
से केहि जएतइ हे
बबा जयता हाजीपुर भइया जयता पटना
से सइयाँ जयता हे
शहरवाले रमुनमा
से सइयाँ जयता हे

केहि जयता गरिया से केहि जयता जोरिया
से केहि जयता हे
फिटिन फाटन सवारी
से केहि जयता हे

बबा जयता गरिया से भइया जयता जोरिया
से सइयें जयता हे
फिटिन फाटन सवारी
से सइयें जयता हे

केहि लयता बाजुबन्द केहि लयता चुरिया
से केहि लयता हे
रंग बेंदुल टिकुलिया
से केहि लयता हे
नव जाली फुदेनमा
से केहि लयता हे

बबा लयता बाजुबन्द भइया लयता चुरिया
से सइयाँ लयता हे
रंग बेंदुल टिकुलिया
से सइयाँ लयता हे
नव जाली फुदेनमा
से सइयाँ लयता हे

कहाँ शोभे बाजुबन्द कहाँ शोभे चुरिया
से कहाँ शोभे हे
रंग बेंदुल टिकुलिया
से कहाँ शोभे हे
नव जाली फुदेनमा
से कहाँ शोभे हे

बाँह् शोभे बाजुबन्द पहुँचि शोभे चुरिया
लिलार शोभे हे
रंग बेंदुल टिकुलिया
लिलार शोभे हे
नव जाली फुदेनमा
त बाले शोभे हे

बारह् वर्ष की मेरी उम्र है। हे सखी, इतनी थोड़ी उम्र में ही मेरे बाबा और भाई ने मेरा द्विरागमन कर दिया।

कौन हाजीपुर जायगा? कौन पटना? और कौन रंगून जायगा?

बाबा हाजीपुर जायेंगे। भाई पटना, और मेरे बालम रंगून जायेंगे।

कौन बैलगाड़ी से जायेंगे? कौन जोड़ी से? और कौन फिटन से जायेंगे?

बाबा बैलगाड़ी से जायेंगे। भाई जोड़ी से, और मेरे बालम फिटन से जायेंगे।

कौन बाजूबन्द लायेंगे? कौन चूड़ी? और कौन बिंदुली, रंग-रंग की टिकली तथा जालीदार फुँदने लायेंगे?

बाबा बाजूबन्द लायेंगे। भाई चूड़ी, और मेरे बालम बिंदुली, रंग-रंग की टिकली तथा जालीदार फुँदने लायेंगे।

कहाँ बाजूबन्द शोभित होता है? कहाँ चूड़ी? और कहाँ बिंदुली, रंग-रंग की टिकली तथा जालीदार फुँदने शोभा पाते हैं?

बाँह् में बाजूबन्द शोभा पाता है। कलाई में चूड़ी, सिर में बिंदुली, रंग-रंग की टिकली और चोटी में जालीदार फुँदने शोभित होते हैं।

(२४)

उत्तर दक्खिन सँ अयलइ नटिनिया गे जान
जान बइसि गेलइ चनना बिरिछिया गे जान
झिहिरि झिहिरि बहय शीतल बतसिया गे जान
जान घर सँ बहार भेली सुंदरी पतोहुआ गे जान

निहुरि-निहुरि झारे लामी केशिया गे जान
जान पड़ि गेल नटिनि मुख दिठिया गे जान
मंचिया बइसल सासु बरइतिन गे जान
जान दिअ सास कोसल कउरिया गे जान
हर-फार जोति अयला प्रभु बइसल गे जान
जान बइसि गेल देहरि झमाय गे जान
सबके तिरिअवा अमा अंगना गे जान
जान हमर तिरिया कतय चलि गेली गे जान
तोहर तिरिया गोदना बिरोगल गे जान
जान चलि गेल नटवा सिरिकिया गे जान
पीसु अम्मा झिलमिल सतुआ गे जान
जान हम जायब धनिक उदेशवा गे जान
एक कोस गेलों दोसर कोस गे जान
जान तेसरे में नटवा सिरिकिया गे जान
कतय गेली किय भेली नटिनि गे जान
जान सुंदरी जोगे गोदना गोदह गे जान
गोदना गोदउनि भइया किय देव गे जान
जान गोदना गोदउनि छोटि सरहज गे जान

उत्तर-दक्खिन से एक नटिन आई, और चंदन के गाछ के नीचे बैठ गई। झिहिर-झिहिर हवा बहने लगी। इतने में घर से निकल कर एक सुंदरी बाहर आयी, और निहुर कर अपने लम्बे केश झाड़ने लगी। सहसा उसकी नजर नटिनी पर पड़ी।

हे मचिया पर बैठी हुई मनस्विनी सास, गोदना गुदाने के लिए कुछ पैसे दो।

सास ने कहा—हे सुंदरी, मैं तुम्हारे भाई और बाप को खाऊँ। खजाने मैंने कहाँ पाये ?

हल जोत कर सुंदरी का थका हुआ पति घर आया और देहली पर झमा कर बैठ गया।

हे माँ, सब की बहू आँगन में है। मेरी बहू कहाँ चली गयी? माँ ने कहा—हे बेटा, तुम्हारी बहू गोदना गुदाने नट की सिरकी में गयी है। बेटे ने कहा—हे माँ, बारीक सत्तू पीस कर दो। मैं अपनी बहू की खोज में परदेश जाऊँगा।

वह एक कोस गया। दो कोस गया, और तीसरे कोस में नट की सिरकी में जा पहुँचा। हे नटिन, कहाँ गयी? क्या हुई? मेरी बहू के पसंद लायक गोदना गोद दो।

नटिन ने कहा—हे भाई, तुम गोदना गुद देने के पुरस्कार में क्या दोगे?

सुंदरी के पति ने कहा—री नटिन, मैं पुरस्कार में तुम्हें अपनी छोटी सलहज दे दूंगा।

तिरहुति

'झूमर' और 'सोहर' को यदि हम ग्राम-साहित्य-निर्झरिणी का मधुर कलकल नाद कहें, तो मिथिला के 'तिरहुति' नामक गीत को फागुन का अभिसार कहना पड़ेगा। स्वाभाविकता, सरलता, प्रेमपरता का सामञ्जस्य और उच्च भावों का स्पष्टीकरण—ये 'तिरहुति' की विशेषताएँ हैं। जो साधारणतः नहीं दीख पड़ता, अदर्शनीय और अन्य के अनुमान में भी आने वाला नहीं है उसीको व्यक्त करना 'तिरहुति' के कुशल कलाकारों का काम है। इसकी नव विकसित सलज्ज-कातर यौवन-शोभा के आगे सारंगी के संगीत और छलकती हुई शीराज़ी सुवर्ण-मदिरा के मादक उफान भी फीके पड़ जाते हैं। इसकी रचना-पद्धति मुक्तक काव्य की तरह भावों की उन्मुक्त पृष्ठभूमि पर मर्यादित है। जिस तरह महाकवि सूर ने अपने वेदना-व्यञ्जक गीतों में विरहाकुल ब्रजांगनाओं की मानसिक परिस्थिति का अंकन कर अपनी सफल कला का परिचय दिया है, उसी तरह 'तिरहुति' के सफल कला-कोविदों ने भावों की सीम-वदन-रजतवदना नाजनियों के मानसिक चढ़ाव-उतराव का चित्रण कर ब्रह्माण्ड में प्रतिक्षण गूँजनेवाले प्राकृतिक विचारों को ही व्यक्त किया है। इसमें विश्व-पिण्डों से सृजित तुच्छ तिनके भी इस तरह नैसर्गिक मनोभावों की रचना करते हैं कि वे कैमरे के लेन्स-द्वारा भी व्यक्त नहीं हो सकते।

मृगनाभि में अन्तर्हित कस्तूरी के सुगन्ध की तरह सुवासित इस मनोरम गीत-शैली के कुछ नमूने देखिये—

(१)

मोहि तेजि पिय मोर गेलाह विदेश
कवन विधि बितत सखि वारि वयस

नयन सरोवर काजर नीर
ढरकि खसल सखि धनिक शरीर
सेज भेल परिमल फूल लेल बास
कओन देश पिय मोर पड़ल उपास

मेरे सजन मेरा परित्याग कर प्रवासी हो गये। हे सखी, मेरी यह जवानी कैसे कटेगी ?

हाय ! मेरे ये नयन सरोवर हो गये हैं, और काजल जल (आँसू) बन गया है।

हे सखी, ये आँसू (काजल) प्रियतम के विरह में (मेरे नयन-सरोवर से) ढर-ढर गिर रहे हैं। (यहाँ तक कि) मेरी सेज खुशबू बन कर उड़ गई है, और फूलों में जा रमी है।

हाय ! मेरे प्रियतम किस देश में भूखे रम रहे हैं ?

गीत का उपर्युक्त स्वरूप ग्रामीण है। यही गीत 'विद्यापति' के नाम से किञ्चित परिवर्त्तन के साथ निम्न-रूप में प्रचलित है—

मोहि तेजि पिय गेलाह विदेश
कोने परि खेपव वारि वयस
नैन सरोवर काज़र नीर
ढरकि खसल पहुँ धनिक शरीर
सेज भेल परिमल फूल लेल वासे
कोन देश पिय पड़ल उपासे
भनहिं 'विद्यापति' सुनु व्रजनारि
धइरज धय रहु मिलत मुरारि

(२)

प्रथम एकादश दय पहुँ गेल
से हो रे बितल कतेक दिन भेल

ऋतु अवसान वयस मोर गेल
तै ओ नहि पहुँ मोर दरशन देल
चाँद किरन तन सहलो ने जाय
चानन शीतल मोहि ने सोहाय
आब ने धरम सखि वाँचत मोर
दिन-दिन मदन विषम सर जोर

महीने की प्रथम एकादशी तिथि को आने का वायदा कर मेरे प्रियतम परदेश चले गए; लेकिन वह निर्धारित तिथि गुज़र गई और उसे कितने दिन बीत गये! (वसन्त) ऋतु का अन्त हो गया, और मेरी युवावस्था भी बीत गई। हाय! तो भी मेरे प्रियतम ने दर्शन नहीं दिये।

मेरे इस (नाजुक) शरीर से अब चन्द्रमा की शीतल किरणें बर्दाश्त नहीं होती और चन्दन की शीतलता भी नहीं भाती।

हे सखि, (सच कहती हूँ) अब मेरा धर्म नहीं बचेगा, (क्योंकि) कामदेव प्रतिक्षण अपने तीखे तीरों से मुझे जख्मी कर रहा है।

उपर्युक्त गीत-शैलियों से स्पष्ट है कि 'तिरहुति' छै-छै और आठ-आठ पंक्तियों का तुकान्तक गीत है, जिसमें दो-दो पंक्तियों के एक-एक चरण हैं और प्रत्येक चरण की पहली तथा दूसरी पंक्तियों की अन्तिम तुक एक-सी है। लेकिन समय की रफ़्तार के साथ-साथ इन पुरानी गीत-शैलियों की रूप-रेखा में भी युगान्तरकारी परिवर्त्तन हुआ। पहले जहाँ दो-दो पंक्तियों के एक-एक चरण होते थे, वहाँ धीरे-धीरे चार-चार पंक्तियों के एक-एक चरण गीतिबद्ध होने लगे, और प्रत्येक चरण की पहली तथा दूसरी पंक्तियों की तुक मिलाई जाने के अतिरिक्त दूसरी और चौथी पंक्तियों की तुक भी मिलाई जाने लगी। इतना ही नहीं, 'तिरहुति' के चरणों के विकसित होने के साथ-साथ इसके आकार-प्रकार और डील-डौल का दायरा भी विस्तृत हुआ। निम्नलिखित गीत 'तिरहुति' की इस परिवर्त्तित और परिवर्द्धित शैली का एक सुरुचिपूर्ण नमूना है—

(३)

तिरहुति दंडक छंद

पहिनि चुंदरि चारु चन्दन
चकित चहुँ दिशि नयन खञ्जन
देखल द्वार कपाट लागल
हरि न जागल रे
कत कला कय कत जगाओल
कतहुँ किछु नहि शब्द पाओल
एहन कुपुरुष नींद मातल
जनि रसातल रे
मध्य एकसरि गेलि यामिनि
पलटि आयलि निरसि कामिनि
एहनि अवसरि जे न जागलि
थिक अभागल रे
भनथि कवि 'हरिनाथ' मन दय
मारति हाथ पछताति रहय-रहय
पाछा किदौं नींद टूटत
पलक छूटत रे

एक नायिका चुंदरी पहन कर और शीतल चन्दन का लेप कर अपने खञ्जन सदृश नेत्रों को चारों ओर नचाती हुई (अपने प्रियतम के शयन-मन्दिर में) चली। उसने देखा कि उसके प्रियतम सोये हैं और शयन मन्दिर का प्रवेश-द्वार बन्द है।

उसने अनेक तदबीरें कीं और अपने प्रियतम को जगाने का प्रयत्न किया। लेकिन उसे अपने प्रियतम के जागने की आहट तक न मिली। कवि कहता है कि उस नायिका का बदकिस्मत प्रियतम नींद के नशे में इस प्रकार ग़र्क़ है कि जैसे वह भूलोक में नहीं, रसातल में हो।

अर्द्ध रात्रि बीत गई। नायिका निराश होकर लौट गई। हाय! इस अवसर पर जो नहीं जगा, वह अभागा ही है।

कवि 'हरिनाथ' कहते हैं कि जब हाथ से अवसर निकल जाने पर आँखें खुलेंगी ही, तो फिर हाथ मल-मल कर पछताने के सिवा और क्या होगा ?

धीरे-धीरे 'तिरहुति' का भावुक-हृदय वसन्तकालीन गुलाब की भाँति और भी प्रस्फुटित हुआ। लाक्षणिकता के गुरुतम बन्धन शिथिल पड़ गए। हृदय की आकुल वेदना मधुर गीत बन कर उमड़ आई, कवि की भाव-व्यञ्जना को नवोन्मेषिनी बुद्धि मिली और अस्पष्टता के अवगुण्ठन में छुपा हुआ अन्तहीन शाश्वत सौन्दर्य्य शरच्चन्द्र की भाँति खिल उठा। उदाहरण-स्वरूप 'तिरहुति' की इस नव विकसित शैली के कुछ नमूने देखिए—

(४)

कमल नयन मनमोहन रे
कहि गेलाह अनेके
कतेक दिवस हम खेपब रे
हुनि बचनक टेके
जहँ-जहँ हरिक सिंहासन रे
आसन तेहि ठामे
तहाँ कते व्रजनागरि रे
लय-लय हरिनामे
आँगन मोर लेखे विजुवन रे
भेल दिवस अन्हारे
सेज लोटय कारि नागिन रे
कोना सहु दुख-भारे
मलिन बसन तन भूषण रे
शिर फूजल केशे
नागरि पुछथि पथिक सँ रे
कहु हरिक उदेशे

के पाती लै जायत रे
जहाँ बसे नन्दलाले
लोचन हमर विकल भेल रे
छाती देल शाले
'साहेबराम' रमाओल रे
सपना संसारे
फेरि नहि एहि जग जनमब रे
मानुष अवतारे

कमलनयन मनमोहन अनेक प्रकार की सान्त्वना दे कर चले गए।

उनके वचन पर निर्भर रह कर मैं अब और कितने दिन उनके पथ पर आँखें बिछाऊँ। जहाँ-जहाँ हरि का सिंहासन है, वहाँ-वहाँ मेरा आसन भी है। और वहाँ ही अनेक व्रजांगनाएँ हरि का नाम ले-लेकर वास करती हैं।

मेरे लिए मेरा आँगन निर्जन वन है, और श्रीकृष्ण की अनुपस्थिति में मेरे लिए दिन का प्रकाश भी अन्धकार-सा प्रतीत होता है।

उनके विरह में मेरे बिखरे हुए कुन्तल-कलाप काली नागिन की तरह बल खा रहे हैं।

हाय! मैं इस दुख का भार किस प्रकार वहन करूँ? मेरे शरीर के वसन और भूषण मलिन हो चले और मेरे शिर के बाल भी अस्त-व्यस्त हो गए।

उस ओर से आये हुए पथिकों से सुन्दरी जिज्ञासा करती है कि कहो मेरे प्राणाधार श्रीकृष्ण कैसे हैं?

हाय! जहाँ नन्द-नन्दन रहते हैं, वहाँ उनके पास मेरा सन्देश कौन ले जाय? उन्हें देखने के लिए मेरी आँखें तरस रही हैं, और उनकी याद कलेजे में शूल पैदा करती है।

'साहेबराम' कवि कहते हैं कि यह संसार स्वप्नमय है। इस संसार में नरतन धारण कर फिर नहीं जन्म लूँगा।

(५)

सून भवन हरि गेलाह विदेशे
कापर खेपब वारि बयेसे
सर भेल चंचल फूल भेल भार
नित दिन मन एतय रहय उदास
कहि गेला हरि आएब फेर
घुरि नहिं तकलन्हि एकहुँ बेर
हुनकहु वचनक नहिं विसवास
हमरहु जानि सखि कैल निरास
'वासुदेव' भन भनिता लगाय
हरि हरि कहिक दिवस गमाय

वियोगिनी नायिका कहती है—हाय! मेरा घर सूना है। मेरे सजन परदेश चले गये। मैं जवानी के ये दिन कैसे काटूँ?

मेरे सिर की वेणी चंचल हो रही है। फूल भार प्रतीत होता है, और मेरा यह मन सदा उदास रहता है।

मेरे सजन ने वायदा किया था कि मैं परदेश से पुनः वापिस आ जाऊँगा; लेकिन आज तक उन्होंने मुड़ कर देखा भी नहीं।

हे सखी, अब उनके (झूठे) वचन का कौन विश्वास करे? शायद अबला जान कर उन्होंने मुझे भुला दिया। 'वासुदेव' कवि कहते हैं—हे नायिके, धीरज धरो और 'हरि-हरि' स्मरण करके दिन बिताओ।

(६)

चललि शयन-गृहि सुन्दरि रे
आनन्द-उर वृन्दा
शिर सँ ससरल घोंघट रे
जनि ऊगल चन्दा
चलइत नूपुर किंकिनि रे
पिक कल अलसाने

दुर सँ हंस शब्द करु रे
घर पिय जिव शाने
डरहु ने जानि चकवा-शिशु रे
उर कुच युग छाजे
पवन परस उर-आँचर रे
जनि झपटल बाजे
नाभि विवर सँ निकसलि रे
रोमावलि साँपे
से सौतिनि बध कारन रे
आँचर रहु झाँपे

कोई (वृन्दा) नाम की सुन्दरी आनन्द-विह्वल हो अपने प्रियतम के शयन-मन्दिर में चली। उसके शिर का घूँघट खिसक गया और (बादलों से मुक्त) चन्द्रमा की तरह उसका मुख खिल उठा।

उसके चलने से नूपुर और किंकिणी के जो मधुर शब्द निकल रहे थे, वे (दूर से) ऐसे लगते थे, मानो हंस बोल रहे हों।

उसकी मधुरता ने शयन-मन्दिर में सोये हुए उसके प्रियतम को मंत्र-मुग्ध कर दिया, और कोयल की काकली भी बन्द हो गई।

कवि कहता है—अरे भाई, उस नायिका के हृदय-प्रदेश पर जो युगल उरोज सुशोभित हैं, उन्हें कहीं तुम भ्रम से चकवा-शिशु न समझ लेना। पवन उद्विग्न हो कर नायिका के आँचल को स्पर्श कर रहा है, मानो बाज नायिका के (चकवा-शिशु रूपी) उरोज पर आक्रमण कर रहा हो। और नायिका के नाभि-विवर से जो रोमावलि फूट निकली है, वह काली नागिन है, जो नायिका की सौतिन को डस लेने का कारण है। कवि कहता है—हे नायिके, तुम अपने नाभि-विवर को आँचल से ढके रहो (जिससे रोमावलि-रूपी नागिन किसी को डँसने न पाये)।

(७)

आयल कारी-कारी रे घन गरिजय बादल
थर-थर काँपय-काँपय रे सखि उर अब हारी
बिसरल-बिसरल सुधि सब रे मोहि तेजल मुरारी
लहरल-लहरल मोहि अब रे विरहा अगियारी
पहुँ मोर सखि कित छाजय रे मोहि करि के भिखारी
बाँचत-बाँचत प्राण नहिं रे दुख भेल अब भारी

आसमान में काली-काली मेघावलियाँ उमड़ आईं, और बादल गरजने लगे। हे सखी, मेरा कलेजा थर-थर काँप रहा है, और मैं जीवन से निराश हो रही हूँ। हाय! मेरे निर्दय प्रियतम ने मेरा परित्याग कर दिया, और मेरी सुधि बिसरा दी।

मेरे शरीर में विरह की आग ज़ोरों में धधक रही है। हाय! मेरे प्रियतम मुझे निस्सहायावस्था में छोड़ कर किस देश में छा रहे हैं? हे सखी, यह दुख मेरे लिए असह्य है। हाय! अब मेरे प्राण नहीं रहेंगे।

(८)

पिया अति बालक मैं तरुणी
कोन तप चुकलहुँ भेलहुँ जनी
पिय लेल गोदी कय चललि बजार
हटिआक लोग पुछय के ई तोहार
देओर ने मोरा ने छोट भाय
पूर्व लिखल छल स्वामी हमार
कि बाट रे बटोहिया तोहि मोर भाय
हमरो समाध भइया दिह पहुँचाय
कहिहह बबा के किनय धेनु गाय
दुधवा पिआय पोसता लड़िका जमाय

मेरे प्रियतम बालक हैं, और मैं तरुणी हूँ। हाय! मैंने पूर्व में कौन ऐसा पाप किया, जिससे मुझे जवानी का यह अभिशाप मिला। एक दिन मैं अपने प्रियतम को गोद में ले कर बाज़ार गई। नादान बालक को गोद में देख कर बाज़ार के लोगों ने पूछा कि 'यह तुम्हारा कौन है?' मैंने कहा—'यह न मेरे देवर हैं, और न छोटा भाई। यह मेरे पूर्व जन्म के स्वामी हैं।'

हे राह चलते हुए पथिक, तुम मेरे भाई हो। मेरा एक सन्देश लिये जाओ। तुम मेरे पिता से कहना कि वह एक दुधारू गाय खरीदें। और अपने नादान दामाद को पाल-पोसकर जवान बना दें।

(६)

सादर शयन कदम-तरि हो पंथ हेरथि राधा
कखन देखब हरि नयन-भरि हो मेटत सब बाधा
चानन वन भेल झाँझरि हो झाँझरि भेल नारी
एक हम झाँझरि हरि बिनु हो पीतम भेल त्यागी
सासु ननद घर ससुर ही हो भैंसुर एहि ठामे
एक त गेल मनमोहन हो उसरन भेल ठामे
सुनितउँ हुनक गमनमहिं हो करितउँ परिचारे
यादब हमरो दय गेल हो भादब सन राते
'नन्दलाल' कवि गाओल हो धीरज धरू नारी
आइ आवत हरि गोकुल हो कुब्जा गढ़ त्यागी

कदम्ब की छाँह में कोमल शय्या पर राधा श्रीकृष्ण की प्रतीक्षा कर रही हैं। हाय! मैं कब आँखें भर कर प्रिय श्रीकृष्ण को देखूँगी, और मेरे सारे दुःख दूर हो जायेंगे।

चन्दन का वन सूख गया, और स्त्रियाँ भी ग़मगीन हो गईं। एक मैं भी हूँ जो श्रीकृष्ण के बिना सूख गई हूँ, और मेरे प्रियतम विरागी हो गये हैं।

घर में सास, ससुर, ननद और भैंसुर सब मौजूद हैं। पर एक श्रीकृष्ण के अभाव में यह घर उदास मालूम होता है। यदि मैं उनकी यात्रा की बात

सुनती, तो उनकी टोह भी लेती। हाय! श्रीकृष्ण की अनुपस्थिति में मेरे सम्मुख भादों की-सी काली रात छायी है।

'नन्दलाल' कवि कहते हैं—हे नायिके, तुम धीरज धरो। कुब्जी का साथ छोड़ कर आज श्रीकृष्ण गोकुल अवश्य आयेंगे।

(१०)

कमलनयन मनमोहन हो बसु यमुना के तीरे
वंशी बजा मन हरलक हो चित रहै न धीरै
खन मोहन वृन्दावन हो खन वंशी वजावै
खन-खन रहै अहिर-संग हो खन मुरली लय धावै
जौं हम जनितौं एहन-सन हो तजि जयता गोपाले
अपन भवन बरू तजितहुँ हो सेवितहुँ नन्दलाले

कमलनयन मनमोहन यमुना के तट पर बसे हुए हैं। उन्होंने वंशी बजा कर मेरा मन मोह लिया है, और मैं अधीर हो रही हूँ।

कभी तो मोहन वृन्दावन में विहार करते हैं, कभी वंशी बजाते हैं, कभी गोपों के साथ बाल-क्रीड़ा करते हैं, और कभी वंशी ले कर दौड़ पड़ते हैं।

यदि मैं जानती कि वे ऐसे हैं और वे मेरा परित्याग कर देंगे तो मैं भले ही अपना घर छोड़ देती, किन्तु नन्द-नन्दन की सेवा अवश्य करती।

(११)

जखन चलल हरि मधुपुर हो सब सुरति बिसारी
कोना रहब गोकुल बिच हो बिन पुरुषक नारी
वन ज्यों डोलै बत सन हो जल बिच डोलै सेमार
हम धनि डोलौं मोहन विनु हो जेहन पुरइनि पात
शून्य भवन लगै मन्दिर हो पलंगो ने सोहाय
केहन करम बिधि लिखलन्हि हो झाँके व्रजनार

जब प्यारे श्रीकृष्ण सब का विस्मरण कर मधुपुर चले गये तो हम बिना पुरुष की स्त्रियाँ गोकुल के बीच कैसे रहेंगी?

जिस तरह वायु के झोंकों से वन काँपता है, और जल के बीच सेवार काँपता है, उसी तरह मोहन के बिना हम स्त्रियाँ कमल के पत्ते के समान प्रकम्पित हो रही हैं। आज मोहन के बिना हमारा घर-आँगन सूना लगता है, और पलंग भी आनन्दमय नहीं मालूम होता।

व्रज की नारियाँ विलाप कर रही हैं—हाय ! विधाता ने हम लोगों का भाग्य कैसा खोटा बनाया ?

(१२)

सादर शयन कदम तरि हो पथ हेरउँ मुरारी
हरि बिनु झाँझरि भेलहुँ हो सामर भेल भारी
फूजल केश के बान्हत हो के देत सम्हारी
नयन हीं काजर दहायल हो जीवन भेल भारी
जाहू ऊधो मधुपुर हो हुनकहि परचारी
चंन्द्रकला नहिं जीवत हो बध लागत भारी

कदम्ब के नीचे कोमल शय्या पर आसीन हो श्रीकृष्ण का इन्तजार कर रही हूँ। हरि के बिना मैं खिन्न हो चली हूँ, और मेरा यौवन भार-सा प्रतीत होता है।

हाय ! मेरे बिखरे हुए केश कौन सँवारेगा ? मेरी आँखों का काजल भी बह गया, और मेरा जीवन जंजाल हो रहा है।

हे ऊधो, आप श्रीकृष्ण की टोह में मधुपुर जायें। यदि वे नहीं आयेंगे तो मेरे चन्द्रमुख की कला जीवित नहीं रहेगी, और इसकी हत्या का पाप उन्हें ही भुगतना होगा।

(१३)

सुन्दरि चललिह महुँ घर ना
हँसि-हँसि सखि सब कर धर ना
जाइतहुँ लागु परम डर ना
जेना शशि काँप राहु डर ना

हार टुटिय छिड़िआय गेल ना
भूषण वसन मलिन भेल ना
रोय-रोय कजरा दहाय गेल ना
अदंकहि सिन्दुर मेटाय गेल ना
'भानुनाथ' कवि धीर धरु ना
दुःख सहल सुख पाओल ना

कोई नायिका अपने प्रियतम के शयन-मन्दिर में चली। उसकी हमजोलियाँ हँस-हँस कर (विनोदवश) उसका हाथ पकड़ रही हैं। जिस तरह राहु के डर से चन्द्रमा काँपता है, उसी तरह वह भयाक्रान्त नायिका अपने प्रियतम के पास जाने में काँपती है।

भय से उसके वस्त्राभरण मलिन हो गये हैं और उसके गले का हार टूट कर पृथिवी पर बिखर गया है। रोते-रोते उसकी आँखों का काजल और डर से उसकी सिन्दूर-बिन्दी बह गई है।

कवि 'भानुनाथ' कहते हैं—हे सुन्दरी, तुम धीरज धरो। दुःख के बाद ही सुख मिलता है।

(१४)

साजि चललि व्रज वनिता रे कर घट सब धारे
यमुना-तट पंथ निहारथि रे घट कटि पर डारे
माँझ भेंटल वंशीधर रे रोकल हहकारे
माँगथि दान यौवन-रस रे हठ ठानल बाटे
गोपिन देखि संकोचति रे मनहि-मन विचारे
'जीवनाथ' कवि गाओल रे दय दान तोहि सब जा रे

व्रजांगनाएँ हाथों में गागर लिये सज-धज कर यमुना की ओर चलीं। जल से भरे हुए अपने-अपने अमृत-कलशों को कमर पर लिये वे यमुना-किनारे किसी का इन्तज़ार कर रही हैं। लौटते समय रास्ते में ही उन्हें श्रीकृष्ण मिल गये और उनकी राह रोक ली।

उन (कमर पर गागर लिये पनिहारिन) गोपियों से श्रीकृष्ण उनकी जीवनसंचित यौवन-सुधा का दान माँग रहे हैं, और गोपियों के 'ना' करने पर ज़िद-पर-ज़िद कर रहे हैं। यह देख कर गोपियाँ मन-ही-मन चिन्तातुर और शर्मिन्दा हो रही हैं।

कवि 'जीवनाथ' कहते हैं—हे गोपियो, तुम श्रीकृष्ण को अपनी प्राणदा यौवन-सुधा का दान दो, और प्रसन्नतापूर्वक अपने-अपने घर जाओ।

(१५)

पटना जाए बेसाहब परिधन पहिराएब धनि हाथे
भूषण गुहल धिआ धरि आँचर पहिराएब धरि माथे
काशी सौं कंगन धिआ आनल दछिन चीर मदरासे
हार मँगाएब नूपुर मणिमय कुमरि पुरत तुव आसे
चुप रहु चुप रहु हेम-पुतरि धिआ रहु गै घर अलसाए
दश दिन बितत बनवगै कामिनि प्रेमक सुजल नहाए
विमल चन्द्रमुख फूल फुलाएत लगनक बहत बतासे
मृदुल फूल-दल इत-उत डोलत पुलकि-पुलकि धिआ गाते

मैं पटना जाकर परिधान खरीदूँगा, और उसे अपनी पुत्री को समर्पित करूँगा, और किनारी तथा सलमे-सितारे की जड़ी हुई साड़ी से उसे सजाऊँगा।

हे पुत्री, काशी से कंकण लाया हूँ, और मदरास से छींट की साड़ी। मैं मणिमय नूपुर तथा हार मँगाऊँगा, और तुम्हारी आशा पूरी होगी।

हे स्वर्ण-प्रतिमा की-सी प्यारी पुत्री, चुप रह! चुप रह! प्रसन्न-चित्त से घर में रह। चन्द दिनों के बाद ही प्रेम के निर्मल जल में धुल-पोंछ कर तू नवोढ़ा कामिनी बन जायेगी। लग्न-रूपी वायु के लगते ही तुम्हारा चन्द्रमा की तरह यह मुख फूल की तरह खिल जायेगा। और हे पुत्री, यौवन के आगमन से तुम्हारा प्रफुल्लित मुख-रूपी सुमन तुम्हारे शरीर-रूपी वृन्त पर पुलक-पुलक कर अठखेलियाँ करेगा।

(१६)

सुन्दर हें तो सुबुधि सेयानि
मरी पियासैं पियावह पानि
के तों थिकाह कोन ग़ाम केर
बिनु परिचय तो जोड़ह सिनेह
थिकहुँ पथिक सुनु सुबुधि सेयानि
धनिक विरह सौं भरमि संसार
सुनि सुन्दरि देल पीढ़ी आनि
बैसु पथिक जन पिवि लिअ पानि
आवह बैसह पिव लैह पानि
जे तों खोजबह से देव आनि
एतहि रहह कतहु जनु जाह
जें तकबह से भेंटतओ बेसाह
ससुर भैंसुर मोर गेलाह विदेश
स्वामी गेल छथि हुनिक उदेश
गामक पहरू से मोर हीत
निरधन पड़ौसिन सुतथि निचिंत
सासु मोर आन्हरि नयन नहिं सूझ
बालक ननदि वचन नहिं बूझ
भनहिं 'रमापति' अपरुब नेह
जेहन विरह हो तेहन सिनेह

कोई पनिहारिन कुएँ पर जल भर रही है। रास्ते का प्यासा एक पथिक आता है, और उससे जल माँगता है—हे सयानी और बुद्धिमती सुन्दरी, मैं प्यास से मर रहा हूँ। मुझे जल पिलाओ। पनिहारिन ने पूछा—हे अनजान, तुम कौन हो ? तुम्हारी जन्मभूमि कहाँ है ? तुम बिना परिचय के बातों-बातों में ही मुझसे क्यों नेह जोड़ रहे हो ?

पथिक ने उत्तर दिया—हे बुद्धिमती तरुणी, मैं पथिक हूँ और प्रियतमा के विरह में दर-दर भटक रहा हूँ।

यह सुन कर उस सुन्दरी ने पीढ़ी लाकर उसे बैठने को दी, और बोली—हे पथिक, बैठो। और यह स्निग्ध जल पी कर तृप्त हो लो। तुम्हें जिस चीज की दरकार हो, मैं ला कर दूँगी। तुम यहाँ ही रहो। अन्यत्र कहीं नहीं जाओ। तुम जो ढूँढ़ोगे, खरीद कर ला दूँगी। मेरे ससुर और भैंसुर प्रवासी हैं, और मेरे प्रियतम भी उन्हीं की टोह में परदेश गये हैं। ग्राम का पहरेदार मेरा मित्र है। मेरी पड़ोसिन, जो कंगालिन है, रात में बेफ़िक्र हो कर सोती है। मेरी सास अन्धी है, और उसकी आँखों के नूर ग़ायब हैं। मेरी ननद बालिका है, और अभी बोलना भी नहीं जानती।

कवि 'रमापति' कहते हैं—उस सुन्दरी नायिका का स्नेह कितना उज्ज्वल है। पथिक का जैसा विरह था, वैसी ही उसको स्नेहपात्रिका भी मिल गई।

(१७)

उठु-उठु सुन्दरी जाइछी विदेश
सपनहु रूप नहिं मिलत उदेश
से सुनि सुन्दरि उठलि चेहाए
पहुँक वचन सुनि बैसलि झमाय
उठइत उठलि बैसलि मन मारि
विरहक मातलि खसलि हिय हारि
भनहिं 'रमापति' सुनु व्रजनारि
धइरज धय रहु मिलत मुरारि

हे सुन्दरी, उठो। मैं परदेश जा रहा हूँ। अब तुम्हें स्वप्न में भी मेरा दर्शन नहीं होगा। यह सुन कर नायिका विस्मित हो उठ बैठी, और अपने प्रियतम की भेद-भरी बातें सुन कर चिन्ता-मग्न हो गई। वह उठने को तो उठी, लेकिन भावी विपत्ति की आशंका से फिर खिन्न हो कर बैठ गई। विरह की मतवाली वह नायिका मूर्च्छित हो कर पृथिवी पर गिर पड़ी। कवि 'रमापति'

कहते हैं—हे व्रजांगने, तुम धीरज धरो। तुम्हें भगवान श्रीकृष्ण अवश्य मिलेंगे।

(१८)

सुनु-सुनु कोयल एहि ठाँ आउ
मधुमय षट्रस भोजन खाउ
करु गय काज हमर एहि राति
विनति करुअ तोहर कत भाँति
पाँखि मढ़ाएव मोतिक रेख
अहँक बनाएव सुन्दर भेख
लय लिय लय लिय लिखलहुँ पाँति
बितय चहय पिक आधी राति
काजर मसि नख सँ लिख देल
हृदयक कागद फारिय देल
पवन पाँखि लय लहु-लहु जाउ
मेघ चढ़ल अहँ झटि दै आउ
कहब बुझाय सुनब पहुँ बात
कथि लय कैलहुँ कामिनि कात
ओ धनि मरत विरह विष खाय
तिन सै पैंसठि राति बिताय
सतत नयन सँ नीरक छोर
चलु-चलु मरइछ लिय गै कोर
जँ नहिं जाएव आजुक राति
कामिनि देतिह जीवन साति

री कोयल, सुनो—यहाँ आओ। (प्रेम से) मधु में पगा हुआ भोजन खाओ। और, आज रात को मेरा एक काम कर आओ। मैं तुम्हारी कितनी आरजू-मिन्नत करूँ?

मैं सोने से तुम्हारे पंख मढ़ाऊँगी। जिससे सुन्दरियाँ—(तुम्हारे सौन्दर्य्य पर लट्टू होकर) तुझसे प्रेम करेंगी। मोतियों से अधर मढ़ा कर तुम्हारा वेश सुन्दर बनाऊँगी—री कोयल !

यह लो मेरे प्रवासी साजन का पत्र, जो मैंने लिखा है। आधी रात बीता चाहती है,—हृदय का काग़ज़ फाड़ कर और आँखों के काजल की स्याही में नख की क़लम डुबो कर मैंने खत लिखा है। हवा के पंख पर चढ़ कर धीरे-धीरे उड़! री कोयल! मेघ बरसा ही चाहता है, तू जल्द जा,—री कोयल !

मेरे प्रियतम से मेरा सन्देश समझा कर कहना, और कान दे कर उनकी बातें सुनना, पूछना—'तुमने क्यों अपनी प्रियतमा की सुधि भुला दी ? ३६५ लम्बी-लम्बी रातें तुम्हारी इन्तज़ारी में काट कर तुम्हारी प्रियतमा विरह का जहर खा कर प्राण त्याग देगी। उसकी आँखों से अविरल अश्रुपात हो रहे हैं, (अजी ओ बेरहम !) चल, तुम्हारी प्रियतमा तड़प रही है, उसको गोद में बिठा कर सान्त्वना दे। यदि आज की रात तुमने प्रस्थान नहीं किया तो तुम्हारी प्रिया नहीं रहेगी।'

(१९)

कि कहु सखि हम विरह विशेषे
अपनहु तनु धनि पाव कलेशे
अपनुक आनन आरसि हेरी
चानन भरम कोप कत बेरी
भरमहु निअ कर उर पर आनी
परसै तरस सरोरुह जानी
चिकुर-निकर निअ नयन निहारी
जलधर जाल जानि हिय हारी

प्रियतम प्रवासी है। नायिका अपने ही शरीर को देख कर—विरह में भ्रान्त होकर भयभीत हो रही है। दर्पण में अपना ही चेहरा देख कर नायिका उसे चन्द्र समझती और भय से प्रकम्पित हो रही है। वक्षस्थल पर भ्रम से अपने ही हाथ रख कर विरहिणी उसे कमल समझती और ललचा कर

बार-बार स्पर्श करती है। अपने ही केशपाश को देख कर काले बादल के भ्रम से उसका हृदय बैठ रहा है।

इस गीत का रचनाकाल सवा छै सौ वर्ष पुराना है। गीत मैथिली नाट्य-कला के उद्‌भावक कविवर 'उमापति' का है। उमापति मिथिला-नरेश हरिहरदेव के सभा-पण्डित थे। हरिहरदेव का राज्य-काल चौदहवीं सदी का प्रथम चतुर्थांश अर्थात् सन् १३०३ से १३२३ तक माना जाता है। उस समय मुहम्मद तुग़लक दिल्ली का बादशाह था।

यह स्थापना विख्यात मैथिली नाटक 'पारिजातहरण' की प्रस्तावना के आधार पर है।

(२०)

जखन चलल गोपीपति रे
गोकुल भेल सूने
बिलपति नारि वधू व्रज रे
कयलन्हि हरि खूने
घुरुमि-घुरुमि घन घहरय रे
हहरय मोर छाती
चमकत चपल चहुँ दिशि रे
कत लिखवौं पाँती
चानन हृदय दगध करु रे
दुर्वह बनमाला
उछलि-उछलि मन्मथ मोहि रे
मारय उर भाला
अनिल अनल सन लागत रे
जिव करे अभिघाते
कोकिल कुहुकि-कुहुकि कत रे
मारय मिठ बाते

कर सों ससरि-ससरि खसु रे
वलावलि झूमी
हरि हरि कहथि खँसति महि रे
बाला घुमि घुमी
भन 'वंशीधर' विरह तजु रे
विरहिनि व्रजनारी
मन जनु करिय व्याकुल रे
तोंहि भेंटत मुरारी

जब श्रीकृष्ण मधुपुर चले गये तो गोकुल सूना हो गया। व्रजांगनाएँ विलाप करने लगीं—हाय ! श्रीकृष्ण ने हम लोगों की हत्या कर डाली।

बादल घुरुम-घुरुम कर—वृत्ताकार चक्कर काट कर घहर रहे हैं। छाती हहर रही है। बिजली चारों ओर चमक-चमक कर कौंध उठती है। शीतल चन्दन का लेप हृदय को जला रहा है, और वनमाला दुर्वह भार की तरह लगती है। मदन उछल-उछल कर कलेजे में बर्छी चुभोता है। शीतल वायु डहकती हुई अग्नि की तरह प्राणदाहक प्रतीत होती है। कोयल अपनी मीठी कूक से हृदय में शूल पैदा करती है। कलाई से चूड़ियाँ (वला + अवलि) ससर-ससर कर खिसक रही हैं।

इस प्रकार वह विरहाकुल तरुणी बार-बार श्रीकृष्ण के नाम का स्मरण कर मूर्च्छित हो-हो कर पृथिवी पर गिरती है।

कवि 'वंशीधर' कहते हैं—हे विरहिणी व्रजांगने, इतना अधीर मत होओ। तुम्हें भगवान श्रीकृष्ण अवश्य मिलेंगे।

(२१)

जखन चलल हरि मधुपुर रे
व्रज भेल उदासे
बिन यदुपति नहिं जीअब रे
कर धूनब माथे

दृग चित वदन मलिन भेल रे
शिर फूजल केशे
नागरि नयन बरसि गेल रे
जनि जल असरेसे
प्रेम परस पवि छूटि गेल रे
पहुँ भय गेल चोरी
आब जिबन नहिं जीअब रे
विष पीअब घोरी
'धनपति' भन धैरज धरु रे
तोंहि भेंटत सोहागे
माधव मधुपुर आओत रे
पुनि जागत भागे

जब श्रीकृष्ण मधुपुर जाने लगे तब सारा व्रज शोक-सागर में डूबने लगा। व्रजांगनाएँ विलाप करने लगीं—हाय ! श्रीकृष्ण की गैरहाजिरी में हम सब कैसे जियेंगी। सिर धुन-धुन कर पछतायेंगी।

व्रजांगनाओं का चित्त उदास हो गया। उनके वदन कुम्हला गये। शिर के बाल खुल कर इधर-उधर बिखर गये। उनकी आँखों से आँसू की झड़ी लग गई, जैसे अश्वलेषा नक्षत्र में बादल बरस रहे हों।

हाथ से प्रेम का पारस प्रस्तर निकल गया, और प्रियतम श्रीकृष्ण चोरी हो गये। हे सखी, अब यह जीवन क्यों धारण करूँ ? जहर घोल कर पी लूँगी।

कवि 'धनपति' कहते हैं—हे गोपांगने, धीरज धरो। तुम्हारा सौभाग्य अटल रहेगा। श्रीकृष्ण अवश्य मधुपुर आयेंगे, और तुम्हारे भाग्य का पुनः उदय होगा।

(२२)

साजि चललि सब सुन्दरि रे
मटुकी शिर भारी

धय मटुकी हरि रोकल रे
जनि करिय वटमारी
अलप वयस तन कोमल रे
रीति करय न जानै
धाए पड़लि हरि चरणहिं रे
हठ तेजह मुरारी
निति दिन एहि विधि खेपह हे
तोहे बड़ बुधिआरी
आज अधर रस दय लेह हे
पथ चलह झटकारी
झाँखिय खुंखिय राधा वैसलि रे
वैसलि हिय हारी
नंदलाल निर्दय भेल रे
हिरदय भेल भारी
भनहिं 'कृष्ण' कवि गोचर करु रे
सुनु गुनमंति नारी
आज दिवस हरि संग रहु रे
अवसर जनु छाँड़ी

व्रजांगनाएँ शिर पर भारी गागर लिए सज-धज कर निकलीं। श्रीकृष्ण ने गागर पकड़ कर रास्ता रोक लिया।

हे कृष्ण, राहजनी मत करो। मेरी उम्र थोड़ी है, और शरीर कोमल। मैं रीति का मर्म नहीं जानती। इस प्रकार वे सुन्दरियाँ श्रीकृष्ण के चरण पकड़ कर तरह-तरह से अनुनय-विनय करने लगीं। हे कृष्ण, तुम अपना यह हठ छोड़ दो।

श्रीकृष्ण ने कहा—हे व्रजांगने, तुम नित्य इसी तरह टालमटोल करती हो। सचमुच तुम बड़ी चतुर हो। आज अपने अधर-रस का दान दो, और तब प्रसन्न होकर अपना रास्ता लो।

राधा इस आकस्मिक विपत्ति से मुक्त होने के लिए इधर-उधर झाँक कर और खाँस कर अन्त में नाउम्मीद हो कर बैठ गई।

हे सखी, श्रीकृष्ण कितने कठोर हैं। उनकी इस नाजायज हरकत से दुख होता है।

कवि 'कृष्ण' कहते हैं—हे गुणवन्ती, सुनो। तुम आज श्रीकृष्ण के साथ प्रेमपूर्वक दिन बिताओ, और इस अवसर पर लाभ उठाने से मत चूको।

(२३)

कतय रहल मोर माधव ना
तनि बिनु कत दुख साधव ना
हरि हरि करु व्रजनागरि ना
चिकुर फुजल लट झाड़ल ना
शिर सँ खसलि काली नागिन ना
चिहुँकि उठति नव कामिनि ना
फुलल कमल उर जागत ना
ताहि पर जौबन भारी ना
'बुद्धिलाल' कवि गाओल ना
रसिक पुरुष रस बूझल ना

मेरे प्रियतम श्रीकृष्ण कहाँ रह गये? उनकी गैरहाजिरी में मैं अब और कितने दिन तपस्या की धूनी रमाऊँ?

व्रजांगनाएँ 'कृष्ण! कृष्ण!' की रट लगा कर विरहाकुल हो रही हैं।

उनके सिर की वेणी खुल कर अस्त-व्यस्त हो गई है, लट बिखर रही है, जैसे शिर से काली नागिन लटक कर डोल रही हो।

कभी वह नवोढ़ा तरुणी रह-रह कर चौंक उठती है, और कभी उसके युगल उरोज खिल उठते हैं। तिस पर उसकी जवानी और भी सितम ढाती है।

कवि 'बुद्धिलाल' कहते हैं कि रसिकजन ही इस रस का रहस्य समझेंगे।

(२४)

माधव कि कहव कुदिवस मोरा
अपन कर्मफल हम उपभोगल जाहि दोष नहिं तोरा
जाहि नगर चानन नहिं चीन्हे अड़र आदर कैं रोपै
बिन गुण बुझलें तनिक निरादर तापर उचित ने कोपै
पढ़ल पुरुष यदि नयन गमाओल तैं नहिं करिय अभेला
जौं करमी फुल कौन सराहल तैं कि कमल गुन भेला
सुजन पुरुप निरगुन जग निन्दल जड़ के गौरव बूझै
'नन्दीपति' इहो मन दय बूझिय आन्हर कें कि दरपन सूझै

हे कृष्ण, मैं अपने बुरे दिन के हालात क्या कहूँ ?

मैं तो अपने किये का फल भुगत रही हूँ। अपने कर्त्तव्याकर्त्तव्य के लिये तुम्हें क्यूँ दोष दूँ ?

जहाँ चन्दन के गुण-दोष की परख नहीं होती, वहाँ एरण्ड की ही क़द्र होगी। किसी के गुण की उचित परख न कर सकने के कारण ही कोई किसी का निरादर करता है। अतः वह क्रोध का नहीं, दया का पात्र है।

यदि विज्ञ पुरुष ज्ञान के प्रकाश से वंचित होकर कुछ-का-कुछ कर बैठें तो वह अवहेलना के योग्य नहीं। करमी के फूल की कोई कितनी ही तारीफ क्यूँ न करे, किन्तु वह कमल के फूल की समता नहीं कर पाता।

यह निर्गुण संसार विज्ञ जनों की उपेक्षा कर मूर्खों की इज्जत करता है। कवि 'नन्दीपति' कहते हैं—लेकिन यह निश्चित है कि अन्धे के हाथ में दर्पण रख देने के बावजूद वह देख नहीं सकता।

(२५)

माधव सब विधि थिक मोर दोषे
वयस अलप थिक तनु अति कोमल
तें नहिं दरश परोसे
काँच क़ली जौं अहाँ हरि तोड़व

तौं पुनि हएव उदासे
हयत कली पुनि रंग सुरंगित
दिन - दिन हयत प्रकाशे
निकलि सुवास आस तोहि पूरत
वैसि पिवह रस पासे
किछु दिन और धीर धरु मधुकर
जखन हएत सुविकासे
'चन्द्रनाथ' भन अरज करु नागर
न करिए एहन गेआने
दिन-दिन तोहि प्रेम हम लायब
पुरत सकल विधि कामे

हे कृष्ण, यदि देखा जाय तो सब प्रकार से मैं ही कसूरवार हूँ।

मेरी उम्र थोड़ी है और शरीर नाज़ुक, जो स्पर्श करने के भी काबिल नहीं है।

हे प्रियतम, यदि तुम कच्ची कली तोड़ कर इस्तेमाल में लाना चाहोगे तो तुम्हें निराश होना पड़ेगा। हाथ कुछ नहीं लगेगा। जब कली पूर्णरूप से प्रस्फुटित हो जायगी तो उसके सौन्दर्य्य में स्वतः निखार आ जायगा। उसकी गन्ध चारों ओर फैल कर फूट बिखरेगी। और तुम्हारी आशा पूरी होगी। उस दशा में तुम उसका मधुर रस पान कर सकोगे। अतः हे मधुकर, तुम कुछ दिन धीरज धरो। कली को विकसित हो लेने दो।

कवि 'चन्द्रनाथ' कहते हैं कि नायिका का प्रियतम अर्ज कर रहा है—हे तरुणी, तुम्हारा यह खयाल गलत है कि कली के विकसित होने पर ही मधुकर उसके रस का पान करेगा। मैं तुमसे प्रतिदिन प्रेम करूँगा, और मेरी मनो-कामना पूरी होगी।

(२६)

प्रथम समागम भेल रे
हठहिं रैनि बिति गेल रे

नव तन नव अनुराग रे
बिन परिचय रस जाग रे
से सब संग पिय तजि गेल रे
यौवन उपगत भेल रे
आब ने जिअब बिनु कंत रे
आब कि जीवन भेल अन्त रे
'नन्दीपति' कवि भान रे
सुपुरुष ने करय निदान रे

अर्थ स्पष्ट है।

(२७)

समय वसन्त पिया परदेश
असह सहब कत विरह कलेश
सुमिरि-सुमिरि पहुँ नहिं रह धीर
मदन दहन तन दगध शरीर
शीतल पंकज चम्पाक माल
हृदय दहय जनि विषधर ज्वाल
श्रवण दहय तन कोकिलक गान
चान किरिन दह अनल समान
'हर्षनाथ' कवि मन दै गाव
रसिक पुरुष जन बुझ इहो भाव

वसन्त ऋतु है। प्रियतम प्रवास में हैं। मैं विरह की यह असह्य वेदना कब तक सहूँ?

जब प्रियतम की याद आती है तब धीरज जाता रहता है। काम की लपट से शरीर भस्मीभूत हो रहा है। शीतल कमल और चम्पा के हार—ये दोनों विषैले सर्प के फूत्कार की ज्वाला की तरह हृदय को जलाते हैं। कोयल का संगीत कानों में दाह उत्पन्न करता है, और चन्द्रमा की शीतल किरणें अंगार की भाँति जलाती हैं।

कवि 'हर्षनाथ' कहते हैं—रसिक पुरुष ही रस का रहस्य समझेंगे।

(२८)

नागर अटकि रहल परदेश
तरुण वयस कत खेपब कलेश
मैल वसन तन भस्म लेपि लेल
तन दूरवि अभरन तजि देल
खन-खन झाँखथि रहथि मन मारि
कोन दोष तजि गेल मदन मुरारि
भन 'बबुजन' कवि सुनिय व्रजनारि
धैरज धय रहु मिलत मुरारि

मेरे प्रियतम परदेश में ही अटक गये। मैं इस भरी जवानी में अब और कितने दिन दुख का भार वहन करूं ?

इस प्रकार विरहाकुल हो कर उसने अपने सुन्दर आभरण का परित्याग कर मैला वस्त्र पहन लिया। और शरीर में भभूत रमा ली।

चिन्तातुर हो कर वह अनेक प्रकार के संकल्प-विकल्प करने लगी। उसका चित्त उदास हो गया। हाय ! श्रीकृष्ण ने मेरे किस अवगुण के कारण मेरा परित्याग कर दिया।

कवि 'बबुजन' कहते हैं—हे व्रजांगने, सुनो। धीरज धरो। तुम्हें भगवान श्रीकृष्ण अवश्य मिलेंगे।

(२९)

आज हमर बिह बाम हे सखि
मोहि तेजि पहु चलल गाम
पहुँ भेल हृदय कठोर हे सखि
घूरि ने तकय मुख मोर
जाहि बन सिकियो ने डोल हे सखि
ताहि बन पिय हँसि बोल

भनहि 'विद्यापति' मान हे सखि
पुरुषक नहिं विश्वास

हे सखी, आज विधाता वाम हो गये। प्रियतम मेरा परित्याग कर अपने गाँव जा रहा है।

हे सखी, प्रियतम कितने निठुर हैं कि पीछे घूर कर एक बार देखते तक नहीं।

हे सखी, जिस वन में तृण तक नहीं हिलते, उस निबिड़ स्थान में मेरा प्रियतम हँस कर बोल रहा है।

कवि 'विद्यापति' कहते हैं—'हे सखी, पुरुष के प्रेम का विश्वास नहीं'।

वटगमनी

'वटगमनी' का अर्थ है—पथ पर गमन करनेवाली। यदि आप मिथिला के गाँवों में किसी मशहूर त्योहार या मेले के उत्सवों पर जाय, और देहात की ऊबड़-खाबड़ सँकरी पगडंडी पर आँखों में काजल आँजे, सिर पर लहराते हुए बालों की चोटी गूँथे, हाथों में काँच की चूड़ियाँ पहने, घेरदार साड़ी का आँचल कमर में खोंसे और एक ख़ास नाज़ोअन्दाज़ से गाँव की युवतियों को कंधे-से-कंधा मिला कर अपने दर्द-भरे लहजों में नशीले नग़मों को गाते हुए सुनें या वीरान दरिया-किनारे से अपने घरों को लौटती हुई पनहारियों को माथे पर गागर रक्खे और अँगड़ाई का नकशा बन-बन कर गीतों के ख़जाने खोलते हुए देखें, तो समझ लीजिये कि सावन की तरह रस बरसाने वाला वह गीत 'वटगमनी' की पौद का है। 'वटगमनी' के रसीले झोंकों का रस पीने के लिए रसिक श्रोताओं की टोली वैसे ही टूटती है, जैसे शक्कर की गंध पा कर चींटी।

बरसात के मौसम में बाग़ों में झूले पर बैठ कर भी 'वटगमनी' गायी जाती है। क्या खूब होता है उस समय का दृश्य, जब आम के ऊँचे पेड़ों की हरीरी शाख़ों में झूलो के अड्डे होते हैं, आसमान में ऊदे-ऊदे बादल आँख-मिचौनी खेलते हैं, बरसाती हवा की लहरों से अमराई के नौ-उम्र पौदे हिलते हैं, और देहात की कुमारी नवयुवतियाँ झूलों पर पेंगें ले-लेकर तितरियों की तरह लहराती हैं।

'वटगमनी' देहात की उस सरलहृदया कन्या की तरह है, जो हरे बाजरे के खेत में बग़ल में टोकरी दाबे गोबर के कंडे बिछाती है। अर्थात् इसका कलाम खालिस देहाती है। इसका मज़मून मँजा हुआ है जो उर्दू शायरी के 'मामला-बंदी' के ढंग पर चलता है। इसका रचयिता काव्य की बारीकियों से

बेख़बर है, ऐसा नहीं। वह मानव-प्रकृति के अंग-प्रत्यंगों का जानकार है। उसकी परख महीन, और आँखें ख़ुर्दबीन-सी तेज़ हैं। वह जानता है कि कवि अथवा चित्रकार को अपनी कूँची बारीकी से इस्तेमाल करनी चाहिए। वरना थोड़ा भी रंग हल्का या गाढ़ा हुआ कि तस्वीर बिगड़ी। उसका मस्तिष्क पचनशील है। इसलिए वह ओस से धुली हुई पत्तियों में भी उतना ही सौन्दर्य्य पाता है, जितना कि प्रकृति के सूखे ड़ुंड में। कवि शेक्सपियर के शब्दों में— प्रेमी की तरह वह सब पदार्थों को उन्मत्त की तरह देखता है। वह मिश्र देश के हवशियों में भी हेलेन की सुंदरता के देखने का आदी है।

'वटगमनी' के उपमान, उपमेय नपे-तुले हैं। ईरानी शायरों की तरह उसका रचयिता हरिणी-सी बड़ी-बड़ी आँखों की उपमा नरगिस से देने की ग़लती नहीं करता। उसकी शायरी में 'अपनेपन' का रंग है। जिस मुल्क की हवा में वह साँस लेता है, तशबीहात—उपमाएँ भी वह वहीं से चुनता है। अपने घर के नीम, कीकर के दरख़्त को छोड़ कर वह नाशपाती पर लट्टू नहीं होता। यही उसकी कला है।

'वटगमनी' के भावों की बंदिश मैथिली है, और तर्ज़ रोमान्टिक साँचे में ढला है। उसकी कल्पना वैशाख-संध्या-सी शीतल, और भाषा मिश्री की डली की तरह मीठी है। उसके कहने का ढंग साधारण होते हुए भी उसमें एक बाँकपन है, जो अहले-दर्द के दिलों में दर्द पैदा करता है। कोई-कोई 'वटगमनी' को 'सजनी' भी कहते हैं। इसलिए कि गीत के प्रत्येक चरण के प्रथम और तृतीय वाक्य-खंड के अंत में 'सजनि' शब्द बार-बार आते हैं। 'वटगमनी' के दो भेद हैं (१) संयोग—सुखांत; (२) वियोग—दुखांत।

उदाहरण-स्वरूप इस शैली के कुछ गीतों का रसास्वादन कीजिये।

(१)

जनमल लौंग दुपत भेल सजनि गे
फर फूल लुबधल जाय
साजी भरि-भरि लोढ़ल सजनि गे
सेजहीं दय छिरिआय

फुलक गमक पहुँ जागल सजनि गे
छाड़ि चलल परदेश
बारह बरिस पर आयल सजनि गे
ककवा लय सन्देश
ताहीं सँ लट झारल सजनि गे
रचि-रचि कयल श्रृङ्गार

हे सखी, लौंग के बीज अंकुरित हुए, और उसमें दो पत्ते उग आये।

काल पाकर वह फल-फूल से लद गया।

तब मैंने डाली भर-भर कर उसके फूल इकट्ठे किये और फिर उन्हें प्रियतम की सेज पर बिखेर दिया।

उन फूलों की गंध से मेरे प्रियतम की नींद टूट गई, और वह मुझे छोड़-कर परदेश चले गये।

हे सखी, वह पुनः बारह वर्ष पर वापिस आये, और मेरे लिए अपने साथ कंघी उपहार में लाए।

मैंने उसीसे अपने उलझे हुए बालों को सँवारा, और रच-रच कर शृँगार किया।

यह गीत इस प्रकार भी गाया जाता है—

लौङ्क गाछ दोपत भेल सजनि गे
फल-फूल लुबुधल डारि
खोंइछा भरि तोरल फाँफर भरि सजनि गे
सेज भरि देल छिरिआय
फुलक गमक पहुँ जागल सजनि गे
उठि पहुँ जाइय विदेश
ओतए सँ पहुँ लौटत सजनि गे
की सब लाओत सनेश
दर्पण ककवा मिसिया सजनि गे
सिनुरा कामि विशेषे

ओहि ककहा केस थकरब सजनि गे
रचि-रचि करब सिंगारे
लय दर्पण मुँह देखब सजनि गे
मिसिया सिनुरा धारे

ये या इस प्रकार के कुछ गीत विद्यापति के नाम से प्रसिद्ध हैं। इनमें कुछ तो 'विद्यापति-पदावलि' में स्थान पा चुके हैं। पर मिथिला के गाँवों में इस प्रकार के गीत जुदा-जुदा लिबासों में मिलते हैं। उनका अपना एक अलग रंग है। गीत की अन्तिम पंक्तियों में 'विद्यापति' के नाम के स्थान पर अन्यान्य मैथिल ग्रामीण कवियों के नाम जुड़े हुए हैं। आश्चर्य तो यह है कि मिथिला में विद्यापति-जैसे दर्जनों (प्रायः सौ-डेढ़-सौ) लोक-कवि; जैसे—दामोदर, दुखभंजन, हर्षनाथ, जीवनाथ, कुंवर, प्रीतिनाथ, गोविन्द मिश्र, मधुसूदन मिश्र, रमापति, नन्दीपति, मेघदूत, मँगनीराम, गंगादास, उमापति, चन्द्रनाथ, श्रीनिवास, रत्नपाणि, साहेबराम, फतुरलाल, कर्ण जयानन्द आदि पाये जाते हैं, और उनके रचे हुए गीत विद्यापति के अच्छे-से-अच्छे गीतों का मुक़ाबिला करते हैं।

(२)

जखन गगन घन बरसल सजनि गे
सुनि हहरत जिव मोर
प्राननाथ दुर देश गेल सजनि गे
चित भेल चन्द्र-चकोर
हमहुँ एकाकिनि कामिनि सजनि गे
दामिनि दमकि चहुँ ओर
दामिनि कतेक दुखौलक सजनि गे
अब ने बचत जिव मोर
झींगुर झझकत चहुँ दिशि सजनि गे
कोयल कुहुकत मोर

से सुनि जिय घबरायल सजनि गे
यौवन कयलक थोर

हे सखी, जिस समय आकाश से बादल बरसते हैं, उस समय मेरा कलेजा काँप उठता है।

हे सखी, मेरे प्राणनाथ दूर देश में जा विराजे हैं, और मेरा चित्त चन्द्र के चकोर-सा अधीर हो रहा है।

मैं एकाकिनी अबला हूँ, और यह दामिनी दशों दिशाओं में रह-रह कर दमक उठती है।

हे सखी, दामिनी ने मेरा दिल कितना दुखाया। अब मेरा जीना कठिन जान पड़ता है।

हे सखी, चारों ओर झींगुर और मयूर शोर मचा रहे हैं, और कोयल कुहु-कुहु की आवाज़ दे रही है जिसको सुन-सुन कर मेरा मन विचलित हो रहा है।

हाय! मेरी जवानी ने मेरी बड़ी दुर्गति की!

गीत का यह ग्रामीण रूप है। गाँवों में औरतों की जुबान पर यह इसी वेश-भूषा में विराजमान है। लेकिन 'विद्यापति' के नाम के साथ पिरोया जा कर यह इस प्रकार गाया जाता है—

कखन गगन घन गरजल सजनि गे
सुनि हहरल जिव मोर
प्राननाथ परदेश गेल सजनि गे
चित भेल चान-चकोर
एकलि भवन हम कामिनि सजनि गे
दामिनि लेल जिव मोर
दामिनि दमसि डेराओल सजनि गे
आव ने बँचत जिव मोर

भंगोला भंजन करु सजनि गे
रहल कथा न विशेष
भम्हरा लीखि पठाओल सजनि गे
रहल कुसुम - घन - घेर
भनहि 'विद्यापति' गाओल सजनि गे
मन जुनि करिय उदासे
सब सँ बड़ धैरज थिक सजनि गे
भमर आओत तोहि पासे

उपर्युक्त दोनों गीतों की रेखांकित पंक्तियों पर गौर कीजिये।

(३)

एकसरि कोन पर खेपब सजनि गे
युग सम यामिनि याम
कत नव हृदय निरोधिय सजनि गे
कतहु ने होय विश्राम
जतेक अछल गुन गौरव सजनि गे
तनि बिनु सब दुरि गेल
की कहु अपन करम फल सजनि गे
पहुँ नहिं दरशन देल
काहि कहुअ दुख के बुझ सजनि गे
सपनहुँ बिसरल हास
कतेक जतन करि शशि बिनु सजनि गे
कुमुदिन न हयत प्रकास
'भानुनाथ' कवि मन गुनि सजनि गे
करु हृदय अभिराम
रस-लोलुप पहुँ अओताह सजनि गे
पुरत सकल मन काम

हे सखी, मैं यह ज़िन्दगी अकेली किस तरह बिताऊँ? रात्रि का एक प्रहर मेरे लिए युग-बराबर बीत रहा है।

इस नव उम्र दिल को जितना ही वश में करने की कोशिश करती हूँ उतना ही यह विवश हो रहा है। जीवन के जो शक्तिदायक गुण-गौरव थे वे प्रेमातिरेक में क़ाफ़ूर हो गए।

हे सखी, मैं अपने खोटे भाग्य का क्या वर्णन करूँ? मेरे पत्थर-दिल सनम ने जाने क्यों दर्शन नहीं दिया?

मैं अपनी जीवनी किससे कहूँ? मेरी ज़िन्दगी की मुसीबतें किसको यक़ीन आयेंगी?

मेरी वह आनन्द की दुनिया स्वप्नवत् हो गई है।

हे सखी, चाहे लाख यत्न किया जाय, लेकिन क्या चन्द्रमा के बिना कुमुदिनी का भावुक हृदय खिल सकता है?

कवि 'भानुनाथ' कहते हैं—हे नायिके, अपने दर्द-भरे दिल में चैन लाओ। तुम्हारे रस-लोभी साजन अवश्य आयेंगे और तुम्हारी मनोकामना पूरी होगी।

कहीं-कहीं गीत के अंत में निम्नलिखित पंक्तियाँ भी मिलती हैं—

जैओ अनेक सपथ करि सजनि गे
ककर पुरुष वर मांग
भींजौं बरस लख सागर सजनि गे
कुमुदिनि होए परवान

(४)

ऋतु वसन्त तिथि पंचमि सजनि गे
फुलि गेल सभ वन फूल
कोकिल करथि व सजनि गे
आनन्द-वन में झूल
पान सुमन-रस कर अलि सजनि गे
बिरहिनि दुख केर मूल

सकल सुमन केर सौरभ सजनि गे
लै बह पवन सथूल
हमर कंत कत लोभित सजनि गे
देल मोहिं सुधि बिसराय
जो ऋतुराज सत्य सुनु सजनि गे
प्राननाथ देता लाय
जैता वसन्त अओता पुनि सजनि गे
गत यौवन नहिं आय
कर्म अभाग्य लिखल अछि सजनि गे
के दुख हमर मिटाय

हे सखी, आज बसंत ऋतु की पंचमी तिथि है। वन-बाग़ों में रंग-विरंगे फूल चिटख गये हैं।

कोयल अलमस्त हो कर आनन्दवन में कूक रही है। और हे सखी, भौंरा खिले हुए फूलों का रस पी रहा है, जो विरहिणियों के दुख का मूल कारण है।

पवन तरह-तरह के फूलों का सौरभ बटोर कर उन्हें इधर-उधर बखेर रहा है। हाय, इस समय मेरे प्रियतम किस देश में छा रहे हैं कि उनने मेरी सुधि बिसरा दी।

हे सखी, सुनो! यदि यह ऋतुराज सत्य है, तो मेरे प्राणनाथ को बुला कर अवश्य अपने नाम को सार्थक करेगा।

बसंत जायगा, और फिर लौटेगा; लेकिन मेरी यह जवानी फिर नहीं लौटेगी!

हे सखी, विधाता ने मेरी तक़दीर खोटी बना दी। हाय! अब मेरे इस दुख का उपचार कौन करेगा?

(५)

पीतम पीत लगाओल सजनि गे
बसल जाय कोन देश

हमरो देखाय देहु तोंहि सजनि गे
जायब हुनक उदेश
जोगिनि वेस बनायब सजनि गे
जटा बनायब केश
कर कमंडल झोरी लय सजनि गे
करब अटन परदेश
कवि 'दुखभंजन' कह सुनु सजनि गे
धीर धरु दुर हयत क्लेश

हे सखी, मेरे प्रियतम प्रीति लगा कर किस देश में छा गये ? मुझे उनका पता बतला दो। मैं उनकी टोह लूँगी।

हे सखी, मैं योगिन का वेश धर कर अपने बालों की जटा बनाऊँगी, और हाथ में कमंडल और झोली लेकर परदेश-यात्रा करूगी।

कवि 'दुखभंजन' कहता है—हे नायिके, तुम धीरज धरो। तुम्हारा दुख अवश्य दूर होगा।

(९)

अकेलि भवन नहिं जायब सजनि गे
हमर वयस थिक थोर
काँपय हृदय एखन सुनु सजनि गे
छाड़ि दिअ कर अब मोर
शिखर तरुण चढ़ब जौं सजनि गे
गहब पहुँक पद जोर
तखन प्रयोजन अहुँ के न सजनि गे
अपनहिं जायब ताहि कोर
'मेघदूत' कवि गाओल सजनि गे
ए हेतु जनि करु शोर

हे सखी, मैं अपने प्रियतम के शयन-कक्ष में अकेली नहीं जाऊँगी। अभी मेरी उम्र थोड़ी है, और मेरा कलेजा काँप रहा है। इसलिए मेरा हाथ छोड़ दो।

हे सखी, जब मैं जवानी के उच्च शिखर पर चढ़ूँगी, तो मैं स्वयं प्रियतम के चरणों की सेवा करूँगी।

उस समय तुम्हारा कुछ भी प्रयोजन नहीं रहेगा। मैं खुद ही प्रियतम की गोद में जा बैठूँगी।

इसलिए 'मेघदूत' कवि कहता है कि हे सखी, अब तुम व्यर्थ का कोलाहल मत करो।

(७)

जेठ मास अमावस सजनि गे
सब धनि मंगल गाउ
भूषण-वसन यतन कए सजनि गे
रचि-रचि अंग लगाउ
काजर रेख सिंदुर भल सजनि गे
पहिरथु सुबुधि सयानि
हरसित चललि अछयवट सजनि गे
गवइत मंगल खानि
घर घर नारि हँकारल सजनि गे
आदर सँ सँग गेलि
आइ थिक बरसाइत सजनि गे
तें आकुल सब भेलि
घुमड़ि-घुमड़ि जल ढारल सजनि गे
बाँटत अछत सुपारि
'फतुरलाल' देता आसिस सजनि गे
जीवथु दूलहा-दुलारि

हे सखी, आज जेठ महीने की अमावस्या की शुभ तिथि है। अतः सब स्त्रियाँ मिल कर मंगल-गान करें। और हे सखी, आज वस्त्राभूषण से सज-धज कर अपने शरीर को अलंकृत करें।

हे सखी, बुद्धिमती देवियाँ आँखों को काजल और माथे को सिन्दूर-बिन्दी से सुशोभित करें।

हे सखी, वटसावित्री की पूजेच्छुक स्त्रियाँ प्रसन्न चित्त से मंगल-गान करती हुई अक्षयवट को चलीं।

हे सखी, घर-घर की स्त्रियाँ आमंत्रित हुईं और वे सब आदरपूर्वक उनके साथ चलीं।

हे सखी, आज 'वटसावित्री' का शुभ पर्व है। इसलिए सभी स्त्रियाँ पूजा के लिए उत्सुक हो रही हैं।

हे सखी, वे सभी स्त्रियाँ वटवृक्ष के इर्द-गिर्द घूम-घूम कर जल ढाल रही हैं और अक्षत तथा सुपारी बाँटती हैं।

'फतुरलाल' कवि मंगल-कामना करते हैं कि दूल्हा और दुलहिन चिर काल तक जीवित रहें।

यह गीत 'वटसावित्री' के नाम से प्रसिद्ध है। छंद 'वटगमनी' का ही है। 'वटसावित्री या वटगमनी' का प्रत्येक चरण चार-चार खंड-पंक्तियों का संग्रह होता है, जिसमें दूसरी और चौथी खंड-पंक्तियों की तुक एक-सी होती है; लेकिन पहली या तीसरी अथवा दूसरी या चौथी खंड-पंक्तियों की मात्राएँ प्रायः एक-सी नहीं होतीं।

लोक-साहित्य में 'वटसावित्री' का रचनाकाल पुराना लगता है। इसलिए पूर्व और उत्तर 'वटसावित्री'-काल की रचनाओं में महान अन्तर है। पूर्व 'वटसावित्री'-काल की रचनाएँ अस्पष्ट हैं, और उत्तर 'वटसावित्री'-काल की स्पष्ट। पूर्व 'वटसावित्री'-काल की रचनाओं में उनके रचयिताओं के नाम मुश्किल से पाये जाते हैं; लेकिन उत्तर 'वटसावित्री'-काल की रचनाएँ अपने रचयिताओं के नाम से सुशोभित हैं। उपर्युक्त गीत-शैली उत्तर 'वटसावित्री'-काल की रचनाओं का एक लोकप्रिय नमूना है।

'वटसावित्री' सधवा स्त्रियों की पूजा का पर्व है। यह जेठ महीने की अमावस्या तिथि को मनाया जाता है। इसमें स्त्रियाँ अपना चिर-सुहाग प्राप्त करने के लिए वटवृक्ष की पूजा करती हैं। पौराणिक आख्यान है कि इसी दिन वटवृक्ष के नीचे सत्यवान की मृत्यु हुई थी, और सती सावित्री ने अपने पातिव्रत्य के प्रभाव से उसके लिए पुनर्जन्म प्राप्त किया था। यह पर्व मिथिला में विशेष-रूप से प्रचलित है। इस पर्व के अवसर पर जो गीत गाये जाते हैं, वे 'वटसावित्री' के नाम से प्रसिद्ध हैं।

(८)

चहुँ दिशि हरि पथ हेरि सजनि गे
नयन वहै जलधार
भवनो ने भावय दिवस निशि सजनि गे
करवो में कोन परकार
एते दिन नयन प्रेम छल सजनि गे
दुहुँक प्रान छल एक
पिय परदेश गेल निरदै भेल सजनि गे
की कहव तनिक विवेक
कुदिवस रहत कतेक दिन सजनि गे
के मोहि कहत बुझाय
विह विपरीत भेल सहजहिं सजनि गे
के मोर हैत सहाय
'कर्ण जयानन्द' गाओल सजनि गे
मन जनु करिय मलीन
धइरज धरिय कमलमुखि सजनि गे
भमर करत मधुपान

हे सखी, प्रियतम के पथ पर आँखें बिछाए चकित होकर चारों दिशाओं में हेर रही हूँ। आँखों से सावन-भादों की झड़ी लग रही है। भवन नहीं

भाता। दिन-रात पहाड़-से लगते हैं। क्या करूँ, क्या नहीं? समझ में नहीं आता!

हे सखी, इतने दिनों तक तो ज़िंदगी में जुदाई की घड़ियाँ नहीं आईं। मेरे और उनके—प्रियतम के प्राण एक थे। किंतु, जाने क्यों प्रवास में जाने पर उनने रंग बदल दिया। उनकी सुबुद्धि का अधिक क्या परिचय दूँ?

हे सखी, मुसीबत के ये काले दिन जाने कब तक रहेंगे? इसकी भविष्य-वाणी कौन करे? देखती हूँ, विधाता सहज ही मेरे विपरीत हो गये। हाय! इस अवसर पर मेरी कौन मदद करेगा?

कवि 'जयानन्द' कहते हैं—हे सुन्दरी, तू मन म्लान मत कर। हे कमल-मुखी, धीरज धर। तेरा मधुकर (प्रियतम) तेरे मधु का (अवश्य) पान करेगा।

(६)

चन्द्रवदनि नव कामिनि सजनि गे
यामिनि अति अन्हियारि
सखि संग चललि केलि गृहि सजनि गे
कर-पंकज दीप वारि
पवन झकोर जोर बहु सजनि गे
तैं धरू अंचल झाँपि
देखि उरज अति उन्नत सजनि गे
दीप राशि उठु काँपि
धप धप करत झुकत फेर सजनि गे
भाल धुनै शिर माथ
कथि लै दैव जन्म देल सजनि गे
'चतुरानन' बिन हाथ

हे सखी, वह चन्द्रमुखी तरुणी अपनी सखियों को साथ लेकर शयन-मंदिर में चली। रात अत्यंत अंधेरी थी। इसलिए उसने अपने कर-कमल में दीपक जला कर रख लिया।

हे सखी, पवन का झोंका रह-रह कर दीए की बत्ती को झकझोर डालता था। फलस्वरूप उसने दीये को अपने अंचल की ओट में लुका लिया।

वहाँ तरुणी के उन्नत उभरे हुए उरोज को देख कर दीप-शिखा चंचल हो उठी। उसकी लौ कभी धप-धप कर चमक उठती, कभी झपने लगती, और कभी शिर धुन-धुन कर पछताती।

कवि 'चतुरानन' कहते हैं—हे परमात्मा, काश तुमने उस (निरुपाय) दीपक को दो हाथ दिये होते।

(१०)

एकसरि कौने परि हरिहर सजनि गे
धयल विरह मँझधार
कतहु ने देखियन्हि यदुपति सजनि गे
जनि बिन जगत अन्हार
ककर जगत हम की कैल सजनि गे
के कैल ई उपचार
फुल सँ तन अवसन भेल सजनि गे
परल विरह दुख भार
तन हम तिलौ न आँतर सजनि गे
दुनु हुक प्रान छल एक
परदेश गेल परवस भेल सजनि गे
की कहव तनिक विवेक
सुकवि कहथि परमावधि सजनि गे
उचित न होय बखान
क्यो पुनि रस बुझि बश होय सजनि गे
क्यो पुरइन जस पानि

हे सखी, श्रीकृष्ण ने जीवन की किस मृदुता के आधार पर (जीवित रहने के लिए) मुझे अकेली विरह की मँझधार में छोड़ दिया?

हे सखी, चारों ओर दृष्टि फिरा कर देखती हूँ। उन्हें कहीं नहीं देखती।

मेरे एकाकीपन में हिस्सा बँटानेवाला कोई नहीं रहा। (सच पूछो तो) उनकी अनुपस्थिति में यह दुनिया अँधेरी लगती है।

हे सखी, मैंने किसका क्या बिगाड़ा? किस (ममता-हीन) डायन ने विरह के नुस्खे का यह कड़वा प्रयोग किया है?

हे सखी, मेरा यह फूल-सा कोमल शरीर सूख चला, और शिर पर विरह के दुख का (दुर्वह) पहाड़ टूट पड़ा।

हे सखी, हम दोनों एक दूसरे से पल-मात्र भी नहीं बिछुड़ते थे। दोनों के प्राण एक थे।

लेकिन प्रवास में जाने पर वह परवस हो गए। मैं उनकी सुबुद्धि का अधिक क्या परिचय दूँ?

'सुकविदास' कहते हैं—हे सखी, मतलब न सधने के कारण (सहसा अंतिम बिंदु, 'क्लाइमैक्स' पर पहुँच कर) किसी की इल्मियत या इन्सानियत में संदेह करना उचित नहीं दीखता।

(स्वाभाविकता का तकाजा है कि) कोई रस का रहस्य समझ कर उसके वशीभूत हो जाता है, और कोई जल में कमल के पत्ते की तरह निर्लेप रहता है।

(११)

नव यौवन नव नागरि सजनि गे
नव तन नव अनुराग
पहुँ देखि मोर मन बाढ़ल सजनि गे
जेहन जल चन्द्राव
बाढ़ल विरह पयोनिधि सजनि गे
कहलन्हि जीवक आधि
कत दिन हेरब हुनक पथ सजनि गे
आब वैसलहुँ हिय हारि
हम पड़लहुँ दुख-सागर सजनि गे
नागर हमर कठोर

जानि नहिं पड़ल एहन सन सजनि गे
दग्ध करत जिअ मोर
धर्म 'जयानाथ' गाओल सजनि गे
क्यो जनु करै कुरीति
धैरज धरहु कलावति सजनि गे
आज करत बहुरीति

अर्थ स्पष्ट है।

(१२)

पहुँ के दरस मुख छूटत सजनि गे
जखन जायब हम गामे
तखन मदन जिव लहरत सजनि गे
की देखि करब धेयाने
बिसरि देव नहिं बिसरत सजनि गे
हुनि मुख पंकज ध्याने
विरह विकल मन तलफत सजनि गे
दिन-दिन झूर झमाने
जौं हम जनितहुँ एहन सन सजनि गे
हैत आन सौं आने
कथिलै नेह लगाओल सजनि गे
आब नहिं बाँचत प्राने
भन 'यदुनाथ' सुनहु सखि सजनि गे
सज्जनि हुनकरि नामे
हमर कहल बुझि राखब सजनि गे
त्रिधि पुरावत कामे

हे सखी, जब मैं नैहर जाऊँगी तब प्रियतम के दर्शन दुर्लभ हो जायेंगे। मदन के प्रकोप से अहर्निश प्राण जला करेंगे।

हाय! क्या देख कर मैं धीरज बाँधूंगी?

हे सखी, मैं अपने को उन्हें भुलाने न दूँगी, और न उनके मुख-कमल का ध्यान मेरे स्मृति-पटल से क्षण-भर के लिए हटेगा।

हे सखी, मेरा मन विरह से व्याकुल होकर तड़पा करेगा, और यह शरीर खिन्न होकर हाड़-पिंजर रह जायगा।

हे सखी, यदि मैं जानती कि प्रेम के फल इतने कड़वे हैं—स्वाति का जल अग्नि का कण बन जायगा तो नेह क्यूँ लगाती?

अब प्राण नहीं रहेंगे

कवि 'यदुनाथ' कहते हैं—

हे सखी, नायिका का प्रियतम नेक है। मेरे कथन पर विचार कर लेना। उसकी मनोकामना पूरी होगी।

(१३)

जखन सुधाकर विहुँसल सजनि गे
हिया दगध करू मोर
शरद निशाकर ऊगल सजनि गे
बाढ़ल विरह तन जोर
ककहा केसर भूषन सजनि गे
लायल पहुँ मोर आज
कपट सुतल पहुँ पाओल सजनि गे
तेजल सकल मन लाज
मधुर वचन हँसि पुछिलहुँ सजनि गे
किये पहुँ रहलहुँ रूसि
तखन पिया हँसि बाजल सजनि गे
दीप बराओल फूँकि
'सहस्रराम' भन मन दय सजनि गे
पूरल सकल मन काम
पहुँ संग सुन्दरि मुद भरि सजनि गे
शोभित चारू याम

हे सखी, जब नीलाकाश का यह चन्द्रमा हँसता है, तब हृदय पीड़ा की आग में जलने लगता है।

उधर गगन में शरदेन्दु खिला नहीं कि इधर शरीर में विरह की तरंग तरंगित हो उठी।

आज मेरे प्रियतम प्रवास से लौट कर आये। और मेरे लिए उपहार में कंघे, केसर और भाँति-भाँति के आभरण लाये।

हे सखी, प्रियतम दबे पाँव आकर और शर्म को दूर कर सेज पर छल की नींद सो गये।

मैं ने हँस कर मीठे स्वर में पूछा—'क्या तुम रुठ तो नहीं गये?"

तब उनने फूँक मार कर दीप बुझा दिया, और प्रसन्न होकर प्रेम-वार्ता की।

कवि 'सहस्रराम' कहते हैं—हे सखी, तरुणी की मनोकामना पूरी हुई। उसने प्रियतम के साथ आनन्द-विभोर होकर रात बिताई।

(१४)

अभिनव मोर वयस अति सजनि गे
पहुँ नहिं मानल ताहि
फल अतेक घातक भेल सजनि गे
से हम की कहब काहि
चोलिक बन्द खोलि देल सजनि गे
कुच युग नख क्षत भेल
वेरि-वेरि वदन-वदन दुख सजनि गे
निरदय पहुँ मोर भेल
तोड़लन्हि ग्रीवक हार मोर सजनि गे
कैलन्हि अति बल जोरि
से सब हम कत भाषब सजनि गे
पहुँ भेल कठिन कठोर

फूजल चीर चिकुर लट सजनि गे
अङ्कम गहि फेर लेल
नहि छल जीवक भरोस मोर सजनि गे
ता अरुणोदय भेल
भन 'वबुजन' सुनु नागरि सजनि गे
इ थिक सुखक निदान
दिन-दिन ताहि अधिक होय सजनि गे
गुनवन्त रति रस जान

अर्थ स्पष्ट करने की जरूरत नहीं।

(१५)

अवधि मास छल माधव सजनि गे
निज कर गेलाह बुझाय
से दिन अब नियरायल सजनि गे
धैरज धैलो नहिं जाय
अति आकुलि भेलि पहुँ बिनु सजनि गे
उर अछि अति सुकुमारि
उकछि नयन पथ हेरय सजनि गे
अजहुँ ने आयल मुरारि
खन-खन मन दहो दिशि सजनि गे
विरह उठय तन जागि
से दुख काहि बुझायब सजनि गे
वइसब ककरा लागि
हरि गुन सुमिरि विकल भेल सजनि गे
कोन बुझत दुख मोर
जो 'सनाथ' कवि गाओल सजनि गे
आओत नन्द किशोर

नायिका प्रोषितभर्तृका है। पति ने जिस दिन लौट आने का वचन दिया था, वह दिन टल रहा है। अतः नायिका अपनी सखी से कह रही है—

हे सखी, वसंत ऋतु का महीना था, जब कि मेरे प्रियतम ने लौट आने का वचन दिया। वह दिन अब निकट आ गया है, और मेरे प्राण छटपटा रहे हैं।

हाय! प्रियतम के वियोग में मैं अधीर हो रही हूँ। क्योंकि मेरा कलेजा अत्यंत कोमल है। हे सखी, मेरी आँखें आतुर होकर प्रियतम को ढूँढ़ रही हैं। लेकिन मेरे प्रियतम आज भी नहीं आये।

मेरा चंचल मन सजन की टोह में प्रतिक्षण बावला बन दशों दिशाओं में भटक रहा है, और शरीर में विरह की अग्नि धधक रही है। हे सखी, मैं यह दुःख किससे कहूँ? मैं किसकी गोद में लेटूँ?

हे सखी, प्रियतम के गुण का स्मरण कर मैं विकल हो रही हूँ। हाय! मेरी इस विरह वेदना का कौन अनुभव करे?

कवि 'सनाथ' कहते हैं—हे विरहिणी, तुम धीरज धरो, तुम्हारे श्रीकृष्ण आज अवश्य आयेंगे।

(१६)

कतेक यतन भरमाओल सजनि गे
दय-दय सपथ हजार
सपथहुँ छल जौं जनितहुँ सजनि गे
नहि करितहुँ अँकवार
आवि जगत भरि भावि न सजनि गे
क्यो जनु करै प्रतीति
मुख सो अधिक बुझावथि सजनि गे
पुरुषक कपटी प्रीति
बाजथि बहुत भांति सो सजनि गे
वचन राखथि नहि थीर

तनुक हिया मोरा दगधल सजनि गे
ज्यों तृण अनल समीर
गुन अवगुन सभ बुझलैन्हि सजनिगे
बुझलैन्हि पुरुषक रीति
अन्तहिं यह निरधाओल सजनि गे
पुरुषक कपटी प्रीति

हे सखी, छलिया प्रियतम ने कितने यत्न से, हजारों शपथ दे-दे कर मुझे प्रेम की सँकरी गली में भरमाया।

अगर मैं जानती कि शपथ में भी मकर-फ़रेब है, तो मैं उन्हें इतना गले न लगाती।

हाय! दुरंगी दुनिया की इस करतूत पर अब कोई कैसे विश्वास करे? मेरे प्रियतम ऊपर से डींग हाँकते हैं, लेकिन उनकी प्रीति भीतर से खोखली है।

तुर्रा यह कि वह अपनी सचाई का अनेक प्रकार की सूक्तियों का हवाला दे-देकर ढिंढोरा पीटते हैं लेकिन उनका वचन गाड़ी के पहिये की तरह अस्थिर है।

(सच कहती हूँ) उनकी इस संगदिली से मेरा कोमल कलेजा दग्ध हो गया है, जैसे तिनका अग्नि का स्पर्श पाते ही वायु के झोंकों के साथ धधक उठता है।

हे सखी, (मैं जो कहना चाहती हूँ, वह यह है कि) मैंने पुरुषों के साथ रह कर उनके गुण-अवगुण और रीति-नियम को अच्छी तरह परख लिया है, और अंत में इस नतीजे पर पहुँची हूँ कि उनकी प्रीति कपट से भरी होती है।

(१७)

जाइत देखल पथ नागरि सजनि गे
आगरि सुबुधि सेयानि
कनकलता सनि सुन्दरि सजनि गे
विहि निरमाओल आनि

हस्तिगमन सनि चलइत सजनि गे
देखइत राजदुलारि
जनिकर एहन सोहागिनि सजनि गे
पाओल पदारथ चारि
नील वसन कटि घेरल सजनि गे
शिर लेल कवरि सम्हारि
तापर भँवरा पिवय रस सजनि गे
वइसल पाँखि पसारि

कोई नायिका अपनी सहेली से कह रही है—

हे सखी, मैंने रास्ते में एक बुद्धिमती सहज-गुण विभूषित तरुणी को जाते हुए देखा है।

वह कनकलता-सी सुन्दरी है। मुझे लगा कि विधाता ने सौंदर्य्य की उस स्वर्गीय प्रतिमा को स्वयं अपने हाथों गढ़ा है।

उसकी चाल मतवाली हथिनी की तरह है, और वह देखने में राजकुमारी की तरह चित्ताकर्षक है।

हे सखी, जिस प्रियतम की वह दुलहिन है, उस बड़भागी ने धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष सांसारिक चारों पदार्थों को प्राप्त कर लिया है।

उसकी कटि नील रंग की साड़ी से अलंकृत है, और उसके शिर पर चोटी खींच कर गूँथी हुई है, जिसको देखने से लगता है, मानो (काले अलक-रूपी) भौंरा उसके फूल-से खिले हुए चेहरे पर बैठ कर और अपने पंख फैला कर रस पी रहा हो।

(१८)

आजु सखि देखल वर अनमन-सन
किये रे मलिन मुख तोर
कोन वचन हुनि कान कहल छथि
किअ ने कहइ छिअ मोर

से सब सुनि कै सखी मुगुध भेल
नयन सजल सन भेल
अधर सुखायल लट ओझरायल
घाम सिनुर बहि गेल

हे सखी, आज तुम्हें अन्यमनस्क-सा देखती हूँ। तुम्हारा यह चंद्रमुख म्लान क्यों है ?

तुम्हारे प्रियतम ने तुम्हें कौन ऐसी अप्रिय बात कही, जो तुम मुझसे नहीं कह रही हो ?

अपनी हमजोलियों की ये सान्त्वना-जनक बातें सुन कर उसकी सखी मुग्ध हो गई, और उसकी आँखों में आँसू छलछला आए। उसके अधर सूख गए। बाल अस्त-व्यस्त हो गए, और विरह की आग से उसकी इँगुर-बिंदी पसीज गई।

कहीं-कहीं निम्न-लिखित पाठान्तर मिलता है—

आजु देखिय सखि वड़ अन-मन सनि
वदन मलिन मुख तोरा
मन्द वचन तोहि के ने कहल अछि
से ने कहिय किछु मोरा
आजुक रइनि सखि कठिन बितल अछि
कान्ह रभस करु मन्दा
गुन अवगुन पहुँ एको ने बुझलन्हि
राहु गरासल चन्दा
सूर्य्य उदित भेल मन हरसित भेल
परवस खेपल राती
सगरि रैनि मोर नयन झँझायल
काठ भेल दुहुँ छाती
भनहिं 'विद्यापति' सुनु व्रज यौवति
ने करिए एहन गेआने

एक दिन एहन सबहिं काँ होइछैन्हि
सुजन हर्ष कय माने

(१९)

कतेक दिवस पर प्रीतम सजनि गे
आएल छथि पहुँ मोर
मन दय नेह लगाएव सजनि गे
रचि-रचि अंग लगाएव
पहुँ थिक चतुर सयानहिं सजनि गे
हम धनि अंक लगाएव
ई दिन जौं हम काटव सजनि गे
तखन करव वर गाने
गावि सुनैवनि हुनकहुँ सजनि गे
पहुँ करता वर माने

हे सखी, आज कितने दिन बाद मेरे प्रियतम आये हैं।

आज मैं अपना हृदय खोलकर उनसे प्रेम करूँगी, और बड़ी श्रद्धा से उनसे मिलूँगी।

हे सखी, मेरे सजन प्रेम-कला में प्रवीण हैं। मैं उन्हें हृदय से लगाऊँगी।

हे सखी, यदि मेरे ये सुख के दिन निर्विघ्न बीते तो मैं मंगल-गान गाऊँगी, और उन्हें भी गाकर सुनाऊँगी, जिससे वह मेरा उचित सम्मान करेंगे।

(२०)

आजु सपन हम देखल सजनि गे
पहुँ आयल थिक मोर
देखि कें नयन जुरायल सजनि गे
पुलकित अछि तन मोर
काशी पाँति पठाएव सजनि गे
पहुँ कै लिखव बुझावि

मोहर माल ने लाएव सजनि गे
दरशन प्रिय दिअ आवि
भँवरा रस मोर पीवै सजनि गे
वइसल पंख पसार
आवि वचाविय रस यहो सजनि गे
हम वइसल छिअ हारि
चानन वदि हम सेवल सजनि गे
भय गेल सीमर गाछि
आब कतेक मनाएव सजनि गे
पहुँ भेल कुब्जा क दास

हे सखी, आज मैंने एक स्वप्न देखा कि मेरे प्राणनाथ आए हैं। उन्हें देख कर मेरी आँखें कृतकृत्य हो गईं, और शरीर पुलकित हो उठा।

हे सखी, मैं काशी पत्र लिखूंगी, जिसमें मैं अपने प्रियतम को समझा कर लिखूँगी कि वह मेरे लिए मणि का हार नहीं लाएं, और यहाँ आकर मुझे अपने दर्शन दें।

हे सखी, मैं उन्हें लिखूंगी कि भौंरा पंख पसार कर मेरे जोबन का रस पी रहा है। अतः आप यहाँ आकर इस रस की रक्षा करें। क्योंकि मैं इस मधुकर से हार खा गई।

हे सखी, मैंने चन्दन समझ कर जिसका सिंचन किया, वह दुर्भाग्यवश सेमल का वृक्ष साबित हुआ।

हे सखी, मैं अब उनसे और कितनी आरजू-मिन्नत करूँ? क्योंकि वह तो कुब्जा के हो रहे हैं।

(२१)

एते दिन भँवरा हमर छल सजनि गे
आब गेल मोरंग देश
मधुपुर पिअहु लोभायल सजनि गे
मोरा किछु कहियो ने गेल

आगन लगए विषम-सन सजनि गे
घर भेल विषम अन्हार
फूजल केश अभेस भेल सजनि गे
गेरुला मोरो ने सोहाय
आजु पिया नहिं आवत सजनि गे
मरब जहर विष खाय

हे सखी, इतने दिनों तक तो प्यारा भ्रमर मेरा था। लेकिन अब वह मोरंग देश चला गया।

हे सखी, मेरा वह प्रियतम मधुपुर में रमा हुआ है। हाय! मुझे वह कुछ कह भी नहीं गया।

हे सखी, मेरा आँगन नीरस प्रतीत होता है, और घर भयावना तथा तिमिराच्छन्न लगता है।

हे सखी, मेरे बाल यत्र-तत्र बिखर गये हैं; जो अशुभ लगते हैं। और मुझे अब वेणी भी प्रिय नहीं लगती।

हे सखी, यदि आज मेरे प्रियतम नहीं आये, तो मैं गरल-पान कर मर जाऊँगी।

(२२)

आव धरम नहिं बाँचत सजनि गे
केहि करत प्रतिपालै
पहुँ परदेश भै बइसल सजनि गे
जोबन भेल जीव कालै
केहि मोरा एहि जग हित हयत सजनि गे
पहुँ देत आनि वजाय
हमरा सौं छोट जे हो छल सजनि गे
तिनकहुँ खेलै गोपालै
भन 'यदुनाथ' सुनुहु मोर सजनि गे
दीनानाथ छइन नामे

तोहरो कहल प्रभु राखल सजनि गे
विधि पुरावत कामे

हे सखी, अब धर्म रखना असंभव प्रतीत होता है। न मालूम अब मेरी कौन रक्षा करेगा?

हे सखी, मेरे प्रवासी प्राणनाथ परदेश में जाकर रम गए, और मेरी जवानी मेरे लिये जंजाल हो गई।

हे सखी, अब इस संसार में मेरी भलाई देखनेवाला ऐसा कौन है, जो मेरे प्राणनाथ को बुला कर ला दे?

गीत की अंतिम दो पंक्तियों के ऊपर कहीं-कहीं निम्न-पंक्तियाँ भी जुड़ी हुई मिलती हैं—

आव हम की भै रहव सजनि गे
थिकहुँ सिंहक नारि
सियारक संग भै रहव हम सजनि गे
सिंहिनि पढ़तिह गारि
पहिल प्रेम छल हम सों सजनि गे
जनि बिसरल मोहि कन्त
हमरो मारि नेराओल सजनि गे
सौतिनि भेलि गुनवंत
जल बिनु कमल सुखायल सजनि गे
छूटत नहिं परान (मृनाल)
शंख रतन झमार भेल सजनि गे
आब जीवक कोन काज

(२३)

उचित पुछिय तोहि मालति सजनिगे
मन मलिन किय तोर
की देख भम्हरा तेजि परायल सजनि गे
कते अछि हृदय कठोर

चान तेजल कुमुदिनि सजनि गे
हरि तेजि मधुपुर गेल
सून भवन देखि जीव उपेक्षल सजनि गे
कि दगध दैवदुख देल
कमलनयन नहि आयल सजनि गे
कते दिन रहब हुनि आश
मणिमय हार भार भेल सजनि गे
मन जनु करिय उदास

हे मालती, तुम्हारा मुख म्लान क्यों है ? तुम्हारा भौंरा (प्रियतम) तुम्हें छोड़ कर प्रवासी क्यों हुआ ? हाय ! उसका हृदय कितना कठोर है।

चन्द्रमा ने कुमुदिनी का परित्याग कर दिया, और श्रीकृष्ण राधिका को छोड़ कर मधुपुर चले गये।

तुम्हारा शयन-गृह वीरान देखती हूँ, और तुम्हारा मन खिन्न। हाय ! विधाता ने तुम्हें कितना दुःख दिया।

तुम्हारे कमलनयन प्रियतम नहीं आये। हे सखी, तुम, अब और कितने दिन उनके पथ पर आँखें बिछाओगी ?

तुम्हारे मणिमय हार भार हो रहे हैं। फिर भी हे सखी, तुम चित्त को क्षुब्ध मत करो।

(२४)

आस लता हम लगाओल सजनि गे
नैनक नीर पटाय
से फल आब तरुणत भेल सजनि गे
आँचर तर ने समाय
काँच आम पिया तेजि गेल सजनि गे
तसु छै न अमने भान
दिन-दिन फल तरुनत भेल सजनि गे
पिआ मन करि ने गेआन

सभक पिया परदेश वसु सजनि गे
आयल सुमिरि सनेह
हमर कन्त निरदय भेल सजनि गे
मन नहिं बाढ़य विवेक
'धैरजपति' धैरज धरु सजनि गे
मन नहिं करिय उदास
ऋतुपति आय मिलत तोहिं सजनि गे
पुरत सकल मन आस

हे सखी, नयन के नीर से सींच कर मैंने आशा-लता लगाई। उसमें अब तरुणाई का उभार आ गया। अंचल के पर्दे में छुपाने से वह साफ़ छुपती तक नहीं।

हे सखी; कच्ची अमिया का परित्याग कर (निर्बुद्धि) प्रियतम प्रवासी हो गए। वह फल अनुदिन तरुणतम होता गया। लापरवाह प्रियतम को इसकी खबर तक नहीं।

प्रायः सभी सखियों के प्रियतम प्रवास में थे, किंतु वे सब स्नेह की डोर में बँध कर वापिस आ गए।

और एक मेरे प्रियतम हैं, जिनके (ममता-शून्य) हृदय में विवेक के लिए स्थान नहीं।

कवि 'धैरजपति' कहते हैं—हे सुन्दरी, धीरज धरो। दुःखी मत होओ। तुम्हारे प्रियतम ठीक वसंत के अवसर पर आयेंगे, और तुम्हारी मनोकामना पूरी होगी।

(२५)

तरुण वयस मदमातलि सजनि गे
सरस मदन शर मारि
रचल रसिक संग मन दय सजनि गे
रति विपरीत विचारि

ललित पयोधर ऊपर सजनि गे
शुभ कंचुकि संचार
मेरु युगल चढ़ि थिर भै सजनि गे
दामिनि करै विहार
फूजल चिकुर कलित मुख सजनि गे
स्वेद बूंद लसताहि
फूजल मोती निज कर लय सजनि गे
जलधर राशि अवगाहि
सुरति समापि लाजवश सजनि गे
हँसलि नाह मुख फेरि
जनि कुच-भार खेदित सजनि गे
सींचथि सुधारस हेरि
'हर्षनाथ' कवि शेखर सजनि गे
रसमय मन दय गाव
रसिक सुजन जन बुझताह सजनि गे
समुचित अभिमत भाव

हे सखी, तरुणाई के मद से मतवाली और मदन के वाण से बिद्ध होकर उस सुन्दरी ने अपने प्रियतम के साथ विपरीत रति करने का निश्चय किया।

हे सखी, उसके उभरते उरोजों में सुंदर कंचुकी विराजमान है, जैसे दो पर्वतों के ऊपर दामिनी विहार करे।

उसके केश बिखर गए हैं। मुख से पसीने की छोटी-छोटी बूँदें टपक रही हैं। ऐसा मालूम होता है कि बादल (बाल) अपनी अंजलियों में मोती (स्वेद बिंदु) भर-भर कर चंद्रमा (मुख) को स्नान कराए।

हे सखी, रति-क्रिया समाप्त हो जाने पर उसके प्रियतम ने हँस कर संकोच-वश मुँह फेर लिया, जैसे स्तन के भार से श्रांत वह अपनी प्रेयसी को मुस्कान की सुधा से सींच दे।

अंतिम पद का अर्थ स्पष्ट है।

(२६)

सरस वसन्त समय भेल सजनि गे
चकमक चाननि राति
चललि केलि गृह सुन्दरि सजनि गे
मदन मनोरथ माति
सेज लेटिय मुंह ढॉकल सजनि गे
कपट सुतल पहुँ हेरि
विहँसि उठल पहुँ देखि सजनि गे
लाज वदन लेल फेरि
निज कर वसन दूरि करि सजनि गे
अभरन सकल उतारि
कुच युग परसि विहुँसि पहुँ सजनि गे
पिवै अधर अवधारि
निज कर धरि अंकम भरि सजनि गे
शयन सुताओल नाह
दामिनि जलद नेह वश सजनि गे
करै दोउ एक चाह
नख छत भरल पयोधर सजनि गे
निरखि एहन होए भान
गिरि युग पर शोभित ज्यों सजनि गे
तारक दल लहु जान
'हर्पनाथ' कवि शेखर सजनि गे
रसमय मन दय गाव
रसिक सुजन जन बुझताह सजनि गे
समुचित अभिमत भाव

हे सखी, सरस वसंत ऋतु। और चकमक चाँदनी रात। ऐसे अवसर पर कोई सुन्दरी कामेच्छा से प्रेरित होकर केलि-गृह में गई।

सेज पर लेट कर उसने आँचल से मुँह ढक लिया, और कपट की नींद सो गई। लेकिन उसकी क़लई खुल चुकी थी।

उसका प्रियतम हँस कर चटपट उठ बैठा। संकोच में सिमट कर सुंदरी ने मुँह फेर लिया। उसके प्रियतम ने अपने हाथों से उसके शरीर के वस्त्र और अन्य सभी आभरण उतार फेंके, और उसके दोनों उरोजों का स्पर्श कर छक कर अधर रस का पान किया।

हे सखी, इतना ही नहीं उसने अपनी प्रिया को गोद में समेट कर सेज पर लिटा लिया, जैसे बादल और बिजली दोनों परस्पर प्रेम-क्रीड़ा करके हविस मिटा रहे हों।

और नख की खरोंचों से चिह्नित उस सुन्दरी के पयोधर को देख कर मालूम होता है, जैसे दो पर्वतों (उरोजों) के ऊपर अनेक छोटे-छोटे ताराओं के फूल चित्रित हों।

अंतिम पद स्पष्ट है।

फाग

संगीतमय त्योहारों में होली का त्योहार भी कम महत्त्वपूर्ण नहीं। होली से तीन-चार हफ्ते पूर्व ही संगीत की वेगवती धारा प्रवाहित होने लगती है। चारों ओर उत्साह और चहल-पहल होती है। वन-उपवन खिल उठते हैं। नसों में बिजली-सी दौड़ जाती है। टोले-मुहल्ले, वन-बाग़, खेत-खलिहान सभी कुमरियों की भांति चहचहा उठते हैं। युवतियों की आँखें आनन्द में नाच उठती हैं। फूल चिटखते हैं। भौंरे गुन्जार करते हैं, और मधु चू-चू कर बरस पड़ता है। होलिका-दहन के दिन गाँव के सभी तबक़े के लोग मजहबी घरौंदों को लाँघ कर इकट्ठे होते हैं। और टोले-मुहल्ले तथा गली-कूचे के कूड़े-करकट बटोर कर 'होलिका-दहन' के लिए एक निर्धारित स्थान पर संचित करते हैं। घास-फूस, खेतों के झाड़-झंखाड़ और लकड़ी के सूखे टुकड़ों के ढेर लगाने के बाद उनमें आग लगा दी जाती है। क्या खूब होता है, उस समय का दृश्य, जब संध्या-आगमन के कुसुम्भी रंग के पर्दे-सी लाल-लाल लपटें क्षण भर में बादल के कलेजे को चीरती हुई दूर-दूर तक फैल जाती हैं, और आनन्द की मौजों से जनता का हृदय-सरोवर लहरा उठता है। उस समय गाँव-भर के गवैयों की संगीत-महफ़िलें जमती हैं, और वे ढोल, डफ, झाल तथा मृदंग के स्वर में स्वर मिला कर एक विशेष गतिमय सुर में गाते चलते हैं। इन गवैयों की कई-कई टोलियाँ होती हैं, जो भिन्न-भिन्न गिरोहों में बँट कर गाती हैं। एक-एक टोली आठ-आठ या दस-दस गवैयों का मजमुआ होती है। केन्द्र में माला की सुमरिनी की तरह एक प्रधान गवैया होता है, जिसके ताल-सुर और इशारे पर ही इर्द-गिर्द के गवैये गाते और ताल देते हैं।

'होलिका-दहन' के पश्चात् पौ फटते ही, जब प्रकाश की बिखरी हुई मुक्तायें अस्त-व्यस्त होकर पृथिवी पर लुढ़कने लगती हैं, ग्रामीण गवैये भिन्न-भिन्न टोलियों में बँट कर एक शानदार जुलूस के रूप में गाँव की गलियों का चक्कर लगाते हैं। कितना शानदार होता है उस समय का नज़्ज़ारा जब निराली आन-बान के साथ संगीत के मजनूँ ग्रामीण गवैयों का जुलूस निकलता है। आगे-आगे ढोलक और मजीरे पर गत बजती चलती है। हरे-हरे बाँसों के सिरे पर लहराते रहते हैं रूपहले फरेरे। उनके पीछे होते हैं शरारती लड़कों के झुंड, जो ठेलम-ठेला करते हुए बाँस की बनी पिच-कारियों से बगलगीर तमाशबीनों और राहियों पर फुहारों की बारिश करते हैं। उनके अगल-बगल और पीछे ठाट से निकलता है—धीर गम्भीर गति में चलता हुआ लम्बा-सा जुलूस जो 'सुन रे भइया मोर कबीर, भले जी भले!' के नारे लगा-लगा कर सितम ढाता है, और रास्ते में जाती हुई भीड़ पर मकानों के छज्जों से रंग छिड़कती हैं अपनी चितवनों को दाएँ-बाएँ फेंकती हुई औरतें। और पुरुष भी उन्हें रंग से शराबोर कर देते हैं। यह जुलूस गाँव की प्रधान-प्रधान गलियों का चक्कर लगाकर किसी तालाब या नदी-किनारे पहुँचता है, जहाँ लोग स्नानादि से फ़ारिग होकर अपने-अपने ठिकाने लौटते हैं।

होली के अवसर पर गाये जानेवाले गीतों की गति, उनकी भाषा का बन्ध और स्वरों का सन्धान अत्यन्त मीठा होता है। गवैये एक-एक टेक की दर्जनों बार आवृत्ति करते हैं। प्रेम की रंगीन पुलकारियाँ और वैभववती वन-वीथियों के नैसर्गिक चित्रण, होली की संगीत-महफ़िलों में ताने-बाने का काम देते हैं। जनक के धनुष-यज्ञ और राम-सीता का स्वयम्वर-वर्णन भी इन गीतों में मर्मस्पर्शी ढंग से किया जाता है। लोक-संगीत के पारखी कद्रदानों ने होली के इन गीतों की मोतिये के महकते हुए गजरे से उपमा दी है जिसके एक भी शब्द-सुमन बिखर जाने से एकता की शृंखला छिन्न-भिन्न होने का भय रहता है—

(१)

नकबेसर कागा ले भागा
सइयाँ अभागा ना जागा
नकबेसर कागा ले भागा
उड़ि-उड़ि काग कदम चढ़ि बइसल
जोबना के रस ले भागा
आजु पलंग पर रोदना

हे सखी, नकबेसर लेकर काग उड़ भागा, और मेरे अभागे प्रियतम की नींद भी न टूटी।

काग उड़ कर कदम की डाल पर बैठा। हाय! वह जोबन का रस चूस कर उड़ भागा।

हे सखी, आज की रात पलंग पर मनहूसी रहेगी।

(२)

गोरी कहमा गोदओली गोदना
बँहिया गोदउली छतिया गोदउली
बाकी रहल दुनु जोबना
पिया के पलंग पर रोदना
गोरी कहमा गोदओली गोदना

री गोरी, कहो तुमने किस-किस अंग में गुदने गुदवाये?

बाँह गुदवायी। छाती गुदवायी। सिर्फ़ दोनों जोबन बाकी रह गये। (इसीलिए) प्रियतम के पलंग पर यह रोना है।

री गोरी, कहो तुमने किस-किस अंग में गुदने गुदवाये?

(३)

सारी रात पिया बँहिया मरोरलन्हि
बढ़निया छुअल नहिं जाय
सइयाँ बेदरदा मरमो ने जाने
बढ़निया छुअल नहिं जाय

हे सखी, (लगातार) रात के चारों पहर प्रियतम ने मेरी बाँह मरोड़ी : दर्द के मारे बढ़नी (झाड़ू) भी नहीं छू पाती।

हाय! बेदर्द बालम रस का मर्म नहीं जानता।

दर्द के मारे बढ़नी भी नहीं छुई जाती।

(४)

सावन-भादों में बलमुए हो
चुअइ छइ बंगला
सावन भादों में
पाँच रुपइया पिया नोकरी से लायल
गहना गढ़ाउ कि छवाउ बंगला
सावन-भादों में बलमुए हो
चुअइ छइ बंगला

रे बालम, सावन-भादों में मेरा बंगला चू रहा है।

तुमने नौकरी करके सिर्फ़ पाँच ही रुपये लाये हैं। गहने गढ़ाऊँ या बंगला छवाऊँ? (कुछ समझ में नहीं आता।)

रे बालम, सावन-भादों में मेरा बंगला चू रहा है।

(५)

नथिया के गूँज टुटि गेल रे देवरा
मोर नइहरा में अनारी सोनरवा
रात अन्हारी पिया डर लागे
पिया परदेश कड़के मोरा छतिया

रे देवर, मेरी नथिया का गूँज टूट गया। नैहर का सोनार निपट गंवार है।

रात अँधेरी है। प्रियतम परदेश में हैं। अकेली डर जाती हूँ। छाती रह-रह कर कड़क उठती है।

रे देवर, मेरी नथिया का गूँज टूट गया।

(६)

बुढ़िया पएँरा बतो बुढ़िया पएँरा बतो
कोना घर में सुतल छउ जुअनकी

री बुढ़िया, रास्ता बतलाओ। तुम्हारी युवती पतोहू किस घर में सोई हुई है?

(७)

जब छउँरी सुनइछइ गवनमा क दिनमा
तेलवा लगाइ छउँरी पोसइछइ जउवनमा

जब छोकरियाँ अपने द्विरागमन का समाचार पाती हैं तब वे तेल लगा कर अपन जोबन को पालती हैं।

(८)

सब सँ सुनर वर खोजिहे रे हजमा
हम अलबेली जउवन फुलगेनमा

रे हज्जाम, मेरे लिए खूब खूबसूरत दूल्हा तलाश करना। (क्योंकि) मैं स्वयं अलबेली हूँ, और मेरे जोबन फूल के गेंद हैं।

(९)

हम त जाइछी रहरिया के खेत रे
हम त जाइछी रहरिया के खेत रे
ढउआ नेने अइहे रे मिलनुआ

मैं अरहर के खेत जा रही हूँ। रे प्रेमी, तुम वहाँ पैसे लेकर जल्द आना।

(१०)

आजु पलंग पर धूम मचत
परदेशिया अयलन्हि हो रामा

आज की रात पलंग पर धूम मचेगी—ओ राम, मेरा परदेशी बालम घर वापिस लौटा है।

(११)

मोहन वंशीवाला हो खड़े पनघटव.
मोहन × × वंशी वाला
पनिया भरन कोना जाउ जमुनमा
मोहन वंशीवाला हो खड़े पनघटवा

वंशीवाला मोहन पनघट पर खड़ा है। री सखी, जल भरने यमुना-किनारे मैं कैसे जाऊँ?

वंशीवाला मोहन पनघट पर खड़ा है।

(१२)

ननदो अयलन्हि पाहुन अंगना
आजु पलंग पर रोदना
एहि ननदो के किछु पहिरन चहिअइन
बाजु बिजओठा चुचकसना
ननदो अयलन्हि पाहुन अंगना

री ननद, तुम्हारे पाहुन आँगन में आ गये। आज की रात तुम्हें पलंग पर रोना है।

मेरी ननद के पहनने के लिए कुछ चाहिये—बाजू, बिजौठे और चोली।

री ननद, तुम्हारे पाहुन आँगन में आ गये।

(१३)

व्रज के बसइया कन्हैया गोआला
रंग भरि मारय पिचकारी
एइ पार मोहन लहंगा लुटै सखि
ओइ पार लूटथि सारी
मँझधार कान्हा जोबन लूटथि
रंग भरि मारय पिचकारी
व्रज के बसइया कन्हैया गोआला

व्रजवासी कन्हैया जाति का ग्वाला है। गोपाङ्गनाओं को रंग भर-भर कर पिचकारी का निशाना बनाता है।

कन्हैया यमुना के इस पार लहंगा लूटता है। उस पार साड़ी, और बीच धार में जोबन लूटता है।

व्रजवासी कन्हैया जाति का ग्वाला है। वह रंग भर-भर कर गोपियों को पिचकारी का निशाना बनाता है।

(१४)

चले के बटिया चल गेलि कुबटिया
से गड़ गेल न
लवंगिया के काँट से गड़ गेल न
केहि मोरा कँटवा निकालथिन ननदोसिया
से केहि मोरा न
से हरतइ दरदिया
से केहि मोरा न
देवरा मोरा कँटवा निकालतइ ननदोसिया
से पिया मोरा न
से हरतइ दरदिया से पिया मोरा न

जाना चाहिये था बाट पकड़ कर। किंतु, मैं बाट छोड़ कर कुबाट चली गई। अतः तलुवे में लौंग के काँटे चुभ गये।

कौन तलुवे के काँटे निकालेगा? कौन मेरी पीड़ा हरेगा?

मेरा देवर तलुवे के काँटे निकालेगा, और मेरा प्रियतम मेरी पीड़ा हरेगा।

(१५)

बेरि-बेरि बरजू मे पिया बनिजरवा
ऊँखवा जनि रोपह रे गोंयरवा
जरवा गँवएले पिया खेत खरिहनमा
गरमी गँवएले कोल्हुअरवा
गोर लागु पँइया पड़ु गोला रे बरदवा
त पगहा तोड़ि आवह अंगनमा

तोरा लागि धयलि वरदा खरि रे बंगउरवा
त पिया लागि पाललि रे जोबनमा
कोल्हुआ तोर टुटउ मोहनमा तोहर न
रसवा वहि जाय रे गोंयरवा

रे व्यवसायी बालम, मैंने तुझे बार-बार मना किया कि तू गाँव के गोंयरे—हल्के में ईंख मत रोप ?

रे निर्दयी, तुमने जाड़े का मौसम खेत-खलिहान में बिता दिया। गर्मी कोल्हुआर (कोल्हू चलने का स्थान) में बिता दी।

रे गोला बैल, मैं तुम्हारे पैरों पड़ती हूँ। हजार-हजार बार आरजू करती हूँ। तुम खूँटे का पगहा—बन्धन तोड़ कर आँगन में चले आओ। (जिससे कोल्हू का चलना बन्द हो जाय, और मेरा मौजी प्रियतम यहाँ आकर दर्शन दे।)

रे बैल, मैंने तुम्हारे लिए सरसों की खरी और बिनौला रख छोड़े हैं, और प्रियतम के लिए जोबन को पाल-पोस कर बड़ा किया है।

रे निर्दयी प्रियतम, तुम्हारा कोल्हू टूट जाय, उसकी मशीन बन्द हो जाय, और ईंख का रस इधर-उधर बह कर बरबाद हो जाय।

(१६)

जनकपुर रंगमहल होरी
खेलथि दशरथलाल
लय पिचकारी राम लखन दोउ
भरि मुख मारत गुलाब
रंगमहल बिच जनकपुर
होरी खेलथि दशरथलाल

जनकपुर रंगमहल में राम-लक्ष्मण—दोनों बन्धु होली खेल रहे हैं। गुलाब जल से पिचकारी भर-भर कर वाराङ्गनाओं को शराबोर कर देते हैं।

जनकपुर रंगमहल में राम-लक्ष्मण—दोनों भाई होली खेल रहे हैं।

चैतावर

बतख-बेल (Aristolochia) की पंखड़ी में जिस तरह फनगे कैद हो जाते हैं, और लाख प्रयास करने के बावजूद दलचक्र की नलिका से शीघ्र मुक्त नहीं होते उसी तरह 'चैतावर' गीत-शैली की रसीली स्वर-लहरी श्रोताओं के मन को पहरों तक डिगने नहीं देती। चैत के महीने में ये एक कंठ से दूसरे कंठ में रूई से रोयेंवाले सेमल-पुंख-पत्र की भाँति दल-के-दल उड़ते फिरते हैं। वसंत ऋतु की मस्ती, और रंगीन भावनाओं का अनोखा सौन्दर्य इस गीत-शैली की अभिव्यक्ति में ताने-बाने का काम करते हैं। इनके छोटे-छोटे परिचित शब्दों में गजब का माधुर्य्य भरा है।

इस शैली के कुछ लोकप्रिय नमूने का मुलाहिजा कीजिये—

(१)

चैत बीति जयतइ हो रामा
तब पिया की करे अयतइ
अमुआ मोजर गेल
फरि गेल टिकोरवा
डारे-पाते भेल मतवलवा हो रामा
चैत बीति जयतइ हो रामा
तब पिया की करे अयतइ

ओ राम, जब चैत बीत जायगा, तो मेरे प्रियतम क्या करने आयेंगे? आम में बौर लग गये। बौर में टिकोले निकल आये, और टहनी-टहनी रस में मतवाली होकर झूमने लगी।

ओ राम, जब चैत बीत जायगा, तो मेरे प्रियतम क्या करने आयेंगे?

(२)

कोयली बोलल हमरी अटरिया
सूतल पिया मोर जागल रामा
आन दिन बोले कोइली साँझ भिनुसरवा
आज कोना बोले आधीरतिया
सूतल बालम मोरा जागल कोयलिया

हमारी अटारी पर कोयल कूक रही है। ओ राम, उसने मेरे सोये हुए बालम को जगा दिया।

रे कोयल, और दिन तो तुम सुबह-शाम कूका करती थी, लेकिन आज इस आधी रात के समय क्यूँ कूक रही हो ?

रे कोयल, तुमने मेरे सोये हुए बालम को जगा दिया।

(३)

बाईं आँख मोरा फरके हे ननदी
पिया आजु अयताह
कतनो सँवारौं माथे क बेनी
बार-बार सखि खसके हे ननदी
पिया आजु अयताह
खुलि-खुलि जाय बन्द अँगिया के
सिर क सारी सरके हे ननदी
पिया आजु अयताह

मेरी बाईं आँख फड़क रही है, री ननद ! आज मेरे प्रियतम आयेंगे।

मैं कितना ही सिर की गूँथी हुई चोटी सँवारती हूँ, री ननद ! लेकिन वह बार-बार खिसक जाती है। आज मेरे प्रियतम आयेंगे।

मेरी अंगिया के बन्द रह-रहकर खुल जाते हैं, और सिर की साड़ी सरक जाती है, री ननद ! आज मेरे प्रियतम आयेंगे।

(४)

नइ भेजे पतिया
आयल चैत उतपतिया हे रामा
नइ भेजे पतिया
बिरही कोयलिया शब्द सुनावे
कल न पड़य अब रतिया हे रामा
नइ भेजे पतिया
बेली-चमेली फूले बगिया में
जोवना फुलल मोरा अँगिया हे रामा
नइ भेजे पतिया

उत्पाती (शरारती) चैत आया; लेकिन मेरे (प्रवासी) प्रियतम ने खत नहीं भेजे।

विरही कोयल कूक रही है। हे सखी, जिसे सुन कर मुझे रात में नींद नहीं आती।

मेरे प्रियतम ने ख़त नहीं भेजे !

बाग़ में बेला और चमेली चिटख़ गईं, और हे सखी, मेरे शरीर में जोबन भी खिल गया !

हाय ! मेरे प्रियतम ने ख़त नहीं भेजे।

(५)

भोला बाबा हे डमरू बजावे रामा
कि भोला बाबा हे
भूत पिचास संग सब खेले
तांडव नाच दिखावे हे रामा
संग अर्धंग मातु पारवती
गले मुंडमाल लगावे रामा
शीश चन्द्र, श्रीगंग विराजे
साँप, बिच्छू लटकावे रामा

भोला बाबा डमरू बजाते हैं—ओ राम, साथ में भूत और पिशाच क्रीड़ा कर रहे हैं, और वह स्वयं तांडव नृत्य करते हैं।

बग़ल में अर्ध्दांङ्गिनी माँ पार्वती हैं। गले में मुंडमाल सुशोभित है। ललाट पर चन्द्रमा है। जूड़े में गंगाजी विराजमान हैं, और उनमें सर्प तथा बिच्छू लटकते हैं;

(६)

मुरली बजावे रामा कि मुरली वाला हे
मुरली बजावे रास रचावे
रहि-रहि जिया घबरावे रामा
मुरलि फुँकि-फुँकि सखियन बोलावे
रंग रस नाच नचावे रामा

मुरलीवाले श्रीकृष्ण मुरली बजा रहे हैं।

हे सखी, वह कभी मुरली बजाते हैं। कभी रास-क्रीड़ा करते हैं जिसे देख कर मेरा जी रह-रह कर घबड़ा उठता है।

मुरली फूँक-फूँक कर सखियों को बुला रहे हैं, और प्रेमपूर्वक रास-नृत्य करते हैं।

(७)

राधे संगवा हे
नाचत कन्धैया रामा
कांधे क मुख मुरली बिराजे
राधे क चुँदरिया रामा
कांधे क शिर मुकुट विराजे
राधे क सिर बेनिया रामा
कांधे क पीताम्बर शोभइन्हि
राधे क ओढ़नियाँ रामा

राधा के साथ श्रीकृष्ण नृत्य कर रहे हैं—ओ राम !

श्रीकृष्ण के होंठों के बीच मुरली है, और राधा की कमर में चुँदरी।

श्रीकृष्ण के शिर पर मुकुट है, राधा के शिर पर चोटी।
श्रीकृष्ण के शरीर में पीताम्बर है, और राधा के शरीर में ओढ़नी।

(८)

रतिया के देखलौं सपनवाँ रामा
कि प्रभु मोरा आयल
मोहि विरहिन के बान सम लागय
पपिहा क निठुर वयनमा रामा
खान-पान मोहि किछु ने भावय
न भावय सुख क सयनमा रामा
आप जाय कुब्जा रस बस भेल
छन नहि मोहि चयनमा रामा

रात को स्वप्न में देखा कि मेरे प्रियतम आये हैं।
मुझ विरहिणी को पपीहा की निठुर बोलीतीर की तरह लगती है। खाना-पीना कुछ नहीं भाता। प्रेम की सेज भी नहीं भाती—ओ राम !
श्रीकृष्ण स्वयं तो कुब्जा के प्रेम-पाश में बँध गये, और यहाँ मुझे क्षण-भर भी चैन नहीं मिलता।

(९)

नित प्रति वंसिया बजावे हे रामा
कि मोहन रसिया
मधु-मधु तान मधुर सुरवा में
सुनि-सुनि जिया तरसावे हे रामा
पीताम्बर की कछनी काछे
गले बैजन्ती सोहावे हे रामा
वंशी बजावे धेनु चरावे
गोपियन वन में बोलावे हे रामा

रसिक श्रीकृष्ण नित्य वंशी बजाते हैं—ओ राम !
मधुर सुर में उनकी संगीतमय मीठी तान सुनकर जी तरसने लगता है।

उनकी कमर में पीताम्बर की कछनी है, और गले में वैजयन्ती का हार सुशोभित है।

हे सखो, वह वंशी बजाते हैं। गाय चराते हैं, और मनोरंजन के लिए गोपांगनाओं को वन में बुला ले जाते हैं।

(१०)

आधी-आधी रतिया हो रामा
बोलइ छइ पहरुआ
अब ने जायब तोहिं पास
बैंगन तोड़े गेलौं ओहि बैंगनबरिया
गड़ि गेल छतिया में काँटा हो रामा
के मोरा छतिया क कँटवा निकालत
के मोरा दरद हरि लेत
देओरा मोरा छतिया क कँटवा निकालत
सँइया दरद हरि लेत हो रामा

आधी-आधी रात को पहरू बोला करता है—ओ प्रियतम ! अब तुम्हारे पास नहीं आऊँगी।

बैंगन तोड़ने के लिए मैं बैंगनबाड़ी में गई। वहां छाती में काँटा गड़ गया—ओ प्रियतम !

कौन मेरी छाती के काँटा निकालेगा ? और कौन मेरी छाती की पीड़ा हरेगा ?

देवर मेरी छाती के काँटा निकालेगा, और मेरा प्रियतम मेरी छाती की पीड़ा हरेगा।

आधी-आधी रात को पहरू ठनका करता है—ओ प्रियतम ! अब तुम्हारे पास नहीं आऊँगी।

(११)

चलु सखिया हे मलिया के बगवा रामा
कि चलु सखिया हे

डाला भरि लोढ़वौं चँगेरि भरि लोढ़वौं
कि भरवौं खोंइछवा रामा
कि चलु सखिया हे
फुलवा लोढ़ि-लोढ़ि हरवा गुँथएवौं
पिया क गरवा पेन्हएवौं
रात होत पिया घरवा में अयताह
सेजिया झारि गला लपटयताह रामा
कि चलु सखिया हे

हे सखी, माली के बगीचे में चलो ? मैं वहाँ डाला भर-भर कर फूल लोढूँगी, और खोछ भर लूँगी।

फूल लोढ़-लोढ़ कर हार गूँथूँगी, और प्रियतम के गले में पहनाऊँगी। रात होते ही मेरे प्रियतम घर आयेंगे। मैं सेज झाड़ कर उन्हें गले से लिपटाऊँगी।

हे सखी, माली के बगीचे में चलो।

(१२)

एहि रे ठँइया—एहि ठँइया
झुलनी हेरानी रामा
घरवा में खोजलौं दुअरा में खोजलौं
खोजि अयलौं सँइया क सेजरिया
कि एहि रें ठँइया

हाय राम ! इसी जगह मेरी झूलनी भूल गई।

घर में उसकी खोज की। दरवाजे पर खोजा, और प्रियतम की सेज पर भी खोज-ढूँढ़ कर नाउम्मीद हो गई।

हाय राम ! इसी जगह मेरी झूलनी भूल गई।

(१३)

चइत मास जोबना फुलायल हो रामा
(कि) सइयाँ नहिं आयल

सइयाँ नहिं आयल चइत मास आयल
रहि-रहि जिया घबरायल हो रामा
बेली फुलायल चम्पा फुलायल
सब वन फुलवा फुलायल हो रामा
अमवा फुलायल, महुआ फुलायल
मलिया क बगिया हो रामा
(कि) सइयाँ नहिं आयल
विरही कोयलिया शब्द सुनावय
विरहिनी अँखिया ने निदिया हो रामा
रहितथि पिअवा गरवा लगइतथि
आधि-आधि रतिया हो रामा
(कि) सइयाँ नहिं आयल

चैत में जोबन-रूपी फूल खिल गये। किंतु, प्रियतम नहीं आये।

प्रियतम नहीं आये, और चैत आ गया। रह-रह कर जी घबड़ा उठता है—ओ राम!

बेली खिल गई। चम्पा खिल गया। वन-उपवन में रंग-विरंग के फूल खिल गये।

आम में बौर लग गये। माली के बाग में महुआ खिल गया। किन्तु, प्रियतम नहीं आये।

कोयल कूक रही है। उसकी काकली सुन कर मुझ विरहिणी की आँखों में नींद कहाँ?

प्रियतम होते तो इस आधी रात के समय गले लगा लेते।

हाय, चैत आ गया, और प्रियतम नहीं आये।

(१४)

बहत बयरिया हो रामा
(कि) धीमी - धीमी रे
झिर-झिर झिर-झिर पवन बहय
अँखिया झिप - झिप जाय
बिन पाहुन छतिया फटय
सेजिया मोहि न सोहाय
(कि) धीमी - धीमी रे

पवन झकोरा मधुर मधुर
कथिला बहि दुख दीऊ
जाऊ बुझाऊ पाहुना
धनिक विरह सुधि लीऊ
(कि) धीमी - धीमी रे
बहत बयरिया हो रामा

धीमी-धीमी बयार बह रही है।

हवा झिहिर-झिहिर बह रही है। नींद की खुमारी से आँखों की पलकें बन्द हो जाती हैं। प्रियतम के विरह में छाती कड़क उठती है, और सेज नहीं भाती।

हवा मन्द-मन्द बह रही है।

री हवा, तू अपने मन्द-मन्द झकोरे से दुख देती है? जा कर मेरे प्रियतम से कह दो कि वह अपनी प्रिया के विरह की खबर ले।

हवा धीमी-धीमी बह रही है।

मलार

'तिरहुति' और अन्य अनेक गीत-शैलियों के रहते हुए भी 'मलार' के बिना मिथिला के लोक-संगीत की दुनियाँ उजाड़ थी। संसार के प्राचीनतम ग्रन्थ ऋग्वेद में पर्जन्य के स्तुति-गान में एक जगह कहा गया है—'हे पर्जन्य, तुम्हारे प्रसाद से ही नाना विध ओषधियां विश्व-विचित्र-रूप हो उठी हैं। हमारे जीवन में भी तुम नित्य विचित्र कल्याण-दान करो। जब तक तुम नहीं आये थे, तब तक सारी पृथिवी मरी हुई, सूखी हुई, सपाट थी। तुम्हारे आते ही सब कुछ नाना रस, नाना भावों से भर उठे।' मिथिला की ग्रामीण कविता के क्षेत्र में 'मलार' का उद्भव वैदिक पर्जन्य के आगमन की भाँति ही सुन्दर, सुशीतल और कल्याणकारी है।

'मलार' का अन्तरंग बिल्लौरी काँच की तरह रंगीन है। इनमें हमें जीवन के प्यार, मिलन, आकर्षण, उसके मधुमय स्वप्न और सुनहले रंग के आभास दृष्टिगोचर होते हैं। इसके तरानों में मानव-हृदय का प्रेम कवि की अनुभूति की आग में तप कर कुन्दन बन गया है, और विरह की जड़ हृदय के पाताल में इतनी दूर चली गई है कि सूर की राधा की निम्न उक्ति स्मरण हो आती है—

> मेरो नैना बिरह की बेलि बई
> सींचत नीर नैन के सजनी
> मूल पताल गई

लेकिन 'मलार' का आंतरिक सौन्दर्य सुन्दर लय और भावाभिव्यंजना के पूरे उतार-चढ़ाव के साथ पढ़े जाने पर ही व्यक्त होता है। क़ागज़ पर छपी हुई इसकी काली पंक्तियों के पढ़ लेने मात्र से ही इसके रूप-विधान और

रमणीयता का अन्दाज़ नहीं मिलता। स्व० कवीन्द्र श्रीरवीन्द्रनाथ के मित्र प्रसिद्ध रहस्यवादी कवि डब्ल्यू० बी० यीट्स ने लिखा है—

I have always known that there was something I disliked about singing, and I naturally dislike print and paper, but now at last I understand why, for I have found something better. I have just heard a poem spoken with so delicate a sense of its rythm, withso perfect a respect for its meaning, that if I were a wise man and could persuade a few people to learn the art I would never open a book of verses again.

Ideas of Good and Evil

अर्थात् गाने में कुछ ऐसी बात होती है, जो मुझे सदा से ही भद्दी लगती आई है, और काग़ज़ पर छपी हुई कोई कविता मुझे अच्छी नहीं लगती। इसका कारण यह है कि मैंने एक शख़्स को ऐसी सुन्दर लय और भावों के पूरे उतार-चढ़ाव के साथ कविता-पाठ करते सुना कि यदि मेरे कथनानुसार लोग कविता पढ़ने की कला जान लें, तो मैं कभी कोई काव्य-पुस्तक पढ़ने के लिए नहीं खोलूँ।

जिन लोगों ने मैथिल रमणियों के कल-कंठ से 'मलार' का गान सुना है, उन्हें भी यीट्स साहब की तरह किसी काव्य-पुस्तक को खोल कर पढ़ने के लिए कष्ट गवारा न करना पड़ेगा। छन्द और लय की दृष्टि से भी लोक-साहित्य के इतिहास में 'मलार' का स्थान बेजोड़ रहेगा। छन्द और लय के साथ-साथ इसमें संगीत का पुट तो इसकी रमणीयता को चारचाँद लगा देता है।

"मलार" पावस ऋतु में स्त्री-पुरुष दोनों गाते हैं। लेकिन दोनों के गाने के ढंग अलाहिदा-अलाहिदा हैं। औरतें इन्हें गाने के वक़्त किसी साज-बाज की मदद नहीं लेतीं। हिंडोले पर बैठ कर वे सम्मिलित स्वरों में गाती हैं। पुरुष साज-बाज की मदद से गाते हैं, और जब वे पंचम में पूरी आवाज़

के साथ राग अलापते हैं, तब कभी-कभी तबले और मृदंग (थाप की चोट से) कड़क कर टूक-टूक हो जाते हैं ।

इस प्रांजल गीत-शैली के कुछ नमूने देखिये—

(१)

चहुँ दिशि घेरै घन करिया हे आली
झहरि-झहार बूँद खँसए पलंग पर
भिजत कुसुम रंग सड़िया
चुवत भवन सौं लागै कठिन-सन
पिय बिनु शून्य अटरिया
पथ भेल पिच्छिर पिया भेल चंचल
चाहिय कुसुम चुंदरिया
'सुकविदास प्रभु तोहरें दरस कैं
हरि के चरन चित लइया

हे सखी,चारों ओर सघन काली घटा उमड़ आई। बूँदें झहर-झहर कर पलंग पर गिर रही हैं, और मेरी सुन्दर कुसुम रंग की चुंदरी भींग रही है।

मेरी यह (छोटी-सी फूस की झोंपड़ी) चू रही है, जो बड़ी दुखदायक प्रतीत होती है।

प्रीतम के बिना आज मेरा संसार सूना है। कीचड़ से राह-बाट पिच्छिल हो गए, और मेरे प्रियतम प्रवासी हैं।

हे सखी, मुझे कुसुम रंग की चुंदरी चाहिए ।

कवि कहता है—हे नायिके, तुम अपने प्रवासी प्रियतम के दर्शन के लिए परमात्मा के चरण का चिन्तन करो ।

(२)

आजु मोहन कै आँगन सखि हे
बड़ि-बड़ि बूँद गहागहि बरिसै
धरती क बूँद सुहावन

जेहो मुनरी छल आँगुरि कसि-कसि
सेहो भेल हाथ क कँगन
हम सौं प्रीति तेजल मन मोहन
कुब्जा जीव कै बैरन

हे सखी आज मोहन के आँगन में बड़ी-बड़ी बूँदें गिर रही हैं। अहा! पृथिवी पर आसमान से गिरती हुई ये बूँदें कितनी सुहावनी लगती हैं।

हे सखी, मैं (प्रियतम के विरह में इस क़दर सूख गई हूँ कि) जो अँगूठी (कभी) मेरी उंगली में मुश्किल से आती थी, वह आज मेरी कलाई का कंकण हो गई है।

हे सखी, (कुब्जा के प्रेम-पाश में उलझ कर) मोहन ने मुझसे प्रीति छुड़ा ली। हाय! कुब्जा मेरे प्राण की बैरिन हो गई।

(३)

कारि-कारि बदरा उमड़ि गगन माँझे
लहरि बहे पुरवइया
मत बदरा बूँद-बूँद झहरह
धराए पलंग पर भिजत—
कुसुम रंग सड़िया
रे बदरा मति वरसु एहि देशवा
रे बदरा बरिसु ललन जी के देशवा
बदरा हुनके भिजाव सिर-टोपिया रे बदरा
एक त बैरिन भेल सासु रे ननदिया
दोसर बैरिन तुहुँ भेले रे बदरा
मति वरसु एहि देशवा
बदरा कहमे सुखएबो में लालि चुनरिया
कहमे सुखएबो नागिन केशिया रे बदरा
मति बरसु एहि देशवा

आकाश में काले-काले बादल उमड़ रहे हैं। पूर्वी हवा लहरा रही है।

रे बादल, बूंद-बूंद मत बरसो। पलंग पर रक्खी हुई मेरी कुसुम रंग की साड़ी भींग जायगी।

रे बादल, इस देश में मत बरसो। परदेश में बरसो, जहाँ मेरे प्रियतम रहते हैं। उनके सिर की टोपी भिगो दो।

रे बादल, एक तो मेरी सास और ननद बैरिन हैं। दूसरे तुम भी शत्रु हो रहे हो। कृपा कर इस देश में मत बरसो।

रे बादल, मैं अपने नागिन-से बल खाते काले बाल और अपनी यह लाल चुँदरी कहाँ सुखाऊँगी? रे बादल, इस देश में मत बरसो। परदेश में बरसो, जहाँ मेरे प्रियतम रहते हैं।

(४)

परवश परल कँधैया रे दैया
आएल जेठ हेठ भेल वर्षा
मदन दहन तन सहिया रे दैया
नित दिन छन-छन हरि मन जायत
नयनों सुरति लगैया रे दैया
नींद पवन भेल पहुँ पर चित गेल
चित लेल मदन गोपाला रे दैया
'सुकविदास' पहुँ सुछवि दरश कें
हरि क चरन चित लैया रे दैया

नायिका का पति परदेश चला गया है। इधर पावस ऋतु का आरम्भ हो गया है। विरहिणी के प्राण छटपटा रहे हैं। जिस समय पुरानी मधुर स्मृतियाँ सामने आती हैं, तो विरह की यंत्रणा और निराशा की थपेड़ों से घबड़ा कर वह कहती है—हाय, मेरा कन्हैया किसी के नेह-जाल में उलझ गया। जेठ आया। वर्षा ऋतु निकट आ गई। कामदेव के बाणों से उत्पन्न ज्वाला शरीर को जला रही है, और मेरा अनुरागी मन प्रतिक्षण अपने निर्मोही मोहन की याद में तड़प रहा है। उनके दर्शन को आँखें तरसती हैं। नींद हवा बनकर उड़ गई है, और प्रियतम किसी नाज़िनी के कूचे में रम रहे हैं। हाय, प्रियतम ने मेरा

मन हर लिया। 'सुकविदास' कहते हैं—हे नायिके, यदि तुम अपने प्रियतम से मिलना चाहती हो, तो परमात्मा के चरण का चिन्तन करो।

(५)

बड़ रे चतुर घटवरवा हे आली
दुरि सौं बजौलन्हि नाव चढ़ौलन्हि
खेवि लए गेलाह मँझधरवा
नाव हिलौलन्हि मोहि डेरऔलन्हि
कैलन्हि अजब खयलवा
अँचरा धएलन्हि मोहि झिकझोरलन्हि
तोरलन्हि गजमोती हरवा
'सुकविदास' कह तोहरै दरस कैं
युग-युग जीवै घटवरवा

हे सखी, वह नाविक बड़ा धूर्त है। (मैं अपने विचारों में डूबी, दोनों लोकों से बेखबर) डगर पर जा रही थी कि उसने मुझे आवाज देकर बुलाया, अपनी नौका पर बिठा लिया, और (चंचल डाँड़ों से) खेकर बीच धारा में ले गया। इस पर भी सितम यह कि उसने नौका डुला दी, जिससे मेरा दिल सर्द हो गया उसने मेरा आँचल पकड़ लिया। और (नियम, धरम, शरम, सब को धता बतला कर) मुझे पकड़ कर मेरा अंग-प्रत्यंग झकझोर डाला और मेरा मोती का हार तोड़ कर इधर-उधर बखेर दिया। 'सुकविदास' कहते हैं कि उस भोली-भाली नायिका का दर्शन करने के लिए वह नाविक युग-युग जीए।

(६)

कहु ने सगुन केर बतिया हे आली
चारि मास वरषा ऋतु गत भेल
विरह दगध भेल छतिया
आओन आओन हरि मोहि कहि गेल
कहियो ने लिखै मोहि पतिया

'सुकविदास' कह तोहरै दरश बिन
कोना खेपब दिन-रतिया

हे सखी,सगुन विचार कर कहो कि मेरे प्रियतम कब आयेंगे ? वर्षा ऋतु के चारों महीने बीत गये, और विरह की आग से मेरी छाती दग्ध हो गई। मेरे प्रियतम ने वायदा किया था कि मैं आऊँगा। लेकिन उन्होंने एक काग़ज़ का टुकड़ा भी नहीं भेजा। नायिका प्रेमातिरेक से विचलित होकर (कवि के शब्दों में) कह रही है—हे प्रियतम, मैं तुम्हारे बिना इन रातों को कैसे काटूँ?

(७)

बिसारि गेल पहुँ मोरा हे आली
प्रेम पौध छल हुनिक लगाओल
विरह उठत तन जोरा हे आली
हमर वयस भेल सोलहक लगभग
वइसि रहल कित ओरा हे आली
कहि गेल माघ बीति गेल फागुन
तैओ ने दरश देल चोरा हे आली
मंगनिराम' कवि मन नहि लागय
शूल बढ़ल उर मोरा हे आली

हे सखी, मेरे सजन मुझे भूल गये। उन्होंने प्रेम का जो पौधा लगाया था, वह अकाल ही मुरझाना चाहता है। शरीर में विरह की लपटें जोरों से धधक रही हैं। हे सखी, मेरी उम्र करीब सोलह वर्ष की है, और मेरे प्रियतम इश्क़ के कूचे से निकल कर प्रवासी हो रहे हैं। उन्होंने माघ में आने का वायदा किया था; लेकिन फागुन भी बीत गया और अभी तक उस चित्त-चोर ने दर्शन नहीं दिये। कवि 'मंगनीराम' कहते हैं कि प्रियतम की गैर-हाजिरी में नायिका का दिल घुट रहा है, और उसके हृदय में शूल पैदा हो गई है।

(८)

लिखि आएल योगक पाँती हे मधुकर
जब सौं श्याम गेल मधुपुर में
निशि दिन कड़िकए छाती हे मधुकर
निशि नहिं चैन भवन नहिं भावत
कखन देखब भरि आँखी हे मधुकर
सुन्दर श्याम युगल चरणागत
कुवरि हरल हरि माती हे मधुकर

हे मधुकर, योग की पाँती आई है।

जब से प्यारे कृष्ण मधुपुर चले गये तब से दिन-रात छाती कड़का करती है।

रात में चैन नहीं मिलता। भवन नहीं भाता। जाने कब उन्हें आँखें भर कर देखूँगी। शायद कुब्जा ने उनकी मति बौरा दी। हम प्यारे श्रीकृष्ण के दोनों चरणों की शरण जायँ।

हे मधुकर, योग की पाँती आई है।

(९)

श्याम निकट नै जाएव हे ऊधो
वरषा वादरि बुँद चुअइय
जमुना जाय ने नहाएव हे ऊधो
तीसिक तेल फुलेल बनइअ
मे नहिं अंग लगाएव हे ऊधो
मधुपुर जाएव कमल मँगाएव
नख मँ पत्र लिखाएव हे ऊधो
हरि मधुपर गेल कुवरिक बस भेल
हम सखि भसम लगाएब हे ऊधो
'सुकविदास' प्रभु तोहर दरश कैं
हरिक चरण चित लाएव हे ऊधो

हे ऊधो, मैं श्याम के निकट नहीं जाऊँगी। आँखों से पावसकालीन बादल की तरह आँसुओं की झड़ी लग गई है। अब यमुना में पैठ कर स्नान क्यूँ करूँ? आँखों के सजल बादल नहलाने के लिए पर्याप्त हैं। तीसी के तेल और फुलेल बनते हैं। उन्हें भी अंग में नहीं लगाऊँगी। मधुपुर जाऊँगी। कमल के पत्ते लाऊँगी। उस पर नख की क़लम से पाँती लिखूँगी। हे सखी, हरि मधुपुर चले गये। कुब्जा की स्नेह-डोर में उलझ गये। मैं भस्म रमा कर जोगन हो जाऊँगी।

'सुकविदास' कहते हैं—हे व्रजाङ्गने, श्याम के दर्शन के लिए उनके चरण में चित्त लगाओ।

(१०)

वरिसन चाह बदरवा हे ऊधो
खन वरिसय खन गरिजय
खन दामिन दमकय खन खन बहय बयरवा
झिंगुर दादुर शोर करइअ
विरह दग्ध भैल छतिया हे ऊधो
चारि मास हम आस लगाओल
घर नहि आयल पियरवा हे ऊधो
'सुकविदास' प्रभु तोहर दरश कैं
घुरि-फिरि करत निहोरवा हे ऊधो

हे ऊधो, बादल बरसना ही चाहता है। कभी बरसता है। कभी गरजता है। कभी बिजली कौंधती है, और कभी बयार लहर-लहर कर बहती है। झींगुर और मेढ़क शोर मचाते हैं, और मेरी छाती विरह की ज्वाला से लहर उठती है। चार महीने—आषाढ़, सावन, भादों और आश्विन मैंने आशा लगा रक्खी, किन्तु मेरे प्यारे कृष्ण वापिस नहीं आये। इस प्रकार व्रजाङ्गनायें कृष्ण के दर्शन के लिए बारम्बार विकल हो रही हैं।

(११)

मोहन मुरली बजैया रे दैया
चैत वैशाख के धूप लगइअ
शीतल बिअनि डोलैया रे दैया
जेठ अषाढ़क बुन्द पड़इअ
भींजत सुरुख चुन्दरिया रे दैया
साओन भादोंकेर उमड़ल नदिया
नैयो ने खेवय कन्हैया रे दैया
आसिन कातिक केर पर्व लगइअ
सखि सभ गंगा नहैया रे दैया
अगहन पूस केर जाड़ गिरइअ
के दिअ लाल तुरैया रे दैया
माघ फागुन केरि रंग बनइअ
सखि सभ धूम मचैया रे दैया

कृष्ण ने बाँसुरी फूँकी।

हे सखी, चैत, वैशाख की धूप तीखी होती है। जरा शीतल पंखे तो डुलाओ।

हे सखी, जेठ, आषाढ़ में बूँदें गिरने लगती हैं। मेरी सुर्ख रंग की चुंदरी भींग जायगी।

हे सखी, सावन, भादों में नदी और तालाब उमड़ पड़े किन्तु, मेरे केवट कृष्ण नाव खेने नहीं आये।

आश्विन, कात्तिक में पर्व लगता है। हमारी सभी सखियाँ गंगा नहाती हैं।

अगहन, पौष में जाड़ा पड़ता है। हे सखी, लाल रजाई लाकर मुझे कौन दे ?

माघ, फागुन में होली की धूम है। सभी सखियाँ रंग-क्रीड़ा कर रही हैं।

(१२)

ऊधो ककर नारि हम बाला
हरि मधुपुर गेल परम कठिन भेल
दय गेल विरहक भाला
बड़ अनुचित भेल सुपुरुष तेजि गेल
तेजि गेल मदन गोपाला
नींद हरित भेल पहुँ पर चित गेल
चित लेल नन्दक लाला
तरुण वयस भेल पिय परदेश गेल
ओतहिं रहल नन्दलाला
हरि सों विनति करु गोरी सँ कवि कहु
तुअ बिनु कमल विहाला

हे ऊधो, मैं बाला किसकी नारी हूँ ?

कृष्ण मधुपुर चले गये। और मेरे दिल में विरह की बर्छी चुभो गये। यह मेरे लिए एक कठिन समस्या हो गई।

यह बड़ा अनुचित हुआ कि मेरे प्रियतम कृष्ण मेरा परित्याग कर प्रवासी हो गये। नींद काफ़ूर हो गई। वह जाने किस नाज़िनी के कूचे में रम गये ? हाय ! उनने मेरा मन हर लिया।

हे ऊधो, मैं तरुणी हो चली। प्रियतम परदेश चले गये, और वहीं रम गये।

कवि कहता है—हे गोरी, तुम अपने मधुकर श्रीकृष्ण से आरज़ू-मिन्नत करो कि तुम्हारी गैर-हाज़िरी में तुम्हारा कमल खिन्न है।

(१३)

सखि रे विसरल मोहि मुरारि
प्रथम अषाढ़ तेजल मनमोहन
कोना खेपब अन्हियारी

रिमझिम रिमझिम सावन बरिसय
सोचथि नार अटारी
मदन बूँद मेघ बरिसय भादव
सब गोपिगन जिव हारी

हे सखी, मेरे कृष्ण मुझे भूल गये। पावस ऋतु—आषाढ़ में ही श्रीकृष्ण ने मेरा परित्याग कर दिया। मैं यह अँधेरी रात कैसे काटूँगी? श्रावण में बूँदें रिमझिम रिमझिम बरस रहीं हैं। स्त्रियाँ अपनी-अपनी अटारी पर वियोगाकुल हो रही हैं। भादों में बादल काम की बूँदें बरसाने लगे। गोपियों की उम्मीदों पर पानी फिर गया।

(१४)

सखि रे तेजल कुंजविहारी
आएल अषाढ़ विरह मदमातल
नहिं देखिय गिरिधारी
आब केहि संग झूलब हिंडोला
सावोन तेजल मुरारी
भादव यामिनि यम सम बीतल
दिवस लागय अन्हियारी
आसिन विनति करय कवि 'दुखरन'
गोपिअहिं भेंटल मुरारी

हे सखी, मनमोहन ने मेरा परित्याग कर दिया। विरह की मस्ती लिए आषाढ़ आ गया। किन्तु, श्रीकृष्ण को कहीं नहीं देखती? अब किसके साथ हिंडोले में बैठ कर झूले झूलूँगी। श्रावण में श्रीकृष्ण ने मेरा साथ छोड़ दिया। भादों की भयावनी रात पहाड़-सी लगती है। दिन में भी धुंध मालूम देती है। कवि 'दुखरन' कहते हैं;—आश्विन में गोपियों को श्रीकृष्ण मिल गये।

(१५)

सखि रे बहुरि कान्ह नहिं आए
तन मन विलखय सब गोपी जन केर

कुब्जा कान्ह लोभाए
मधुपुर जाय रहल मनमोहन
गोकुल नगर विहाए
गोकुल विकल पड़य नरनारी
कुबरी हरि मन भाए
रास विलास सभै हरि बिसरल
गिरिधारी गुन गाए

हे सखी, श्रीकृष्ण वापिस नहीं आये। गोपिकाएँ शिर धुन-धुन कर विलख रही हैं। कुब्जा ने श्रीकृष्ण को वशीभूत कर लिया। मनमोहन मधुपुर में छा गये, और गोकुल का विस्मरण कर दिया। गोकुल के स्त्री-पुरुष सब व्याकुल हो रहे हैं, और कृष्ण कुब्जा के हो गये। उनने रास और क्रीड़ा-कौतुक सब भुला दिया। हे सखी, अब हम उनके गुण का ही कीर्त्तन करें।

(१६)

ऊधव पाँती मोहि न सुहाती
तेजि व्रजवाला गेल हरि मधुपुर
शरद समैया क राती
हम सौं बैर प्रीति कुब्जा सौं
श्याम भेल संघाती
जा घरि मदन गोपाल नहिं आओत
विरह दगध हैत छाती
'सुजनदास' प्रभु तोहर दरश बिनु
पाँती मोहि न सोहाती

हे ऊधो, मुझे पाँती नहीं भाती। व्रजाङ्गनाओं का परित्याग कर श्रीकृष्ण मधुपुर चले गये। शरद ऋतु की रात है। प्यारे श्रीकृष्ण ने हमसे वैर करके कुब्जा से नेह जोड़ लिया।

हाय! वह कितने निष्ठुर हैं?

यदि वह वापिस नहीं आये तो मेरी छाती विरह की आग में दग्ध हो उठेगी।

कवि 'सुजनदास' कहते हैं—हे श्याम, तुम्हारे दर्शन के बिना मुझे पाँती नहीं भाती।

(१७)

कहु ने सिया जी क बतिया हे लछुमन
भवन छोड़अलौं वर्नाहि पठअलौं
विरह दगध भेल छतिया
सगरि राति हम बइसि गमअलौं
नींद गेल हुनि अँखिया
भाय छथि भवन भाउज छथि वन-वन
केहन कठिन भेल छतिया हे लछुमन

हे लक्ष्मण, सीता के हालात कहो। वह निर्वासित होकर विजन वन में चली गई, और विरह की आग से छाती जल उठी। सारी रात हमने बैठ कर बिताई है। नींद काफ़ूर हो गई है। भाई यहाँ हैं। भावज वन में। कितना कठोर हृदय है उनका! हे लक्ष्मण, सीता के हालात कहो?

चांचर

'चाँचर' शब्द का अर्थ है परती छोड़ी हुई जमीन। पावस ऋतु में खेत रोपते हुए कमकर अथवा श्रमिक दो दलों में बँट कर 'चाँचर' गाते हैं। यह प्रश्नोत्तर के रूप में गायी जाती है। एक दल सम्मिलित अथवा अर्ध-मिश्रित स्वर में प्रश्न करता है। दूसरा उसका समीचीन उत्तर देता है। ऊपर से वारिश होती रहती है, और नीचे वे घुटने-भर जल में कमर झुकाये परती छोड़ी हुई जमीन को धान से आबाद करते जाते हैं। गाने का सिल-सिला बीच-बीच में इस जोशो-खरोश के साथ चलता है कि आकाश का पर्दा फटने लगता है।

'चाँचर' शैली के शत-प्रति-शत गीत अपने रचयिताओं के नाम से शून्य हैं। यह श्रमिक, पददलित, दीन, शोषित और सर्वहारा प्राणियों का प्रिय गीत है। क्षुधा-ग्रस्त घिनौने वातावरण के बीच जिन्दगी की ताजगी और हरापन को बरक़रार रखना 'चाँचर'—रचयिताओं की पैनी सूझ का अभिनन्दनीय सबूत है, और गरीबी के दामन में सन्तोष के चमकीले गोटे लगाना इनकी कला-परम्परा का केन्द्र-बिन्दु। थकान और ठोकर से ऊब कर हवा के डैनों के सहारे उड़ना इनके अपढ़ कलाकारों को गवारा नहीं होता। डरावनी गहराइयों को नापनेवाली उनकी कला व्यक्ति के अन्दर-बाहर के उस मुरदार घाव का इलाज ढूँढती है जिससे व्यक्तित्त्व चुटीला और लहूलुहान रहता है।

(१)

कोन मासे हरिअर ढूँठ पकरा
कोन मासे हरिअर धेनु गाय

कोन मासे हरिअर पातर तिरिया
कोन मासे गौन कैने जाय

चइत मासे हरिअर ठूँठ पकरा
भादो मासे हरिअर धेनु गाय
अगहन मासे हरिअर पातर तिरिया
फागुन मासे गौन कैने जाय

किस महीने में पाकर का ठूँ गाछ हरा होता है ?
किस महीने में गाय हट्टी-कट्टी रहती है ?
किस महीने में पतली तरुणी मस्त हो जाती है ?
किस महीने में उसका द्विरागमन होता है ?
चैत में पाकर का ठूँ गाछ हरा होता है।
भादों में गाय हट्टी-कट्टी रहती है।
अगहन में पतली तरुणी मस्त हो जाती है।
और फागुन में उसका द्विरागमन होता है।

(२)

कोन फूल फुलाइछइ कोठरिया
कोन फूल फुलाइछइ अकास
कोन फूल फुलाइछइ समुन्दर में
कोन फूल फुलाइछइ नेपाल

पान फूल फुलाइछइ कोठरिया
कसइलि फूल फुलाइछइ अकास
चूना फूल फुलाइछइ समुन्दर में
कथ फूल फुलाइछइ नेपाल

कौन फूल कोठरी में खिलता है ? कौन फूल आसमान में खिलता है ? कौन फूल समुन्दर में खिलता है ? और कौन फूल नेपाल में खिलता है ?

पान का फूल कोठरी में खिलता है। सुपारी का फूल आसमान में

खिलता है, चूने का फूल समुन्दर में खिलता है, और कथ का फूल नेपाल में खिलता है।

(३)

कतय जे कृष्ण जी जनम लेल
कतय भेलइन छठिआर
कतय हुनि बसिया बजओलन्हि
ककरा सँ लेलन्हि महादान

मथुरा जे कृष्ण जी जनम लेल
गोकुला भेलइन छठिआर
वृन्दावन में बसिया बजओलन्हि
राधा सँ लेलन्हि महादान

कहाँ श्रीकृष्ण ने जन्म लिया?
कहाँ उनका छठिआर हुआ?
कहाँ उन्होंने बाँसुरी बजायी?
और किससे महादान लिया?

मथुरा में श्रीकृष्ण ने जन्म लिया। गोकुल में उनका छठिआर हुआ। वृन्दावन में उन्होंने बाँसुरी बजायी? और राधा से उन्होंने महादान लिया।

(४)

कतय सँ उड़लन्हि हनुमत वीर
कतय रोपलन्हि दुनु बाँह
ककरा जे हाथ क मुँदरिका
ककरा खोंइछ पड़ि जाय

अयोध्या सँ उड़लन्हि हनुमत वीर
लंका रोपलन्हि दुनु बाँह
रामजी क हाथ के मुँदरिका
सीता क खोंइछ पड़ि जाय

कहाँ से वीर हनुमान उड़े? कहाँ दोनों बाँह रोप दी? और किसके हाथ की अंगूठी किसकी खोंछ में जा गिरी?

अयोध्या से वीर हनुमान उड़े, लंका में दोनों बाँह रोप दी और राम के हाथ की अँगूठी सीता की गोद में जा गिरी।

(५)

कारि-कारि भइंसिया के बेचहु
किनह धेनु जोरि गाय
दिन भर चरइहे कुश कतरा
साँझे दीहे खूँटवा चढ़ाय

तोहरा सहित अनधन बेचवइ
किनवइ करेहा जोरि भइस
रात-भर चरयवइ कुश कतरा
भोरे देवइ खुँटवा चढ़ाय

के तोरा कुटि पिसि देतऊ
के देतऊ रोटिया पकाय
के तोरा कोरा पइसि सुततऊ
के तोरा देतऊ जगाय

चेरिया त कुटि पिसि देतइ
माय देता रोटिया पकाय
लठिया त कोरा पइसि सुततइ
पड़रू देता पसर जगाय

चेरिया त जयतऊ ससुररिया
अम्मा तेजतऊ परान
लठिया त टुटि फुटि जयतऊ
पड़रू के लेतऊ चोराय

चेरिया के देवइ गोर बेरिया
अम्मा के अमृत पिलाय
बिट पइसि लाठी काटि लयवइ
पड़रू के सुतयवइ गोरथारि

पत्नी कहती है—रे प्रियतम, काली-काली भैंसों को बेंच कर गाय की एक अच्छी जोड़ी खरीद लो। उसे दिन-भर कुश-कतरा चराना, और साँझ होते-होते खूँटे पर चढ़ा देना।

पति ने कहा—हे गोरी, मैं तुम्हारे सहित अन्न-धन बेंच डालूँगा, और अच्छी नस्ल की गुजराती एक जोड़ी भैंस खरीदूँगा जिसके सींग ऐंठे हुए होंगे। उसे रात-भर कुश-कतरा चराऊँगा, और भोर होते-होते खूँटे पर चढ़ा दूँगा।

पत्नी कहती है—रे प्रियतम, कौन तुम्हें कूट-पीस कर देगी? कौन तेरे लिये रोटी पकायेगी? कौन तेरी गोदी में पैठ कर सोयेगी, और कौन पिछली पहर रात में तुम्हें पसर चराने के लिये जगा देगा?

पति ने कहा—हे गोरी, लौंडी मुझे कूट-पीस कर देगी। माँ मेरे लिए रोटी पकायेगी। जीवन-संगिनी लाठी मेरी गोद में पैठ कर सोयेगी, और पिछली पहर रात में पसर चराने के लिये मुझे पड़रा (भैंस का बच्चा) जगा देगा।

पत्नी कहती है—रे प्रियतम, लौंडी ससुराल चली जायेगी। तेरी माँ कुछ दिनों में गंगा लाभ करेगी। तेरी जीवन-संगिनी लाठी टूट-फूट जायेगी, और तुम्हारे पड़रे को चोर चुरा ले जायेगा।

पति ने कहा—हे गोरी, लौंडी के पैरों में बेड़ी डाल दूँगा। जिससे वह भाग न सके। माँ को अमृत पिला कर जिला दूँगा, बँसवारी में पैठ कर लाठी काट लाऊँगा, और पड़रे को पैताने सुलाऊँगा।

योग

इस शब्द का अर्थ योग-तत्त्व—मन को एकाग्र कर ब्रह्म में योग-द्वारा लीन कर लेना नहीं। इसका अर्थ है—प्रेम का तंत्र-मंत्र, स्त्रियोचित हाव-भाव।

माशूक की मेंहदी के लाल रंग की तरह यह अपनी शोखी के कारण मशहूर है। संख्या में यद्यपि यह थोड़ा है, पर काव्य-पुरुष की गोद में पल कर यह बड़ा हुआ है। इसका वतन दरअसल तिरहुत है। सुमुखी तरुणियाँ इसकी थाप और लय पर कुर्बान जाती हैं। खास कर स्त्रियों में ही इसका चलन है। बेटी के विवाह के अवसर पर यह गाया जाता है। पूर्व-विद्यापति-काल में इसका जन्म हुआ। भाषा का जीर्ण चोला तितली के रंग की भाँति बदलता गया। शब्द-शाखायें नवीन पत्ते, नवीन फूल से लदती गईं, मगर हृदय-जगत का अछूता चित्र बदस्तूर कायम रहा।

(१)

योग जुगुति हम जानल किनि आनल
नागर कैल अधीन सभक मन मानल
सत ओ अंग जौं रूसताह फेरि बौंसताह
कहियो ने कुवचन कहताह
चानन चरण पखारताह पैर धरताह
माय बहिन के तेजि हमर धय रहताह
चान सुरुज जकाँ उगताह उगि झपताह
जेहन मकराक डोरि जकाँ घुमि अओताह
भानुनाथ कवि गाओल योग लागल
गोरी उचित वर पाओल सभक मन मानल

किसी गर्वीली नायिका की उक्ति है—'मैं वशीकरण मंत्र जानती हूँ। मैंने यह मंत्र पुरस्कार देकर सिद्ध किया है। इसी मंत्र के बल से मैंने अपने प्रियतम को वश में किया है।

मेरी इस मोहिनी विद्या के सभी कायल हैं। यदि मेरे प्रियतम कभी रूठेंगे, तो पुनः मेरी वशीकरण-विद्या उन्हें वशीभूत कर लेगी। इस प्रकार मेरे प्रियतम मुझ पर कभी ख़फ़ा नहीं होंगे।

उल्टे, वह चंदन से मेरे चरण का प्रक्षालन करेंगे, और मेरी चरण-पूजा करेंगे।

जब मेरे मंत्र का पूरा वेग होगा, उस समय वह अपनी माँ-बहन का भी परित्याग कर देंगे, और मेरे प्रेम-जाल में उलझ जायेंगे।

वे सूर्य और चन्द्रमा के समान प्रकाशित होंगे, और फिर छिप जायेंगे, लेकिन पुनः घूम-फिर कर मेरे ही चरणों में आयेंगे।

वे ठीक उसी प्रकार आयेंगे, जिस प्रकार मकड़ी के तार अपनी परिधि की परिक्रमा कर फिर अपने केन्द्र पर वापिस आ जाते हैं।

कवि कहता है—सचमुच नायिका की वशीकरण विद्या बड़ी बलवती है। नायिका को उसके अनुकूल प्रियतम मिले हैं, और उसकी मोहिनी विद्या के सभी कायल हैं।

(२)

हम योगिनि तिरहुत के योग देवैन्ह लगाय
सातों बहिन हम जोगिन (माइ) मैना थिकि जेठ बहिनि
तनिक-हुँसँ योग सीखल (माइ) चउदह भुवन हम हाँकल
इन्द्र हमर डर मानथि (माइ) बिनु मेघ पानि बरिसावथि
हरिहर विहि सनकादिक के ने हमर डर मान जान त्रिभुवन
नयना हमर पढ़ाओल (माइ) जगमोहिनि नाम
आरसि काजर पारल आँखि आँजल
ताहि आँजल दुइ आँखि पिआ अपनाओल

झमकि-झमकि हम नाचव पहुँ देखितन्हि
पागक पेंच उघारि हृदय बिच रखितथि
भनहि विद्यापति गाओल फल पाओल
योग तोहर बड़ तेज सेज धय रहताह

हे सखी, मैं तिरहुत की जोगन हूँ। अपने प्रियतम को मोहन मंत्र से मोह लूँगी।

मैं सातों बहन जोगन हूँ। मैना मेरी जेठ बहन है। उसीसे मैंने यह वशीकरण मंत्र सीखा है।

पृथिवी से ऊपर के सात भुवन और पृथिवी से नीचे के सात भुवन को मैंने अपने मंत्र के वेग से हाँक डाला है।

मेरे डर से वज्रपाणि इन्द्र का (आकाश-भेदी) गौरव भंग हो जाता है, और वह बिना बादल के बरसा करते हैं।

ब्रह्मा, विष्णु और सनक-सनंदन कौन मेरा लोहा नहीं मानता?

तीनों लोक मेरी वशीकरण विद्या का कायल है। जादू से पुर-असर मेरे नयन सितम ढाते हैं। भुवनमोहिनी मेरा नाम है।

दर्पण और काजल को मंत्र से सिद्ध कर मैंने आँखों को आँजा। उन अँजी हुई आँखों से जादू डाल कर प्रियतम को वशीभूत कर लिया।

जब मैं चरण के पायल को झंकृत कर नृत्य करूँगी, और प्रियतम देखेंगे तो पाग के पेंच उघार कर मुझे हृदय के बीच रख लेंगे।

कवि विद्यापति कहते हैं कि हे तरुणी, तुम्हारा अभीष्ट सिद्ध हो गया। तुम्हारी वशीकरण विद्या बड़ी तेज है। अब तुम्हारे प्रियतम तुम्हारी सेज को कभी न छोड़ेंगे।

(३)

हमरा क जँओ तेजब गुन हाँकव
योग देव समधान अधिन कय राखव
एको पलक जँओ तेजब गुन हाँकव
एहन योग मोर तेज सेज नहि छाड़ब

आरसि काजर पारव निशि डारव
ताहि लय आँजब आँखि योग परचारव
नयनहिं नयन रिझायव प्रेम लगायव
करव मोरा गरहार हृदय बिच राखब
भनहि विद्यापति गाओल योग लगाओल
दुलहा दुलहिनि समधान अधिन कय राखल

हे प्रियतम, यदि मेरा परित्याग करोगे तो तुम्हारे विरुद्ध वशीकरण मंत्र का प्रयोग करूँगी, और तुम्हें गुलाम बना कर रखूँगी।

सच कहती हूँ कि पल-भर के लिए भी यदि तुम मुझसे बिछुड़ोगे, तो मैं अपने मंत्र की आजमाईश करूँगी।

मेरा मंत्र इतना तेज है कि तुम मेरी सेज कभी न छोड़ोगे।

रात में दर्पण और काजल को मंत्र से प्रभावित कर आँखों को आँजूँगी, और अपने मंत्र का प्रयोग करूँगी।

अपने नयन से तुम्हारे नयन को रिझा कर तुमसे प्रेम करूँगी। तुम मुझे अपने गले का हार बनाओगे, और अपने हृदय के कोने में छिपा कर रक्खोगे।

कवि विद्यापति कहते हैं कि दुलहिन ने दूल्हे पर सचमुच अपने मंत्र का प्रयोग किया, और उसे अपना गुलाम बना लिया।

(४)

नयन क जाल खिराओल नयना योग बेसाहल
हेमंत अरोधल पशुपति जेहो न बाजथि निकमति
नयना नौत बुलाइलि सकल योग पसारलि
देव पितर सभ पूजिय गउरि वसि हरि राखिअ
भनहिं विद्यापति गाओल जोग अंत नहिं पाओल

नयना जोगन ने नयन के जाल फैला कर मोहिनी विद्या सीखी।

ऋषि हेमंत बेटी उमा के लिए शिव को अरोध कर लाये। लेकिन दूल्हा बौराहा है, और अंट-संट बोलता है।

नयना जोगन निमंत्रित कर बुलाई गई। उसने दूल्हे का बौराहापन दूर करने के लिए तंत्र-मंत्र का प्रयोग किया।

उमा के अरिजन-परिजन देव-पितरों से प्रार्थना करने लगे कि किसी भी तरह दूल्हा उमा के वशीभूत हो जाय।

कवि विद्यापति कहते हैं कि योग का कोई अंत नहीं पा सका।

(५)

दछिन पवन बहु लहु-बहु
पहुँ सौं मिलन होयत कबहु
आम मजरि मह तूअल
नैओ ने पहु मोरा घूरल
दीप जरिय बाती जरल
नैओ ने पहु मोरा आयल
भनहि विद्यापति गाओल
योगनिक अंत नहि पाओल

हे दक्षिण पवन, मंद-मंद बहो। प्रियतम से भेंट कब होगी ?

आम में बौर लग गये। महुआ चूने लगा। लेकिन हे सखी, मेरे प्रियतम नहीं आये।

दीपक की लौ मंद पड़ गई। बत्ती जल गई। लेकिन मेरे प्रियतम नहीं आये।

विद्यापति कहते हैं कि योग का अंत किसी ने नहीं पाया।

साँझ

जब गौयें अपने थान पर लौट आती हैं, निःशब्द नदी के किनारे सूर्य का प्रकाश धीरे-धीरे कम होने लगता है, कुंजों में कलियाँ आँखें मूँद लेती हैं, संध्याकालीन रंग-बिरंगे तारे आसमान में हँसने लगते हैं और थकी-माँदी संध्या आकर अपना आसन जमाती है, तब दिन-भर के परिश्रम से क्लान्त कृषकगण अपनी चौपालों में बैठ कर तथा जिन मीठे-मीठे गीतों को गाकर चिंता-मुक्त होते हैं, उन्हीं का नाम है 'साँझ'। प्रेम-मिलन की स्नेह-स्निग्ध छाया में जो आत्मानंद है, और रेगिस्तान में नखलिस्तान के अस्तित्व का जो गौरव है—वही लोक-साहित्य में 'साँझ' का।

निम्न-लिखित गीत इस लोकप्रिय शैली के सजीव नमूने हैं—

(१)

चिर अभरन राधा धयलन्हि उतारी
पैसलि जमुन-दह आंग उघारी
चिर अभरन कृष्ण लै गेला चोराय
वैसला कदम डाढ़ि मुरली बजाय
चिर अभरन राधा लिय समुझाय
अपन वचन राधा दिय ने सुनाय

राधा ने चीर-आभरण खोल कर यमुना-किनारे रख दिया, और नंगी देह जल में पैठ गयी।

कृष्ण उसके चीर-आभरण चुरा ले गये, और कदम्ब की डाल पर बैठ कर वंशी बजाने लगे।

हे राधे, अपने चीर-आभरण लो, और हँस कर अपनी मीठी बोली सुना दो।

(२)

पसरल हाट उसरि बरु गेल
नृपति बुझाय राम वन गेल
राम क राज भरत के भेल
साँझ केकइ रानी अपयश लेल

पसरी हुई हाट उसर गई। दशरथ को समझा-बुझा कर राम वन चले गये।

राम का राज्य भरत को मिला, और महारानी कैकेयी ने अपने सिर कलंक का टीका लगा लिया।

(३)

हम तोरा पुछु कोयलि वड़ अनुरागे
किय-किय देखल कोन बबाक राजे
नचुआ नचइत देखलों पाँचो वाजन बाजे
कोन दाय देखलों कोइलि मंगल गावे

री कोयल, कहो अमुक बाबा के राज्य में तुमने क्या-क्या देखा?

कोयल ने कहा—मैंने नर्त्तकों को नृत्य करते देखा। पाँच प्रकार के बाजाओं को बजते और अमुक दादी को मंगल गाते देखा।

(४)

साँझ लेसाय गेल फूल फुलाय गेल
भँवरा लेल बसेरा मलिनिया लोढ़ि लिय
मालिनि लोढ़ि-लोढ़ि भरि लेल दोना
एक त मलिनिया मृग मद मातलि
दोसरे भरल फूल दोना
फूलहिं लोढ़ि-लोढ़ि हार जे गाँथल
लय पहिराओल दुलरुआ

संध्या के दीप दुप-दुप कर जल उठे। फूल खिल गये। उन पर भौंरों ने बसेरा लिया। मालिन ने फूल लोढ़-लोढ़ कर अपने दोने भर लिये।

हे मालिन, फूल लोढ़ लो।

एक तो मालिन मृगमद—तरुणाई की कस्तूरी से मतवाली है। दूसरे उसके हाथ में फूलों से भरा दोना – फूल-डाली है।

फूल लोढ़-लोढ़ कर मालिन ने गंसीले गजरे बनाये। और अपने प्यारे के गले में डाल दिया।

हे मालिन, फूल लोढ़ लो।

(५)

साँझ भेल न घर आयल कन्हैया
घर रोवे बछरु वहार रोवे गैया
पलंगा वैसल रोवे यशुमति मैया
न जानी कोन वन फिरत कन्हैया
वनाओल खीर से हो भेल वासी
न जानी कोन वन पड़ल उपासी
ओछाओल सेज से हो भेल वासी
न जानी कोन वन फिरत उपासी
कतय गेल किय भेल धेनु चरैया
न जानी कोन वन फिरत कन्हैया

संध्या हुई, लेकिन कन्हैया घर नहीं आया। घर में बछड़े रोते हैं, और बाहर गौयें रो रही हैं।

पलंग पर बैठी हुई माँ यशोदा बिसूर रही है कि जाने मेरा कन्हैया किस निर्जन वन में भटक रहा है? भोजन के लिए जो खीर पकाई थी वह भी बासी हो गई।

पान के लगाये बीड़े बासी हो गये। न जाने किस वन में मेरा कन्हैया भूखा भटक रहा है?

ओछाई हुई सेज बासी हो गई। न जाने किस वन में मेरा कन्हैया उदासी बन कर भटक रहा है?

गाय का चरवाहा मेरा कन्हैया क्या हुआ? कहाँ खो गया? न मालूम किस विजन वन में मेरा कन्हैया भटक रहा है?

ग्वालरि

'ग्वालरि' गीत-शैली की परम्परागत भावना नूतन संस्कारों-द्वारा समय-समय पर अनुप्राणित होती रही है। इनमें सुघड़ रचना-कौशल के साथ-साथ श्री कृष्ण् की बाल-क्रीड़ा की भावना का सुरुचिपूर्ण चित्रण मिलता है। इनकी वाणी और शैली में मिथिला की लोक-भाषा अपने सहज रूप में विद्यमान है। इनकी अपनी निजी विशेषता है, और अपनी विशिष्ट संगीत-ध्वनि।

(१)

थिकहुँ गुँजरि चललि मधुपुर
बाट भेंटल श्याम यो
रूप देखि मुसकायल मोहन
रभसि मांगल दान यो

लितहुँ गोरस दिनहुँ कान्हा
स्वरस नहि अछि मोर यो
जोर बरबस अधिक जनि करू
हयब दासिन तोर यो

गेलि गोकुल कहल यशुदहि
श्याम हटलो ने मान यो
आँचरि धरि-धरि चीर फारथि
सुनहु यशुदा कान यो

थिकह गुंजरि झूठि ग्वारिनि
किअक गेलिह अगुताय यो

धूरि धूसर घुंघ्र माठा
सुनल कृष्ण मुरारि यो

ई जुन जानह कृष्ण बालक
जगतक छथि वटमार यो
मुरलि टेरि-टेरि नारि वश करि
वर्नाहि राखथि लोभाय यो

सुकविदास विचारि मूरति
चितहि धरु अवधारि यो
सदा जीवथु कृष्ण राधा
पुरथु मन अभिलाष यो

हे सखी, मैं मधुपुर में गोरस बेचने निकली। मेरा रूप देख कर मोहन ने हँस कर कटाक्ष किया, और यौवन का दान माँगा।

मैंने कहा—'हे कृष्ण, मैं गोरस तो तुम्हें दूँगी। पर मेरे यौवन के रस पर मेरा अपना अधिकार नहीं है। ज्यादती मत करो। मैं तुम्हारी दासी होकर रहूँगी।'

गोकुल गयी, और मैंने यशोदा से कन्हैया की इस ढिठाई की शिकायत की–'अपने लाड़ले सपूत की करतूत तो देखो। वह डराने-धमकाने के बावजूद अपनी शरारत से बाज नहीं आता। हम उसे लाख बरजती हैं, मगर हमारी एक नहीं चलती। वह हमारे अंचल पकड़ कर मुस्काता है, और चीर फाड़ डालता है।

पर यशोदा अपने पुत्र की भीत और सरल मुखकमल को देख उसे डाँटने की बात तक नहीं सोचती। वह कहती हैं—'हे ग्वालिन, तुम झूठ बोल रही हो। मेरे भोले पुत्र की सरलता से तू तंग क्यों आ गयी? यदि ऐसा ही है, तो तुम अपनी आँखों से देख लो। उसके मठरी और घुंघरू धूल-धूसरित हैं, और वह सोया हुआ है।

गोपियों ने कहा—'यशोदा रानी, तुम्हारा लाड़ला कृष्ण बालक नहीं

है। जगत का प्रसिद्ध बटमार है। वह बाँसुरी की मधुर तान से व्रज-युवतियों के चित्त को चुरा लेता है, और उन पर मोहिनी डाल कर उन्हें निर्जन वन में रोक रखता है।'

सुकविदास कहते हैं कि हे व्रजाङ्गने, हृदय-पट पर श्रीकृष्ण की छवि अंकित कर लो। राधा-कृष्ण की युगल जोड़ी सदा फूले, और तुम्हारी अभिलाषा पूर्ण हो।

(२)

यमुना तीर वसथि वृन्दावन
संगहि गेलौं नहाय
के एहनि कयलन्हि अन्याय
वंशी लेलन्हि चोराय

बाँसक पोर तकर एक वंशी
वंशी लेलन्हि चोराय
कतय गेलौं किय भेलौं यशुदा
वंशी दिय ने छोड़ाय

हम नइ जानी हम नइ सुनली
वंशी गेलो हेराय
पुछिऔन्हि अपना हित प्रीति सँ
वंशी देथु छोड़ाय

यमुना के तट पर वृन्दावन बसा हुआ है। हे मा, अपने साथी बालकों के साथ मैं स्नान करने गया था। न मालूम कौन ऐसा है कि जिसने मेरी बाँसुरी चुरा ली।

बाँस की दोनों गाँठों के मध्यवर्त्ती भाग की बनी हुई बाँसुरी है। वह बाँसुरी जाने किसने चुरा ली ?

हे मा यशोदा, कहाँ गई ? क्या हुई ? मेरी बाँसुरी ला दो। मैं नहीं जानती। मैंने नहीं सुना। तुम्हारी बाँसुरी कहाँ खो गई ? अपने हित-प्रेमियों से पूछो। वे ही बाँसुरी ला देंगे।

(३)

आधि रतिया सेज त्यागल
छीक देल दधि टांग री
छीक गुनितहुँ घरहि रहितहुँ
दैव हरलन्हि ज्ञान री

आगाँ पाछाँ ताकु ग्वालिनि
केहि दउड़ल आव री
दउड़ल आवथि ढीठ कान्हा
हाथ शोभय बाँसुरी
बाँह शोभइन्हि बाजूबन्द
चरण मेंहदी लाल री

आधी रात को ही सेज से उठ कर दही के कमोरों को छीकों पर टांगा।

री महर, यदि छीकों पर रक्खे मीठे दही-दूध की चोरी का ख़याल रखती तो घर में ही रहती। किंतु, दैव ने हमारी मति कुंठित कर दी।

ग्वालिनें चौकन्नी होकर चारों ओर देख रही हैं कि कहीं ढीठ कृष्ण अंधेरे में दही-दूध छिपा कर रखने की टोह तो नहीं ले रहा है?

इतने में हाथ में बाँसुरी लिये श्रीकृष्ण दीख पड़े। उनकी बाँह में बाजूबंद हैं, और चरण में लाल मेंहदी खिल रही है।

(४)

खेलइत छलि माता ओहि कदमतर
तनियो ने कृष्ण डराथु री
कतय शोभइन्हि यंत्रि माला
कतय शोभइन्हि बाँसुरी
कतय शोभइन्हि लाल छड़िया
तनियो ने कान्ह डराथु री

गरा शोभइन्हि यंत्रि माला
होट शोभइन्हि बाँसुरी
हाथ शोभइन्हि लाल छड़िया
तनियो ने कान्ह डराथु री

घर पइसि कान्हा दधि मटुकिया
छींक चढ़ि घिव खाथु री
घिव खाइत माता चोर पकड़ल
तनियो ने कान्ह डराथु री

कदम्ब के गाछ के नीचे श्रीकृष्ण अपने साथी बालकों के साथ खेल रहे हैं। वे तनिक भी नहीं डरते।

उनके किस अंग में वैजयंती हार सुशोभित है ? किस अंग में बाँसुरी, और कहाँ लाल छड़ी शोभित है ? वे तनिक भी नहीं डरते।

उनके गले में वैजयंती हार सुशोभित है। होंठों में बाँसुरी, और हाथ में लाल छड़ी सुशोभित है। वे तनिक भी नहीं डरते।

श्रीकृष्ण घर में पैठ कर दही-दूध चुरा-चुरा कर खाते हैं, और छीकों पर रक्खे हुए घी। एक दिन मा यशोदा ने उन्हें घी खाते हुए पकड़ लिया।

ढीठ श्रीकृष्ण तनिक भी नहीं डरते।

मधुश्रावणी

मिथिला के अन्य त्योहारों की तरह 'मधुश्रावणी' भी नव-विवाहिता स्त्रियों का एक त्योहार है। यह सावन शुक्ल तृतीया को मनाया जाता है। यद्यपि यह त्योहार सावन के ही समान सरस है फिर भी इसमें एक भयंकर विधि इसलिए की जाती है कि विवाहिता दीर्घकालीन सधवा रहेगी या नहीं। नव विवाहिता एक जलती बत्ती से दागी जाती है। यदि फोड़े खूब अच्छे आये, तो स्त्रियाँ उन्हें सधवापन का चिह्न समझती हैं।

स्त्री-पुरुषों की जुटनेवाली महफ़िलों में इस चिर-नवीन त्योहार के प्रति असीम श्रद्धा दीख पड़ती है। कालक्रम के अनुसार 'मधु-श्रावणी' गीत की रचना-शैली दो भागों में विभाजित है—(१) पूर्व मधु-श्रावणी-काल, और (२) उत्तर मधुश्रावणी-काल। पूर्व और उत्तरकालीन 'मधुश्रावणी' की मौलिक रूप-रेखा में ज़मीन आसमान का फ़र्क़ है।

'पूर्वमधुश्रावणी-काल' की प्रत्येक पुरातन गीत-शैली आदिमकालीन चकमक पत्थर के उस भोथड़े औज़ार की तरह है, जो पर्वतों की निर्जन घाटियों में मार्ग निकालने और शिकार पर गुज़ारा करने के लिए बनाया जाता था, अथवा इस प्रकार कहना अधिक समीचीन होगा कि 'मधुश्रावणी' की प्रत्येक प्राचीन गीतशैली बौद्धकालीन इमारती कला के सदृश है, जिसके गुम्बज, दीवारों, बुर्जियाँ, खम्भे वग़ैरा पर किसी प्रकार की तड़क-भड़क या बारीक मीनाकारी का काम नहीं।

लेकिन 'उत्तर मधुश्रावणी-काल' की प्रत्येक चिर-नवीन गीत-शैली इस्पात के उस चमकते और चोखे औजार की तरह है जिससे चट्टानों की दीवारें काट-काट कर पहाड़ी चोटियों पर गुलाबी लताएँ और अंगूर की बेलें लगा दी गई हैं, अथवा प्रत्येक चिर-नवीन गीत-शैली उस मुग़लकालीन

इमारती-कला के सदृश है, जिसकी मेहराबदार छतों, दीवारों और खम्भों पर किम्खाब के बूटों की तरह की नक्क़ाशी और सुप्रसिद्ध चित्रकारों की कल्पना से अंकित मूर्त्तियुक्त चित्रावलियाँ हैं।

दरअसल 'मधुश्रावणी' की पुरातन और नवीन गीत-शैलियाँ—दोनों एक ही माँ-बाप की जोड़िया बेटियाँ हैं। दोनों एक ही संस्कृति के झूले में झूल कर पलीं, और बड़ी हुई हैं। मगर उनके बीच में एक बड़ा भारी फासला यह है कि एक अनपढ़ और जाहिल है, और दूसरी पढ़ी और सभ्य। एक देहाती गँवारों की जबान में गुफ्तगू करती है, और दूसरी के तर्ज-बयान सुसंस्कृत और परिमार्जित हैं। एक के कानों में झुमके और कमर में घेरदार चुंदरीवाला पहनावा है, और दूसरी की चाल-ढाल, सूरत और लिबास में अजनबीयत है। उदाहरणस्वरूप 'पूर्व मधुश्रावणी-काल' की कुछ गीत-शैलियों का मुलाहिज़ा कीजिये—

(१)

पर्वत ऊपर सुग्गा मड़राय गेल
किनि दिय आहे बाबा लाल रंग केचुआ
बेसाहि दिय आहे भाय मोरा चित्रसारी
निर्धन घर गे बेटी तोहरो जनम भेल
निर्धन घर गे बेटी तोहरो विवाह भेल
कतय पैब गे बेटी लाल रंग केचुआ
कतय पैब गे बेटी हम चित्रसारी
मे हो सुनि अमुक वर चलला बेसाहे
ओतहि सँ बेसाहि लैला लाल रंग केचुआ
ओतहि सँ बेसाहि लैला ओहो चित्रसारी
पहिरि-ओहिरि कन्या ठाढ़ि भेलि आंगन हे
देखिय-देखिय बाबा लाल रंग केचुआ
देखिय-देखिय भाय एहो चित्रसारी

हे पिता, पर्वत की चोटियों पर सुग्गे मँडलाने लगे। तुम मेरे लिये रंगीन केचुआ[1] खरीद दो ना।

और हे भाई, तुम मेरे लिए सलमे-सितारे की लोई टकी हुई चुंदरी ला दो ना!

पिता ने कहा—

हे बेटी, निर्धन के घर तुम्हारा जन्म हुआ है, और तुम निर्धन के घर व्याही गई हो। हाय! मैं सलमे-सितारे की लोई टकी हुई चुंदरी और रंगीन केचुआ कहाँ पाऊँ?

श्वसुर का यह भेद-भरा वचन सुन कर उस नव-विवाहिता तरुणी का सजन रंगीन केचुआ और चुंदरी खरीदने परदेश चला। उसने रंगीन केचुआ और अपनी प्रियतमा की मनचाही चुंदरी खरीद कर ला दी। तब वह नव-विवाहिता चुंदरी पहन कर आँगन में खड़ी हुई, और अपने पिता से बोली—

हे पिता, देखो यह रंगीन केचुआ, और हे भाई, तुम भी देख लो यह सलमे-सितारे की लोई टकी हुई चुंदरी।

उपर्युक्त गीत 'पूर्व-मधुश्रावणी-काल' का एक सुरुचिपूर्ण नमूना है। इस गीत की नायिका के पिता, जो अपनी बेटी की चुंदरी ख़रीद लाने में सर्वथा असमर्थ हैं—की दीनता और दुख-कातरता देख आँखों में आँसू की मौजें छलकने लगती हैं। लेकिन समवेदना और सहानभूति के अगाध सागर में डूबते-उतराते जब नायिका का प्रियतम परदेश जाता है, और अपनी प्रियतमा की मनचाही चुंदरी ख़रीद कर हँसते-हँसते घर लौटता है, तो हमारी तबीयत फिर पलटा खाती है। नायिका के नौजवान भाई की निष्क्रियता से हमारी भावनाओं को एक ठेस-सी लगती है। युवक-हृदय

---

[1] चौदह हरें, चौदह पैसा, सुपारी, धान, धनिया, अक्षत और दूब एक नये वस्त्र में बाँध कर नव विवाहिता युवती 'मधुश्रावणी' की कथा सुनने के समय हाथों में लिए रहती है; इसीको केचुआ कहते हैं।

उसके निक्कमेपन को देख नहीं सकता। क्योंकि वह अपनी व्रती नव-विवाहिता बहन के प्रेमपूर्ण आग्रह को ठुकरा कर कर्त्तव्य-पराङ्मुख हो रहा है।

(२)

सावन मास नाग पञ्चमी भेल
घर-घर विसहर पूजा भेल
ककरहिं घर विसहर दूध-लवा लेल
ककरहिं घर विसहर पान-फूल लेल
ककरहिं घर विसहर खीरहिं लेल
ककरहिं घर विसहर पूजा भेल
अहिरक घर विसहर दूध-लवा लेल
मालिक घर विसहर पान-फूल लेल
भक्तक घर विसहर खीरहिं लेल
ब्राह्मण घर विसहर पूजा भेल
पाँच बहिन विसहर पाँचो कुमारि
छोटी बहिन विसहर बड़ उत्फारि
पलङ्ग सूतल स्वामी डसलह मोर
आहे-आहे विसहर मान वचन मोर
वारि रे वयस स्वामी बकसह मोर

श्रावण महीना में नागपंचमी का त्योहार मनाया गया। घर-घर में नाग की पूजा हुई।

किसके घर से नाग ने दूध-लावा लिया ? किसके घर से पान और फूल ? किसके घर से नाग ने खीर ली ? और किसके घर में उसकी पूजा हुई ?

ग्वाले के घर से नाग ने दूध-लावा लिया, माली के घर से पान और फूल। भक्त के घर से नाग ने खीर ली और ब्राह्मण के घर में उसकी पूजा हुई।

नाग के पाँच बहन हैं। पाँचों क्वारी हैं। हाय ! नाग की छोटी बहन विष से माती है। उसने पलंग पर सोये हुए मेरे प्रियतम को डँस लिया।

हे नाग, मेरी बात पर कान दो। मेरी उम्र थोड़ी है। मेरे प्रियतम की जान बख़्श दो।

(३)

सावन विसहर लेला अवतार
भादव विसहर भेला जुआन
आसिन विसहर खेलै झिझरी
कातिक विसहर गेला अलसाय
अगहन विसहर भेला अलोप
चलला अपन देश आशीष देइ
जीवथु हे कन्या सुहवे तोहर जेठ भाय
लाख बरस केर होवो अहिवात

श्रावण में नाग का जन्म हुआ। भादों में उसने जवानी की देहली में पैर रक्खा। आश्विन में वह रंग-रास करने लगा। कार्तिक में वह अकर्मण्य हो गया। अगहन में मृतप्राय हो गया, और अन्त में आशीर्वचन कह कर अपने देश के लिए प्रस्थान किया।

हे सौभाग्यवती कन्या, तुम्हारा ज्येष्ठ भाई चिरजीवी हो, और तुम्हारा यह अहिवात लाख वर्षों तक अटल रहे।

(४)

नदिया क तीरे-तीरे तुलसीक गाछ
ताहि पर विसहर खेलै जुआसार
जुअहि खेलइत विसहर गेला अलसाय
काग लै गेल मुनरी वकुला लै गेल हार
कान लगलि खींझल विसहर कुमारि
चुप होउ चुप होउ विसहर कुमारि
गढ़ाय देव मुनरी गुँथाय देव हार

नदी के किनारे तुलसी का गाछ है। उसी पर बैठ कर नाग जूआ खेल रहा है।

जूआ खेलते-खेलते वह अलसा गया।

इसी बीच काग चोंच में उसकी अंगूठी लेकर उड़ गया, और बगला उसके गले का हार ले गया। फलस्वरूप नाग की बेटी खीझ कर रोने लगी।

कवि कहता है—हे नाग-कन्या, चुप रहो। चुप रहो। मैं अंगूठी गढ़ा दूंगा और गले का हार भी गुँथा दूँगा।

(५)

कतय तोर गहवर कतय तोर थान
ककर तू पाँचो बेटी किय तुअ नाम
पुरइन तर गहवर पुरइन तर मोर थान
सेवक क पाँचो बेटी विसहर अछि नाम
तेल दै रे तेली भाय बाती पटिहार
दीप दै रे कुम्हरा भाय लेसब चकमक दीप
जायब सरोवर कात दै अएबो साँझ

कहाँ तुम्हारा गह्वर है? कहाँ तुम्हारा वास-स्थान? तुम किसकी पाँचों बेटियाँ हो, और तुम्हारा क्या नाम है?

पुरइन के नीचे मेरा गह्वर है, और पुरइन के ही नीचे मेरा वासस्थान। हम सेवक की पाँचों बेटियाँ हैं, और विसहर (नाग) हमारा नाम है।

रे तेली भाई, तेल दो। रे पटिहार, बत्ती दो। रे कुम्हार भाई, तुम दीपक दो। चकमक दीप जला कर और सरोवर किनारे जाकर मैं साँझ दूँगी।

प्रारम्भिक काल में 'मधुश्रावणी' की यही रूप-रेखा थी। छन्द-शास्त्र की दृष्टि से विचार किया जाय तो प्रारम्भिक 'मधुश्रावणी'-पद्धति के अनुसार किसी भी 'मधुश्रावणी' के चरण की मात्रा निश्चित नहीं थी। गीत की प्रत्येक पंक्ति प्रायः भिन्न मात्रा की होती थी, जैसा कि उपर्युक्त उदाहरणों से प्रत्यक्ष है। तुक, यति और लय-विराम के अनावश्यक बन्धन को भी अधिक महत्त्व नहीं दिया जाता था। भावों की सम्यक् अभिव्यंजना के अनुरूप बौद्धिक भावज्ञता का नियमन ही प्रामाणिकता की कसौटी था।

लेकिन धीरे-धीरे 'पूर्व मधुश्रावणी-काल' के इस विवस्त्र संज्ञाहीन शरीर में नीरव प्रस्फुटन हुआ, उसकी सिकुड़ी हुई धमनियों में उल्लास नाचने लगा। नव वसन्त के प्रथम स्पर्श-मात्र से उसकी चेतना सजग, सजीव हो उठी। उसकी भाषा और भाव-धारा पर गीति-काव्य का सुन्दर आवरण इस सफाई और हल्केपन से चढ़ा कि लुत्फ़ दूना हो गया। निम्नलिखित 'मधुश्रावणी' इस नूतनतम शैली की एक सुन्दर रचना है—

(६)

जुगुति जुगुति व्रजनारी आहो राम
पहिरल अति रूप सारी
हाथ लेल बेंत-डाली आहो राम
गवइत गेलि फुलवारी
सखी सब कैल रंग-केली आहो राम
चन्द्रवदनि धनि गोरी आहो राम
मन कह-कह कल जोरी

व्रजाङ्गनाएँ यत्नपूर्वक कीमती साड़ियाँ पहने और हाथों में बेंत की डाली लेकर मंगल गान करती हुई पुष्पवाटिका में गईं। वहाँ सखियों से मिल कर उनने परस्पर रंगरेलियाँ कीं, और उन चन्द्रमुखी गोरी ललनाओं ने करबद्ध होकर अपनी हृदय की बात निवेदित की।

समय पाकर नूतन 'मधुश्रावणी'-काल की इस सरल, संक्षिप्त शैली में भी विकसन हुआ। उसकी चेतना यौवन-रंग में प्रमत्त हो उठी। उसके शब्दों की झंकार और भी परिष्कृत हुई। यह परिवर्त्तन केवल 'मधुश्रावणी' के विपुल शब्द-समूह और उसके सुकोमल कलेवर में ही नहीं हुआ, बल्कि उसके स्वरूप और आत्मा में भी रूपात्मक और भावात्मक क्रान्ति हुई।

'उत्तर मधुश्रावणी-काल' के प्रारम्भिक दिनों में प्रत्येक 'मधुश्रावणी' गीत छः या सात खण्ड-पंक्तियों के संग्रह होते थे, जैसा कि उपर्युक्त नमूने से प्रत्यक्ष है। और जिसके प्रत्येक चरण भावों की माप के अनुकूल भिन्न-भिन्न मात्राओं के होते थे। लेकिन छन्दों को ललित बनाने के लिए यह

प्राचीन परिपाटी बदल दी गई। अब 'मधुश्रावणी' का प्रत्येक चरण पिंगल के नपे-तुले नियमों में बाँध दिया गया। इस सुरुचिपूर्ण दिशा का प्रत्येक चरण बारह-बारह मात्राओं की यति से, अन्त में दो गुरु (ऽऽ), और कहीं-कहीं दो लघु (।।) के साथ आरम्भ हुआ—

(७)

लहु-लहु धर सखि वाती
धड़कए कोमल छाती
लहु-लहु पान पसारह
लहु-लहु दृग दुहुँ झाँपह
मधुर-मधुर उठ दाहे
मधुर-मधुर अवगाहे
'कुमर' करह विधि आजे
'मधुश्रावणि' भल काजे

हे सखी, धीरे-धीरे बत्ती जलाओ। मेरी कोमल छाती धड़क रही है। धीरे-धीरे पान पसारो, और मेरी दोनों आँखों को धीरे-धीरे ढको। और हे सखी, बत्ती की यह शिखा मन्द-मन्द जले, और मैं उसमें मन्द-मन्द अवगाहन करूँ।

कवि 'कुँवर' कहता है—

हे नव-विवाहिते, आज मधुश्रावणी का पवित्र त्योहार है। इसलिए तुम विधिपूर्वक अनुष्ठान करो।

कहीं-कहीं यह नूतन छन्द बारह-बारह मात्राओं का न होकर सोलह और बारह-बारह का भी कर दिया गया—

(८)

शीतल बहथु समीर दिशा दश
शीतल लेथि उसाँसे
शीतल भानु लहु-लहु उगथु
शीतल भरथु अकाशे

शीतल सजनि गीत पुनि शीतल
शीतल विधि - व्यवहारे
शीतल मधुश्रावणि विधि होवथु
शीतल बसु एहि गारे
शीतल घृत शीतल बरु बाती
शीतल कामिनि आँगे
शीतल अगर सुशीतल चाननु
शीतल आवथु गाँगे
शीतल कर लय नयन झँपावह
शीतल दय दह पाने
शीतल होय अहिवात 'कुँवर' भन
शीतल जल स्नाने

शीतल हवा मन्द-मन्द बहे, और दशों दिशाएँ शीतल-शीतल साँस लें। शीतल सूर्य्य की शीतल किरणें मन्द-मन्द बिखरें और आसमान शीतलता से फूल उठे।

हे सखी, हमारे हृदय-हृदय में शीतलता के भाव उदित हों। हमारे गीत और विधि-व्यवहार सरल और शीतल हों।

'मधुश्रावणी' का यह पवित्र त्योहार शीतल हो। हमारा मानस-जगत शीतलता की सुगन्धि से महक उठे।

हे सखी, हमारी नव-विवाहिता सहेली का अंग-प्रत्यंग शीतल हो। दीपक का घृत शीतल हो, और यह शीतल दीप-शिखा मन्द-मन्द जले। अंगराग और चन्दन शीतल हो, और हमारी शीतल हृदय-गंगा मन्द-मन्द बहे।

कवि 'कुँवर' कहता है—हे नव-विवाहिते, तुम्हारा सौभाग्य शीतल हो। तुम शीतल जल में स्नान करो, और शीतल हाथों में पान के शीतल-शीतल पत्ते लेकर अपने शीतल नेत्रों को ढक लेने दो।

उपर्युक्त गीत-शैली में मनोराग या रागात्मिका वृत्ति का प्राबल्य है। रागात्मिका वृत्ति पिंगल और छंदों की चहारदीवारी में कैद न होकर मर्म-स्पर्शी उदात्त भावना और संगीतात्मक अभिव्यंजना में रहती है। रागात्मिका वृत्ति के मुख्यतया दो लक्षण हैं—(१) रसाभास, और (२) रागोद्रेक। रस गीति-काव्य का प्राण है। जब भाव-तरंगों के बीच रस केन्द्रीभूत होता है, तब गीति-काव्य हृदयान्तरजनित सरिता-प्रवाह की तरह अनर्गल धारा के रूप में बहने लगता है। पाठक देखें, 'मधुश्रावणी' की उपर्युक्त नूतनतम शैली में कवि का भाव-प्रतिबिम्ब स्पष्ट रूप से बिम्बित हुआ है। भाषा-वैभव और आलंकारिक चित्रण के अभाव में भी इसमें संगीतात्मक भावुकता का सफल निर्वाह है। भाषा दीर्घ समास और अन्वय-काठिन्य-पूरित न होकर रस और भाव के अनुरूप ही सुघड़ है। अंग्रेजी भाषा के सिद्ध-हस्त कवि पोप ने 'कविता की भाषा कैसी हो?' इस विषय पर अपने (Essay on criticism) नामक निबन्ध में लिखा है—

यह पर्याप्त नहीं है कि कविता की भाषा में कर्कशता नहीं हो, बल्कि यह भी जरूरी है कि पढ़ते ही शब्दों की एक गूंज-सी निकले।

गीति-काव्य की सफलता के लिए, जैसा कि उपर्युक्त उदाहरण से स्पष्ट है, स्वर-संगीत आवश्यक समझा गया है। 'लहु-लहु धर सखी बाती, धड़-कए कोमल छाती' में सुगीतिता का भाव संतुलित है। 'लहु-लहु' से 'मधु-श्रावणि भल काजे' और 'शीतल बहथु समीर' से 'शीतल जल असनाने' तक आते-आते स्वरों का नाद-स्फोट उत्तरोत्तर ध्वनित हो उठता है। यह स्वर-संगीत उत्तरकालीन 'मधुश्रावणी' के सभी प्रकार के छंदों में परिव्याप्त है।

(६)

कदलिक दल सन थर-थर काँपए
मधुश्रावणी विधि आजए
सकल श्रृंगार सम्हारि सजनि सब

मधुमय सकल समाजे
कमलनयन पर पानक पट दय
नागर जखनहे झाँपए
बध करि हाथ कमल कर वाती
देखि सगर तन काँपए
आजु सुहागिनि सह मिलि बइसल
मुख किय पड़ल उदासे
कुमर नयन सँ नीर बहाबह
गाइन गावतु गीते
बड़ अजगुत थिक मधुश्रावणी विधि
परम कठिन एहो रीते

आज 'मधुश्रावणी' का पवित्र त्योहार है। व्रती तरुणी कदली के पत्ते की तरह थर-थर काँप रही है। उसकी सभी सखियाँ विविध प्रकार के आभूषणों से विभूषित हैं, और सारा समाज आनन्द में पागल हो रहा है।

जब नव-विवाहिता तरुणी के कमल सरीखे नेत्रों को उसके प्रियतम ने पान के पत्ते से ढक दिया, और उसके बद्ध कर-कमलों में जलती हुई बत्ती दी गई तब उसका अंग-प्रत्यंग काँप उठा।

वह व्रती नवविवाहिता तरुणी अपनी सहेलियों के बीच सज-धज कर बैठी है। फिर जाने क्यों उसका मुख म्लान है?

कवि 'कुँवर' कहता है कि उसकी आँखों से अविरल अश्रुपात हो रहे हैं, और गायिकाएँ मंगल गान गा रही हैं।

'मधुश्रावणी' का यह त्योहार सचमुच बड़ा विचित्र है, और उसकी विधि अत्यन्त कठोर।

छठ के गीत

छठ, जिसको कोई-कोई सूर्य-षष्ठी व्रत भी कहते हैं—कार्तिक महीने के शुक्ल पक्ष की षष्ठी तिथि को होता है। यह व्रत मिथिला में स्त्री-पुरुष दोनों करते हैं। कहीं-कहीं चैत महीने के शुक्ल पक्ष की षष्ठी तिथि को भी यह त्योहार मनाया जाता है। व्रती दिन के चौथे पहर जितेन्द्रिय होकर नदी, अकृत्रिम सरोवर या अपने घर में ही स्नान करते हैं, और सन्ध्या को भक्ति-पूर्वक एकाग्र-चित्त से सूर्य भगवान् को नीबू, केला, नारंगी और मिष्टान्न आदि भोज्य-पदार्थों का अर्घ्य देते हैं। कोई-कोई गन्ध आदि पंचोपचार और पौराणिक मंत्रों के द्वारा सूर्य का पूजन करते हैं। प्रातः सूर्योदय होने पर पुनः अर्घ्य देते हैं, और अपने सामर्थ्य के अनुसार किसी सत्पात्र ब्राह्मण को दक्षिणा देते हैं।

यह त्योहार कब और कैसे प्रारम्भ हुआ, कहना कठिन है। लेकिन 'सूर्य-षष्ठी व्रत कथा'[1] के इक्कीसवें श्लोक के अनुसार—

> कृतानुसूययाह्येषा अत्रिपत्न्या विधानतः
> सौभाग्यं पति-प्रेमातितया लब्धं यथेच्छया

पहले इसका प्रारम्भ अत्रि की पत्नी अनुसूया ने किया और उसको सौभाग्य तथा पति-प्रेम की प्राप्ति हुई।

'छठ' के गीत पूर्णतः धार्मिक गीत हैं। मिथिला के धार्मिक मनोभाव, धर्म के नाम पर प्रचलित वहम, पारिवारिक विचार और मान्यताएँ, घरेलू

---

[1] 'सूर्य-षष्ठी व्रत कथा' किसी पुराण के सत्ताईस श्लोकों का संग्रह है, जिसमें नारद और सूर्य के प्रश्नोत्तर के रूप में 'छठ' त्योहार मनाने का विधान बताया गया है।

निष्ठा और आत्म-संयम—ये छठ के प्रिय विषय हैं; किंतु धर्म के रंगीन चोले में बन्द होते हुए भी छठ की गीत-शैली अपनी सहज वर्णांकित अभि-व्यक्ति के कारण अपनी परिधि में प्राण-पूर्ण है। उसका रचयिता शुष्क और अरसिक नहीं है। उसके हृदय में भी काव्य का सूक्ष्म द्रव फैला हुआ है। उसे भी संगीत की श्रुति-प्रिय ध्वनि में आनन्द आता है। कहना चाहिए, प्रेम का ऊहापोहात्मक-रूप, सूक्ष्म विश्लेषण और कवित्व का चमत्कृत रंग यहाँ मत ढूँढ़िये। सुन्दरता, कला और कला-विधायक प्रतिभा कहीं और जगह मिलेगी। हार्दिक श्रद्धा, निष्ठा-भरे उल्लास और आत्म-लक्षी उच्चता—इन्हींको यहाँ देखना है—

(१)

बेरि-बेरि बरजहु दीनानाथ हे
बबा हे तिरिया जनम जनि देहु
तिरिया जनम जब देहु हे दीनानाथ
बबा हे सुरति बहुत जनि देहु
सुरति बहुत जब देहु दीनानाथ हे
बबा पुरुख अमरुख जनि देहु
पुरुख अमरुख जब देहु दीनानाथ हे
बबा हे कोखिया बिहुन जनि देहु
कोखिया बिहुन जब देहु दीनानाथ हे
बबा हे सउतिन सउत जनि देहु
सउतिन सउत जब देल दीनानाथ हे
बबा हे कवन अपराध हम कयलौं
बड़ अपराध तुहुँ कएले अबला
अबला सास निपन पैर देल
कोन अपराध हम कइलौं दीनानाथ हे
बबा कोखिया बिहुन जब देल

बड़ अपराध तुहुँ कएले अबला गे
अबला ननदी पर हुतका चलओले
कओन अपराध हम कएलीं दीनानाथ हे
वबा हे पुरुख अमरुख जब देल
बड़ अपराध तुहुँ कएले अवला गे
दूध ही कटिअवे पएर धोएलह
कओन अपराध हम कयलि दीनानाथ हे
बबा हे सुरति बहुत जब देलह
बड़ अपराध तोहुँ कएले अबला गे
अबला डगरा क बइगन तोड़ि लएले

हे सूर्य भगवान, मैंने बार-बार अनुरोध किया कि तुम स्त्री का जन्म मत दो। अगर स्त्री का जन्म दो तो अत्यधिक सौंदर्य न दो। अगर अत्यधिक सौंदर्य दो तो मूर्ख पति न दो। यदि मूर्ख पति दो तो बाँझिन नहीं बनाओ। अगर बाँझिन बनाओ तो सौतिन नहीं दो।

लेकिन हे सूर्यदेव, तुमने मुझे सौतिन दी। हाय, मैंने कौन ऐसा अपराध किया ?

हे अबला, तुमने बहुत बड़ा अपराध किया। तुमने सास की लीपी हुई वेदी पर पैर रखा।

हे सूर्य भगवान, मैंने कौन-सा अपराध किया कि तुमने मुझे बाँझिन बनाया ?

हे अबला, तुमने बहुत बड़ा अपराध किया। तुमने अपनी ननद को घूँसे से मारा।

हे सूर्य भगवान, मैंने कौन-सा अपराध किया कि तुमने मुझे मूर्ख पति दिया।

हे अबला, तुमने बहुत बड़ा अपराध किया। तुमने दूध से पैर धोया।

हे सूर्य भगवान, मैंने कौन-सा अपराध किया कि तुमने मुझे अत्यधिक सौंदर्य दिया ?

हे अबला, तुमने बहुत बड़ा अपराध किया। तुमने डगरे (बाँस के खपाचों का बना हुआ एक वृत्ताकार पात्र) में बैंगन तोड़ा।

इस गीत से पता चलता है कि धर्म ने किस तरह ग्रामीण स्त्रियों के जीवन पर प्रभाव डाला है। यह धर्म में अन्ध-श्रद्धा का ही परिणाम है कि वे डगरे में बैंगन तोड़ना, और सास की लीपी हुई वेदी पर पैर रखना भी पाप समझती हैं। वस्तुतः धर्म एक ऐसी शक्ति है जो मानव-जीवन और मानव-इतिहास के समानान्तर चल रहा है। किसी भी जाति की सभ्यता उसके धर्म से सर्वथा रँगी होती है। कला-कौशल, साहित्य, विज्ञान, दर्शन-शास्त्र सभी पर और उनकी प्रत्येक अवस्था में धर्म का प्रभाव देखा गया है। टाल्सटाय ने अपनी (what is religion) नामक पुस्तक में लिखा है—

Religion remains what it has been in the past: the Chief motor and heart of human societies and without it, as without a heart, human life is impossible

धर्म आज भी प्राचीन-काल के समान बना हुआ है। वह मानव-जाति का संचालक और हृदय है। जिस प्रकार बिना हृदय के मनुष्य-जीवन असम्भव है, उसी प्रकार बिना धर्म के भी मनुष्य जीवन असम्भव ही है।

धर्म की इस सार्वभौमिकता के होते हुए भी जब वह अन्ध-विश्वास का रूप पकड़ लेता है तो वह मानव-जीवन के लिए विघातक सिद्ध होता है। इस गीत में अन्ध-भक्त स्त्रियों की कूप-मंडूकता और धर्म में अन्ध-श्रद्धा की एक क्षीण झलक वर्त्तमान है।

(२)

नदिया क तीरे-तीरे बोअले में राइ
छठी माइ के मृगा चरिय चरि जाइ
बाँधु हे छठी मइया अपन मिरिगवा
मारतन कओन भइया धनुखा चढ़ाय
कथि केर धनुखा कथिए केर तीर
सोने केर धनुखा रूपे केर हे तीर

रथ जित अबइछथिन कओन बहिन क भाइ
हे छठी माता करब अहाँ क सेवा
भरब अहाँ क डाला
अहाँ क सेवइत निरमल हयत काया

नदी के किनारे-किनारे मैंने राई बोई। हाय! छठी माँ का मृगा उसे नित्य चर जाता है।

हे छठी माँ, तुम अपने मृगा को बाँध रखो, नहीं तो मेरे अमुक भाई उसे अपने तीर का लक्ष्य बनायेंगे।

किस वस्तु का धनुष है? किस वस्तु का तीर?

सोने का धनुष है, और रूपे का तीर।

अहा! मेरी अमुक बहन का भाई दिग्विजय किये आ रहा है।

हे छठी माँ, मैं तुम्हारी विधि-पूर्वक पूजा करूँगी और पुष्पादि मिष्टान्न पदार्थों का अर्घ्य दूँगी, क्योंकि तुम्हारी सेवा करने से ही मेरा शरीर व्याधि-रहित होगा[1]।

(३)

काँच हीं बाँस के गहवर हे
आहे सोवरन लागल केंवार
ताहीं में सँ निकलु सुरुजमनी
आहे कओन दाइ ऊखम डोलाउ
अरग केर बेर भेल हे
बिहने के पहर में डोमिन बिटिया हे

---

[1] षष्ठीव्रतंचयेकेचित् करिष्यन्ति समाहिताः
दुःख दारिद्रय कुष्ठादि रोग नाशो भविष्यति
—जो एकाग्र मन से इस व्रत का अनुष्ठान करेंगे वह दुःख, दारिद्र्य और कुष्ठादि रोगों से मुक्त हो जायेंगे।
सूर्य-षष्ठी व्रत-कथा—श्लोक २२

बेटिया धनिया दउरिया लए आउ
अरग केर बेर भेल हे
बेटी पिअरी कलसुपवा लय आउ
पुरुब रंथी ठाढ़ भेल हे
बिहने के पहर में बनिआइन बेटिया हे
बनिआइन नवका कसइलिया लय आउ
अरग केर बेर भेल हे
बिहने क पहर में तोंहि मालिन बेटिया
मालिन सतरंगा हार लेइ आउ
अरग केर बेर भेल हे
बिहने क पहर में तोंहि बाभन देइया हे
बाभन पिअरी जनेउआ लय आउ
अरग केर बेर भेल हे

काँच बाँस का गहबर—देवालय है। उसमें सोने के किवाड़ लगे हैं। उससे सूर्य की मणिमय अंशु-मालाएँ निकल रही हैं।

हे सखी, अमुक दादी धूप से बेचैन होकर पंखा झल रही है।

अहा! अर्घ्य की बेला हो गई!

हे डोमिन की बेटी, कल प्रातःकाल धानी रंग की चँगेरी लाना।

अर्घ्य की बेला हो गई!

और हे डोमिन की बेटी, तुम पीले रंग का सूप लाना। वह पूर्व आसमान में सूर्य भगवान का रथ खड़ा है।

हे बनिआइन की बेटी, कल प्रातःकाल नई सुपारी लाना। अर्घ्य की बेला हो गई!

हे मालिन की बेटी, कल प्रातःकाल फूलों का सतरंगा हार लाना।

अहा! अर्घ्य की बेला हो गई!

और हे ब्राह्मण देवता, कल प्रातःकाल पीला यज्ञोपवीत लाना।

अहा! अर्घ्य की बेला हो गई!

(४)

खोंइछा के लेल अछता गेरुलि सुध नीर
चलि भेल कओन देइ पुत माँगे भीख
थोड़ नहीं लेव माता वहुत जनि दीउ
एगो पंडितवा माइ गे दुइ हर लेव
हरी-हरी परसन होउ हे माता छठि देइ भली

अमुक देवी आँचल में अक्षत और घड़े में सरिता का स्वच्छ जल लेकर छठी माँ से पुत्र की भीख माँगने चली।

हे माँ, मुझे थोड़ा नहीं चाहिए, और मुझे जरूरत से ज्यादा भी मत दो। मैं एक पंडित पुत्र, और दो हल जोतने लायक जमीन माँगती हूँ। हे दयाशीला छठी माँ, तुम शीघ्र प्रसन्न हो।

'थोड़े नहीं लेवं हे माता, बहुत जनि दीउ'—इन पंक्तियों में एक नारी-हृदय की सहज संतोष-भावना अपने स्वाभाविक रूप में बोल रही है। कबीर कहते हैं—

साई इतना दीजिये, जामें कुटुम समाय
मैं भी भूखा ना रहूँ, साधु ना भूखा जाय

(५)

बिहने के पहर में धरम केर बेरिया सुरुज चलु हे गवने
जएवों में जएवों कओन शाही के अंगना
माइ कनिया देइ के खोंइछा
दोहरिओ हथिया बइसल ओहि रे अंगना
धरम केर बेरिया सुरुज चलु हे गवने
हे जएवों में जएवों कओन शाही के अंगना
दोहरिओ दउरिया भरल ओहि रे अंगना
धरम केर बेरिया सुरुज चलु हे गवने

कल प्रातःकाल धर्म की बेला है। हाय! सूर्य भगवान अस्त हो रहे हैं।

मैं अमुक शाही के आँगन में जाऊँगा, और कन्या देवी के आँचल में जाऊँगा। उनके आँगन में मेरे लिए दंतार हाथी खड़ा है।

अहा! धर्म की बेला है, और सूर्य भगवान अस्त हो रहे हैं।

मैं अमुक शाही के आँगन में जाऊँगा और कन्या देवी के आँचल में जाऊँगा। उनके आँगन में मेरे लिये फल-फूल और मिष्टान्न से भरी चंगेरी रक्खी है।

अहा! धर्म की बेला है और सूर्य भगवान अस्त हो रहे हैं।

(६)

केरवा फरए घौंदसए ऊपर सुग्गा मँड़राय
मारवउ रे सुगवा धनुख सए सुगा खँसु मुरछाय
उजे केरवा जनु कोइ छुवय छठी माता ला
छठी माइ के जएतइन सनेस अरग देवय ला
उजे काँचए बाँस केर बँहिया रेशमक लागल डोर
भरिया होयतन कओन भइया भार लय पहुँचाय
बाट पुछथिन बटोहिया भइया ई भार केकर जाय
आहे छठि अइसन ठकुराइन ई भार हुनकर जाय
नेमुआ फरए घौंदसए ऊपर सुग्गा मँड़राए
मारवउ रे सुगवा धनुखसए सुगा खँसु मुरछाए
उजे नेमुआ जनु कोइ छुबए छठी माता ला
छठी माइ के जएतइन सनेस अरग देवय ला
उजे काँचए बाँस केर बँहिया रेशमक लागल डोर
भरिया होयतन कओन भइया भार लय पहुँचाय
बाटहि पुछथिन वटोहिया भइया ई भार केकर जाय
आहे छठि अइसन ठकुराइन ई भार हुनकर जाय

घौंद-के-घौंद केला फला है। उसे चखने के लिए सुग्गा मँडरा रहा है। रे सुग्गे, मैं तुम्हें तीर से मारूँगी और तुम्हें मूर्च्छा आ जायगी।

केले के घौंद को कोई नहीं छूये। वह छठी माँ के लिये सुरक्षित है। अर्घ्य देने के लिए वह छठी माँ को सौगाद जायगा।

काँच बाँस की बहँगी है और उसमें रेशम की डोर लगी है। मेरे अमुक भाई भरिया होंगे और छठी माँ को सौगाद पहुँचायेंगे। रास्ते में पथिक पूछेंगे कि यह भार किसका है? तब मेरे अमुक भाई कहेंगे—

'छठी-सी यशस्विनी हैं। उन्हींका यह भार है।'

यही अर्थ आगे की पंक्तियों का भी है। अन्तर इतना ही है कि उसमें केले के स्थान पर नीबू जोड़ दिया गया है।

सूर्यदेव को अर्घ्य देने की तैयारी हफ़्तों से होने लगती है। नारियल, संतरा, अनानास आदि फल-फूल और मिष्टान्न तथा अनेक प्रकार के भोज्य-पदार्थ पहले से ही सुरक्षित रखे जाते हैं। उन्हें कोई घरेलू जानवर, जैसे—कुत्ते, बिल्ली और कोई पक्षी; जैसे—कौवे, सुग्गे आदि चखने नहीं पाते। प्रातः और संध्या सूर्य को अर्घ्य देने के बाद लोग अर्घ्य दी हुई वस्तु को खाते हैं। इसलिए इस गीत में केले के घौंद पर मँडराते हुए सुग्गे को तीर से मारने की चेतावनी दी गई है।

(७)

चारि पहर राति जल-थल सेविलौं
सेविलौं छठि गोरथारि छठी माता
परसन होउ न सहाय छठी माता
अपना ला माँगिलौं अन-धन लछमी
युगे-युगे माँगु अहिबात छठी माता
परसन होउ न सहाय छठी माता
घोड़ा चढ़न लागि बेटा माँगिलौं
माँगिलौं घर-सचिनि पतोहु छठी माता
बयना बहुरे लागि बेटी माँगिलौं
पंडित माँगिलौं दमाद छठी मइया
परसन होउ न सहाय छठी मइया

रात के चारों पहर स्थल और जल में बैठकर मैं तुम्हारे चरण की पूजा करती हूँ।

हे छठी माँ, तुम मुझ पर प्रसन्न होओ।

मैं अपने लिए अन्न-धन, लक्ष्मी माँगती हूँ और मेरा सुहाग युग-युग अटल रहे—यही मेरी साध है।

हे छठी माँ, तुम मुझ पर प्रसन्न होओ।

घोड़ा पर चढ़ने के लिए बेटा माँगती हूँ और घर के काम-काज सँभालने-वाली पतोहू। वयना वापिस करने के लिए बेटी और पण्डित दामाद माँगती हूँ।

हे छठी माँ, तुम मुझ पर प्रसन्न होओ।

गीत में 'सचनी' और 'वयना' दो शब्द आये हैं। 'सचनी' संस्कृत के "संचय' शब्द का अपभ्रंश है। 'सचनी' का शब्दार्थ है—संग्रह करनेवाली और संचय का अर्थ है—समूह, संग्रह।

मिथिला के गाँवों में जब किसी के कुटुम्ब या मित्र कोई मिष्टान्न या भोज्य पदार्थ अपने सगे-सम्बन्धियों को उपहार भेजते हैं तो वे उनका स्वयं ही उपभोग न कर अपने पड़ोसियों और मित्रों को भी थोड़ा-बहुत भेजते हैं। सगे-सम्बन्धियों को इस उपहार भेजने की प्रथा को ही 'वयना' कहते हैं।

किसी वस्तु का स्वयं ही उपभोग न कर अपने पड़ोसियों और मित्रों को उपहार भेजने की यह प्रथा बड़ी सुन्दर है। इसमें हमें संसार के प्राचीनतम ग्रन्थ वेद की 'संगच्छध्वं, संवदध्वं, सं वो मनांसि जायताम्' इस आज्ञा की झाँकी मिलती है।

मिथिला में किसी भोज्य-वस्तु के खाने के समय छोटे-छोटे बच्चे निम्न-लिखित तुकबन्दी गाते हैं—

बाँट-जूट खाये त गंगा नहाय
असगर खाये गुह डबरा नहाय

जो कोई वस्तु बाँट कर, हिलमिल-कर खाता है, उसको गंगा-स्नान करने का पुण्य होता है और जो अकेला खाता है, वह पुरीष के डबरे में स्नान करता है।

(८)

छोटि-मोटि धोबिनी क बेटिया कि कँचए कली
नुअवा जँ धोइहे गे धोबिन सुरुजक जोत
धोए क पसारिहे गे धोबिन चनना विरीछ
सबके डलिअवा दीनानाथ देलि अगुआय
बाँझिन डलिअवा दीनानाथ देलि पछुआय
सासु मारे हुथका दीनानाथ ननद पढ़े गारि
पर कोख गोतिनि हे दीनानाथ से हो उलहन देय
त लेहि-लेहि गे बाँझिन अँचरा पसार
सासु के हुथका गे बाँझिन गंगा बहि जाय
ननदो के गरिया गे बाँझिन दिन दुइ चार
गोतिनि उलहनमा गे बाँझिन देहि न सवाय
देवे के त देलिअइ दीनानाथ छिनि मत लिउ
बाँझिपन छोड़उलि हे दीनानाथ मराँछी जनि लगाउ

हे धोबिन की ठिगनी बेटी, तुम अभी कच्ची कली हो।

तुम मेरी चुँदरी सूर्य के प्रकाश की तरह साफ धोना और चन्दन के पेड़ पर सूखने के लिये पसारना।

हे सूर्यदेव, तुमने सभी व्रतियों की डाली आगे कर दी और मुझ बाँझिन का डाला पीछे कर दिया।

हे दीनानाथ, मेरी सास मुझे घूँसे से मारती है और ननद गाली देती है। और कोख की जनी गोतनी भी मुझे उलाहना देती है।

हे बाँझिन, आँचल पसार कर पुरस्कार लो। सास के घूँसे से गंगा बह जायगी। ननद की गाली दो-चार दिनों के लिए है और गोतनी के उलाहने का जवाब दो।

हे दीनानाथ, कहने के लिए तो तुमने पुरस्कार दिया। लेकिन फिर उसको वापस मत लो। तुमने मेरा बन्ध्यापन दूर कर दिया, लेकिन उसमें रद्दोबदल मत करो।

(६)

अयोध्या नगरिया माइ हे दउरा बुनाइछइ
दउरो न मिलइछइ माइ हे कवने अवगुनमे
दीनानाथ न उगथिन माइ हे कओने अवगुनमे
उगु-उगु दीनानाथ हे लगएलि वड़ देरिया
अहाँक उगइते दीनानाथ हे दुनिया होएत इजोरिया
अहाँ क डुबइते दीनानाथ हे दुनिया होएत अन्हरिया
अयोध्या नगरिया माइ हे गेहुँआ बिकाइछइ
गेहुँओ न मिलइ माइ कवने अवगुनमे

हे सखी, अयोध्या नगर में चंगेरी बुनी जाती है। जाने किस अवगुण के कारण चंगेरी नहीं मिलती।

हे सूर्यदेव, उगो। तुम्हारे उदय होने में बड़ी देर हुई। तुम्हारे उदय होने से ही दुनियाँ प्रकाशित होगी और अस्त होने से ही दुनियाँ अँधेरी।

हे सखी, जाने किस अवगुण के कारण सूर्यदेव नहीं उगते।

अयोध्या नगर में गेहूँ बिकता है। जाने किस अवगुण के कारण गेहूँ नहीं मिलता। और हे सखी, न मालूम क्यों सूर्यदेव नहीं उगते।

(१०)

कओन भइया चललन मगहर मुंगेरवा
कओन बहिनो कह पठओलन कओन भइया समधिया
हमरा लागि लइह भइया केला क घउँदवा
एँसो के समइया बहिनो केरा भेल मँहगिया
छाँड़ि देहु आहे बहिनो छठि सन वरतिया
होए देहु आहो भइया केरा क मँहगिया
हमें न छाड़व भइया छठि सन बरतिया
पान-फूल से आहो भइया छठि माइ क अरगिया
हुनके सेवइत भइया निरमल हयत काया

अमुक भाई मगह और मुंगेर चले। अमुक बहन ने खबर भेजी—हे भाई, मेरे लिए केला के घौंद उपहार में लाना।

हे बहन, इस साल केला बहुत महँगा है। इसलिए छठ व्रत मत करो।

बहन ने कहा—हे भाई, केला महँगा है तो क्या? मैं छठ-सा पवित्र व्रत नहीं छोड़ूँगी। पत्र-पुष्प से ही छठी माँ को अर्घ्य दूँगी, क्योंकि हे भाई, उनकी सेवा करने से ही मेरी काया निर्मल होगी।

(११)

काँचहि बाँस केर गहवर हे
ईंगुरे ढेउरल चारों कोन
भले रे रंग कोहवर हे
ताहि में जँ सुतलन दीनानाथ
निठि लागल छठि देइ हे
उठावए गेलथिन कोन बहिनो
आहे उठु भइया भेल भिनुसार
अरग केर बेर भेल
भले रे रंग कोहवर हे
अइसन ननदि दुचार न
कतहुँ न देखल हे
आहे आधे रात बोलु भिनुसार
अरग केर बेर भेल
उठावए गेलथिन अमा मोरा
आहे उठु बबुआ भेल भिनुसार
अरग केर बेर भेल
भले रे रंग कोहवर हे
एहन अमा दु-चार न
अमा आधे रात बोले भिनुसार

अरग केर बेर भेल
भले रे रंग कोहबर हे

काँच बाँस का गहबर है। उसके चारों कोने ईंगुर से चित्रित हैं।

कैसा अलंकृत कोहबर है—री सखी!

ऐसे सुचित्रित कोहबर में पैठ कर सूर्य्य भगवान सोये, और उन्हींकी पीठ के नगीच छठी देवी सोई।

हे सखी, मेरी अमुक बहन ने वहाँ जाकर कहा—हे भाई, उठो। सुबह हो गई। अर्घ्य की बेला समीप है।

मैंने ऐसी बेहूदी ननद आज तक नहीं देखी। आधी रात को सुबह कह रही है। कहती है अर्घ्य की बेला हो गई।

हे सखी, मेरी माँ ने वहाँ जा कर कहा—हे पुत्र, उठो। सुबह हो गई। अर्घ्य देने की बेला समीप है।

कैसा अलंकृत कोहबर है—री सखी!

मैंने ऐसी नासमझ माँ आज तक नहीं देखी। आधी रात को सुबह कह रही है। कहती है अर्घ्य की बेला हो गई।

कैसा अलंकृत कोहबर है—री सखी?

(१२)

बारि छठि देइ गवने चललि
राति हे छठि कहमा गँवउलि
रात गँवउली कोन मिश्रक अँगना
जहाँ गाइ के गोबर निपन भेल उहाँ
जहाँ दोहरि हथिया बइसन भेल उहाँ
जहाँ दोहरि कुरबार सँ भरन भेल उहाँ
जहाँ दोहरि कलसुप सँ अरक भेल उहाँ
जहाँ पीअर वस्त्र पेन्हनन भेल उहाँ
जहाँ उज्जर खस्सी भभूत भेल उहाँ
जहाँ गाइक घिउ सँ हुमाद भेल उहाँ

द्विरागमन काल में तरुणी छठी देवी विदा हुई।

हे छठी देवि, तुमने आज रात कहाँ गँवा दी ?

हे व्रती, मैंने रात अमुक मिश्र के आँगन में गँवाई है; जहाँ गाय के गोबर से आँगन लीपा गया है; जहाँ दो-दो दँतैले हाथी मेरे स्वागत में बिठाये गये हैं; जहाँ अक्षत, केले और नीबू से दो-दो घड़े भर कर मेरी खोंछ भरी गई है, जहाँ मुझे दो-दो सुन्दर सूप भर कर अर्घ्य दिया गया है, जहाँ मुझे नवीन पीताम्बर पहनाया गया है, जहाँ मुझे चढ़ावे में सफ़ेद बकरे भेंट किये गये हैं, और जहाँ गाय के घी से होम किया गया है—हे व्रती, मैंने आज वहीं अमुक मिश्र के आँगन में रात गँवाई है।

श्यामा-चकेवा

प्रसिद्ध त्योहार 'छठ' की समाप्ति के बाद कार्त्तिक महीने के शुक्ल पक्ष में श्यामा-चकेवा के गीत गाये जाते हैं। 'श्यामा-चकेवा' बालक-बालिकाओं का खेल है। मिथिला के कुछ खास-खास गाँवों और नगरों में ही यह खेल खेला जाता है। लोक-गीतों के दौरे में पता चला कि एक ही जिले के कुछ गाँवों में तो यह खेल प्रचलित है, और कुछ गाँवों में इसका नाम तक लोग नहीं जानते। शायद इस संस्कृति-शून्य परिवर्त्तन के युग में साहित्य, संस्कृति, शिक्षा-विज्ञान (phonetics) और इतिहास के लुप्त होने के साथ-साथ अज्ञात-काल से परम्परा-द्वारा प्रचलित प्राचीन गीत भी धीरे-धीरे भूले जा रहे हैं।

गौर से देखा जाय तो 'श्यामा-चकेवा' एक किस्म का देहाती अभिनय है, जिसमें श्यामा और चकेवा खेल की प्रधान पात्रिका और पात्र हैं। श्यामा बहन है, और चकेवा भाई। 'श्यामा-चकेवा' के अतिरिक्त इस खेल के निम्न-लिखित छः पात्र और हैं—

(१) चुंगला
(२) सतभइया
(३) खँड़रिच
(४) वन-तीतर
(५) झाँझी कुत्ता
(६) वृन्दावन

(१) 'चुंगला' इस खेल का एक दिलचस्प पात्र है। चुंगला का अर्थ है—वह व्यक्ति जो किसी की पीठ पीछे निन्दा करे अथवा जो इधर की उधर लगावे और अपना उल्लू सीधा करने के लिए जैसे को जैसा न कह कर वास्त-

विकता पर पर्दा डाले। हर समाज और देश में ऐसे चुगलखोरों—पीठ पीछे निन्दा करनेवालों का बोलबाला है। दरअसल श्यामा-चकेवा के खेल का उद्देश्य है—भाई-बहन दोनों के हृदय में विशुद्ध प्रेम-भाव का संचार करना और चुंगला अपनी कलुषित चुगलखोर वृत्ति से उस प्रेम पर कुठाराघात करता है। इसीलिए इस खेल में हमारी बहनें चुंगला की खिल्लियाँ उड़ाती हैं। चुंगला की मिट्टी की जो मूर्त्ति बनाई जाती है वह बेवकूफों की-सी। उसकी कमर में आर-पार छेद कर पाट के बारीक सूत लगा दिये जाते हैं, जिसको 'श्यामा-चकेवा' के खेल खेलनेवाली लड़कियाँ प्रतिदिन थोड़ा-थोड़ा करके जलाती हैं और निम्नलिखित गीत की बार-बार आवृत्ति करती हैं—

चुंगला करे चुंगली बिलइया करे म्याऊँ
ध ला चुंगला के फाँसी दीउ
जहाँ हमर बाबा बइसे तहाँ चुगला चुंगली करे
जहाँ हमर भइया बइसे तहाँ चुंगला चोरी करे
धला चुंगला के फाँसी दीउ

चुंगला चुगली खाता है, और बिल्ली म्याऊँ करती है। चुंगला को पकड़ लाओ। फाँसी दे दें। जहाँ हमारे पिता बैठते हैं, वहाँ चुँगला पीठ-पीछे दूसरों की निन्दा करता है। जहाँ हमारे भाई बैठते हैं, वहाँ चुंगला चोरी करता है। इसलिये चुंगला को पकड़ लाओ। फाँसी दे दें।

(२) 'श्यामा-चकेवा' से किसी व्यक्तिगत भाई-बहन का ही बोध होता है। इसलिये इस खेल में 'सतभइया' नामक एक नवीन पात्र की कल्पना की गई है। 'सतभइया' का अर्थ है—'सात भाई'। इस नवीन पात्र की कल्पना करने का आशय यह है कि किसी व्यक्तिगत भाई-बहन का गुण-गान न कर 'श्यामा-चकेवा' के खेल में भाग लेनेवाली सभी बहनों के भाइयों का व्यापक रूप से गुण-गान किया जाय।

'सतभइया' एक पक्षी भी होता है। लेकिन यहाँ 'सतभइया' को 'सात-भाई' कह कर सभी भाई बहनों के लिये व्यापक अर्थवाला इसलिये बताया गया कि 'श्यामा-चकेवा' के खेल खेलने के समय 'सतभइया' की मिट्टी की

जो मूर्त्ति बनाई जाती है उससे किसी पक्षी-विशेष का बोध नहीं होता। 'सतभइया' की आकृति मनुष्य की-सी होती है। उनकी संख्या भी एक नहीं, सात होती है। 'सतभइया' शब्द का अर्थ हम पक्षी-विशेष उस दशा में करते, जबकि उसकी आकृति पक्षी की-सी बनाई जाती; और उनकी संख्या भी एक होती। किंतु, ऐसा नहीं होता।

'सतभइया' पात्र से सम्बद्ध जो गीत है उससे भी इसी कथन की पुष्टि होती है। मुलाहिजा कीजिये—

साम चाको साम चाको अइह हे
कूँर खेत में बइसिह हे
सब रंग पटिया ओछइह हे
ओहि पटिया पर कय-कय जना
सातो जना
एक-एक जना के कय-कय पुरि
एक-एक जना के सात-सात पुरि

ओ साम (श्यामा) चाको (चकेवा)! ओ साम चाको! कूँर खेत में आना, और प्रसन्न होकर बैठना। वहाँ हर रंग का बिछावन बिछाना।

उस बिछावन पर कितने भाई बैठे?

सात भाई बैठे।

एक-एक भाई के हाथ में कितनी-कितनी पूरियाँ?

एक-एक भाई के हाथ में सात-सात पूरियाँ।

रेखाङ्कित पंक्तियों और उनके अर्थ पर ग़ौर करना चाहिये।

(३) 'खँड़रिच' शब्द खञ्जन का पर्याय है। मिथिला के गांवों में 'खञ्जन' की जगह 'खँडरिच' ही प्रयुक्त होते हैं। खञ्जन शरद-ऋतु में आता है, और इसी ऋतु में 'श्यामा-चकेवा' के खेल भी खेले जाते हैं। इसलिये 'श्यामा-चकेवा' के खेल खेलनेवाली बालिकाएँ शरद-ऋतु के आगमन का अग्रदूत होने के कारण इसको अपने खेल के पात्रों में स्थान देती हैं, और इसके शुभागमन पर मंगलात्मक गीत गाती हैं।

(४) वन-तीतर—'श्यामा-चकेवा' के गीत नदी किनारे, खेतों और वनों में गाये जाते हैं। इसलिए एक वनवासी पात्र की भी कल्पना की गई है। तीतर वन और झाड़ी-झुरमुटों में ही रहता है। इसीलिये इसको 'श्यामा-चकेवा' के पात्रों में स्थान मिला है।

(५) झाँझी कुत्ता—प्रत्येक व्यक्ति का अपना एक परिवार है। व्यक्ति ईकाई है, और ईकाइयों के जोड़ का नाम परिवार है। परिवार में मनुष्य, कुत्ते, बिल्ली, गाय, भैंस, बैल सभी शामिल हैं। गाँवों में जो गृहस्थ हैं उन सबके घर में प्रायः एक पालतू कुत्ता होता है। इसलिए 'श्यामा-चकेवा' के खेल खेलनेवाली स्त्रियाँ जब वन-बाग़ों, खेतों और जंगलों में जाती हैं तो कुत्ते को भी साथ ले लेती हैं। 'श्यामा-चकेवा' के पात्रों में कुत्ते को स्थान मिलने का एक कारण यह भी है कि वन-बागों और जंगलों में रहनेवाले भेड़िये, सूअर आदि खूनी जानवरों से आत्म-रक्षा की जाय।

(६) 'वृन्दावन' का आशय वन-विशेष से है। लेकिन इसकी आकृति मनुष्य के मुख की-सी बनाई जाती है, और इसके शरीर में पतली-पतली लम्बी सींकें लगा दी जाती हैं। जब गीत गाती हुई लड़कियाँ वन-बागों और खेतों में जाती हैं, तो इन सींकों में आग लगा देती हैं, और निम्न-लिखित पंक्तियों की जोर-जोर से आवृत्ति करती हैं—

> वृन्दावन में आग लागल कोइ न बुझावय हे
> हमरा से कोन भइया तिनहिं बुझावय हे

वृन्दावन में आग लग गई है। हाय! कोई नहीं बुझाता। हमारे अमुक भाई हैं, वही इसे बुझायेंगे।

उपर्युक्त पात्रों को मूँज अथवा बाँस के खपाचों की बनी चँगेरियों में रख कर खेल में शरीक होनेवाली लड़कियाँ उनमें चिराग जला देती हैं, और उन्हें सिर पर लेकर झूमती हुई अपने टोले-मुहल्लों तथा गाँव की गलियों की परिक्रमा करती हैं। परिक्रमा की समाप्ति पर लड़कियाँ लहलहाते हुए खेतों के किनारे, तुलसी के चबूतरे के निकट अथवा आम, इमली या नीम की छाँह में बैठ कर 'श्यामा-चकेवा' के पात्रों को अपनी-अपनी चंगे-

रियों से निकाल कर जमीन पर रखती हैं, और उन्हें हरी दूब की नन्हीं-नन्हीं फुनगियाँ चरने को देती हैं। इस प्रकार पात्रों को चराने के बाद लड़कियाँ अपने-अपने ठिकाने लौट आती हैं।

'श्यामा-चकेवा' का खेल कार्तिक महीने के शुक्ल पक्ष की सप्तमी तिथि से प्रारम्भ होता है, और महीने के अन्त में अर्थात् कार्तिक की पूर्णमासी को समाप्त हो जाता है। पूर्णमासी के दिन खेल में भाग लेनेवाली बालिकायें केले के थम्भ का बेड़ा बनाती हैं, और अपने-अपने पात्रों को तोड़-फोड़ कर उस पर रख देती हैं तथा रास्ते में पात्रों के कलेवे के लिए मिट्टी के एक बक्स में चावल, दूसरे में चूरा, और तीसरे में मिठाई और दही रख कर बेड़े पर रख देती हैं। इसके बाद बेड़े को गाँव के निकटवर्ती तालाब या नदी में छोड़ देती हैं। इस समय जो गीत गाये जाते हैं, वे 'श्यामा-चकेवा' की विदाई के गीत के नाम से प्रसिद्ध हैं।

यहाँ 'श्यामा-चकेवा' के कुछ चुने हुए गीत दिये जाते हैं—

(१)

जइसन नदिया सेमार तइसन भइया असवार
जइसन केरवा क थम्भ तइसन भइया क जांघ
जइसन धोबिया क पाट तइसन भइया का पीठ
जइसन रेशम क रेश तइसन भइया क केश
जइसन आम क फाँक तइसन भइया क आँख
जइसन चन्ना विरीछ तइसन भइया हाथ क लाठी
जइसन जरल जराठी तइसन चुंगला हाथ क लाठी

जिस प्रकार नदी के वक्षःस्थल पर सेवार छा जाता है, उसी प्रकार मेरा भाई घोड़े की पीठ पर सवार है।

जैसा केले का थम्भ होता है, वैसी ही मेरे भाई की जाँघ है। जैसा धोबियों के कपड़ा साफ करने का लकड़ी का मजबूत पाट होता है, वैसी ही मेरे भाई की पीठ है।

जिस तरह रेशम के रेशे चिकने और मुलायम होते हैं, उसी तरह मेरे भाई के केश हैं। जैसी आम की फाँक होती है, वैसी ही मेरे भाई की आँख है।

जैसा चन्दन का वृक्ष होता है, वैसी ही मेरे भाई के हाथ की लाठी है, और जैसी अधजली जराठी होती है, वैसी ही चुंगले के हाथ की लाठी है।

उपमायें वे ही हैं, जो ग्राम या ग्राम के आस-पास दीख पड़ती हैं। इसमें किसी प्रकार की टीमटाम या तड़क-भड़क नहीं।

(२)

किनकर हरिअर-हरिअर डिभवा गे सजनी
कोन बहिनो के चरइछइन चकेउआ गे सजनी
शरदेन्दु भइया के इहो हरिअर डिभवा गे सजनी
मणि बहिनो के चरइछन चकेउआ गे सजनी
किनकर राज-महाराज गे सजनी
किनका राजे खेलवइ झुमरिया गे सजनी
किनकर राज दुखराज गे सजनी
किनकर राजे कतवइ चरखवा गे सजनी
बबाक राज महाराज गे सजनी
भइया राजे खेलवइ झुमरिया गे सजनी
ससुरक राज दुखराज गे सजनी
स्वामी राज कतवौं चरखवा गे सजनी

हे सखी, यह किसकी जौ और गेहूँ की हरी-भरी कोंपलें हैं? और किस बहन का यह चकेवा चर रहा है?

उसकी सखी ने उत्तर दिया—

हे सखी, यह शरदेन्दु भाई की जौ और गेंहूँ की हरी-भरी कोंपलें हैं, और मणिमेखला बहन का यह चकेवा चर रहा है।

हे सखी, किसका राज्य सुखमय होता है? किसके राज्य में श्यामा-चकेवा के खेल खेलूँगी? किसके राज्य में दुख झेलूँगी, और किसके राज्य में चर्खा कातूँगी?

उसकी सखी ने कहा—

हे सखी, पिता का राज्य सुखमय होता है। भाई के राज्य में 'श्यामा-चकेवा' के खेल खेलूँगी। श्वसुर के राज्य में दुख झेलूँगी, और अपने सजन के राज्य में चर्खा कातूँगी।

इस गीत से जान पड़ता है कि स्त्रियाँ श्वसुर के राज्य में कष्ट पाती हैं। सास-ससुर का व्यवहार बहू के प्रति प्रायः रूखा होता है। मिथिला के गाँवों में ऐसी विरले ही सास हैं, जो अपनी बहू से सहानुभूति की दो बातें करें। गीत की अंतिम पंक्ति 'स्वामी राज कतवों चरखवा गे सजनी'—'हे सखी, मैं सजन के राज्य में चर्खा कातूँगी' से पता चलता है कि वर्त्तमान चर्खा-आन्दोलन-युग के पहले भी हमारे यहाँ चर्खे चलाने का चलन था। और राजकुमारियाँ और रानियाँ तक चर्खे चलाना उन्नति और पर्दापोशी का साधन समझती थीं।

(३)

धान-धान-धान त भइया कोठी धान
चुंगला कोठी भुस्सा
आरे वृन्दावन जारे वृन्दावन
भइया मुख पान चुंगला मुख कोइला
मटर-मटर-मटर त भइया कोठी मटर
चुंगला कोठी फटर
आरे वृन्दावन जारे वृन्दावन
भइया मुख पान चुंगला मुख कोइला
चाउर-चाउर-चाउर त भइया कोठी चाउर
चुंगला कोठी छाउर
आरे वृन्दावन जारे वृन्दावन
भइया मुख पान चुंगला मुख कोइला
उरीद-उरीद-उरीद त भइया कोठी उरीद
चुंगला कोठी फुरीद

आरे वृन्दावन जारे वृन्दावन
भइया मुख पान चुंगला मुख कोइला

हमारे भाई की कोठी में धान भरे, और चुंगले की कोठी में भूसा।

हे सखी, आओ हम वृन्दावन चलें। हमारे भाई के मुँह में पान पड़े, और चुंगले के मुँह में कोयला।

हमारे भाई की कोठी मटर से भरे, और चुंगले की कोठी में चूहे डंड पेलें।

हे सखी, आओ हम वृन्दावन चलें। हमारे भाई के मुँह में पान पड़े, और चुंगले के मुँह में कोयला।

हमारे भाई की कोठी में चावल पड़े, और चुंगले की कोठी में राख।

हे सखी, आओ हम वृन्दावन चलें। हमारे भाई के मुँह में पान पड़े, और चुंगले के मुँह में कोयला।

हमारे भाई की कोठी उर्द से भरे, और चुंगले की कोठी में चूहे डंड पेलें।

हे सखी, आओ हम वृन्दावन चलें। हमारे भाई के मुँह में पान पड़े, और चुंगले के मुँह में कोयला।

इस प्रकार प्रत्येक अन्न का नाम जोड़ कर इस गीत की आवृत्ति की जाती है, और खेल में भाग लेनेवाली बालिकाएँ चुंगले की खिल्लियाँ उड़ाती हैं।

(४)

सामा खेले गेलों में इन्दुशेखर भइया केर टोल
चन्द्रहार हेराइ गेल हे भइया डलवा लय गेल चोर
चोरवा क नाम गे बहिनी बताए देहु हे मोर
चोरवा से चोरवा हो भइया अनजानु रइया बरजोर
गाढ़े बान्ह बन्हिया हो भइया रेशम केर हे डोर
जूता चढ़ि मारिह हे भइया करेजवा सालए मोर

अमुक भाई के मुहल्ले में मैं सामा खेलने गई।

हे भाई, वहाँ मेरा चन्द्रहार भूल गया, और मेरी चँगेरी किसी ने चुरा ली। भाई ने पूछा—हे बहन! कहो, उस चोर का नाम क्या है?

बहन ने कहा—हे भाई! अमुक राय चोर हैं। उन्होंने मेरी चँगेरी और चन्द्रहार चुराये हैं। हे भाई, आप उसे कस कर रेशम के रस्से में बाँधें, और जूते से उसकी खबर लें। वह काँटा बन कर मेरे कलेजे में चुभ रहा है।

कभी-कभी ऐसा होता है कि 'श्यामा-चकेवा' के खेल खेलनेवाली बालिकाएँ अपने मिट्टी के पात्रों को ज़मीन पर रख कर गाती हुई दूर निकल जाती हैं, जब गाँव के शरारती लड़के उन्हें चिढ़ाने के लिए उनके पात्रों को चुरा लेते हैं। इस गीत की गायिका ने किसी लड़के की इसी शरारत से तंग आकर अपने भाई से शिकायत की है, और उसकी सीनाज़ोरी के लिए उसको उपयुक्त सजा देने का अनुरोध किया है।

(५)

सामा खेले गेलौं इन्दुशेखर भइया आँगन हे
आहे कनिया भउजो लेल लुलुआय
इहाँ रे कहाँ आएल हे
त जनि लुलुआउ भउजो जनि
पारु गारिओ हे
जयखन रहब माए-बापक राज
तयखन सामा खेलव हे
छूटि जयतइ माय-बाप क राज
छोड़व अहाँक आँगन हे
एतना बचनिया जव सुनलन भइया
भइया मारे लगलन तिरवा घुमाय
बहनिया मोरा पाहुन हे

हे सखी, अमुक भाई के आँगन में मैं सामा खेलने गई। वहाँ नवोढ़ा भाभी ने मुझे दुत्कारा कि तुम यहाँ कहाँ आई हो?

मैंने कहा—हे भाभी, तुम मुझे इस तरह मत फटकारो। और न मुझे गाली दो। जब तक मैं माँ-बाप के राज्य में हूँ, तभी तक सामा खेलती हूँ। जब माँ-बाप का राज्य छूट जायगा, तो तुम्हारा आँगन भी छोड़ दूँगी।

जब मेरे अमुक भाई ने यह सुना तो वह आगबगूला हो गये, और तीर लेकर भाभी को मारने दौड़े। फिर उन्होंने भाभी को समझाया कि तुम बहन को इस तरह मत फटकारो। क्योंकि बहन हमारी पाहुन है।

इस गीत में दिखलाया गया है कि बहन के प्रति भाई के हृदय में कितना अगाध प्रेम होता है, और भाभी अपनी ननद के साथ कैसा रूखा सलूक करती है। निम्न-लिखित पद्य—

जयखन रहब माय-बापक राज तयखन सामा खेलब हे
छूटि जयतइ माय-बाप क राज छाड़ब अहाँ क आँगन हे

बड़े ही मार्मिक और करुण-रस-पूर्ण हैं।

(६)

नदिया क तीरे-तीरे कोन भइया खेलत शिकार
कह पठवलथिन माइ हे मणि वहिनो
के समाध हे माइ
भइया अवथिन मेहमान गे माइ
माइ कोठी नहिं आरस चउरवा
पनवसना नहिं बीड़ा पान गे माइ
कोना राखब माइ कोन भइया केर मान
माइ हाट बाजार सँ चउरवा मँगएवौं
तमोलिन घर बीड़ा पान
भले विधि राखब बेटी
कोन भइया केर मान

नदी-किनारे अमुक भाई खेल रहे हैं।

हे सखी, उन्होंने मणिमेखला बहन को अपने आने की सूचना भेज दी है।

बहन ने जाकर अपनी माँ से कहा—

हे माँ, आज मेरे भाई आ रहे हैं। लेकिन न तो तुम्हारी कोठी में महीन चावल हैं, और न पान-पात्र में पान के बीड़े। फिर हे माँ, तुम किस तरह अमुक भाई का स्वागत करोगी?

माँ ने कहा—हे बेटी, बाजार से मैं महीन चावल मँगाऊँगी, और तमोलिन के घर से पान के बीड़ा। और इस तरह मैं तुम्हारे अमुक भाई का स्वागत करूँगी।

(७)

सामा खेले गेलो माइ हे कोन भइयक टोल
गोखुलक कँटवा लुब्रुकि धएलक सड़िया
छाड़ु छाड़ु कँटवा लगउलि बड़ हे देरिया
मोर पछुअरवा दरजिया भइया हितवा
नान्हे टोपे सिइह दरजिया मोर चित्र सड़िया
सड़िया सिअउनि बहिनि की ए देव दनमा
चढ़े के घोड़ा देवौं काने दुनु सोनमा
अगिया लगएवो बहिनि काने दुनु सोनमा
जब हम जएबौं दरजिया अपन ससुररिया
सासु देवो दनमा ननद देवो दछिना

हे सखी, अमुक भाई के मुहल्ले में मैं सामा खेलने गई। वहाँ गोखुले के पैने काँटे से मेरी साड़ी क्षत-विक्षत हो गई।

हे काँटे, तुम मेरी साड़ी छोड़ दो। घर वापस जाने में मुझे बड़ी देर हो गई।

मेरे घर के पिछवाड़े बसे हुए हे दर्जी, तुम मेरे हितचिन्तक हो। मेरी इस फटी हुई चित्रित साड़ी को बारीकी से सी दो।

दर्जी ने कहा—हे बहन, अगर मैं तुम्हारी साड़ी सी दूँ, तो उसके पुरस्कार में तुम मुझे क्या दोगी?

नायिका ने कहा—हे दर्जी, चढ़ने के लिए घोड़ा दूँगी, और तुम्हारे दोनों कान सोने से अलंकृत करूँगी।

दर्जी ने कहा—हे बहन, चढ़ने के घोड़ा में आग लगे, और तुम्हारे सुनहले आभूषण पर वज्र गिरे (मैं इन दोनों में से कुछ न लूँगा)।

तब नायिका ने कहा—हे दर्जी, तुम मेरी साड़ी सी दो। जब मैं अपने श्वसुरगृह जाऊँगी, तो साड़ी सीने के पुरस्कार में तुम्हें अपनी सास और ननद दूँगी।

गीतों में सास और ननद बहू की आँखों की किरकिरी होती हैं, ठीक उसी तरह जैसे सास और ननद की आँखों की किरकिरी बहू। इसीलिए इस नायिका ने दर्जी को कपड़े सीने के पुरस्कार में अपनी सास और ननद भेज देने का वचन दिया है। क्या ग़ज़ब की सूझ है! न रहेगा बाँस, न बाजेगी बाँसुरी। घर में न सास और ननद रहेंगी, और न झगड़े होंगे। यदि सास और ननद इस गीत से नसीहत लें, और अपनी बहू के साथ शिष्टता से पेश आयें, तो यह आपस का टंटा-बखेड़ा सदा के लिए मिट जाय।

(८)

हमरो से कोन भइया चतुरि सेयान हे
वमे ले लन कगजा दहिने खतियान हे
अपना लागि लिखिह भइहा अन-धन लछमी हे
हमरा लागि लिखिह भइहा सामा-जोड़ चकेवा हे
हमरो से कोन भइया चतुरि सेयान हे
वमे ले लन कगजा दहिने खतियान हे
अपना लागि लिखिह भइया चढ़ने के घोड़वा हे
हमरा लागि लिखिह भइया हंसा-जोड़ि चकेउआ हे

हमारे अमुक भाई, जो बड़े कुशाग्रबुद्धि और चतुर हैं, बायें हाथ में काग़ज़ और दायें में खतियान (एक तरह की देहाती बही) ले कर बैठे।

हे भाई, आप खतियान में अपने लिए अन्न-धन और लक्ष्मी, तथा मेरे लिए 'श्यामा-चकेवा' लिखें।

हमारे अमुक भाई, जो बड़े कुशाग्रबुद्धि और चतुर हैं, बायें हाथ में क़ाग़ज और दायें में खतियान लेकर बैठे।

हे भाई, आप खतियान में अपने लिए सवारी का घोड़ा लिखें, और मेरे लिए 'श्यामा-चकेवा' की जोड़ी।

यह गीत 'श्यामा-चकेवा' के खेल प्रारम्भ होने के दिन से एक-दो रोज पहले ही गाया जाता है। इसमें बहन ने अपने भाई से 'श्यामा-चकेवा' की जोड़ी खरीद लाने की फरमायश की है। इस गीत को पढ़ने से पता चलता है कि हमारी बहनें 'श्यामा-चकेवा' के खेल खेलने को कितनी उत्सुक होती हैं।

(९)

आगे डिहुली आगे डिहुली सामा जाइछइ ससुरा कुछ
गहना चाहि गे डिहुली धला कोन सोनार के
गढ़वाइए देवउ गे डिहुली आगे डिहुली आ गे डिहुली
सामा जाइछइ ससुरा कुछ पौती चाहि गे डिहुली
धला कओन लोहार के बनवाइए देवउ गे डिहुली

हे सखी, सामा अपने श्वसुरगृह जा रही है, कुछ गहने की जरूरत है। उसकी सखी ने कहा—हे सखी, तुम अमुक सोनार को पकड़ लाओ। मैं उससे सामा के लिए गहने गढ़वा दूँगी।

हे सखी, सामा अपने श्वसुरगृह जा रही है। कुछ पिटारी की जरूरत है। उसकी सखी ने कहा—हे सखी, तुम अमुक लोहार को पकड़ लाओ। मैं उससे सामा के लिए पिटारी बनवा दूँगी।

यह सामा की विदाई का गीत है। कार्त्तिक पूर्णमासी के दिन जब 'श्यामा चकेवा' के खेल खेलनेवाली स्त्रियाँ केले के थम्भ का बेड़ा बना कर नदी-किनारे 'श्यामा-चकेवा' को विदा करने जाती हैं, तो यह गीत गाती हैं।

(१०)

निम्न-लिखित गीत में किसी बहन ने अपने भाई और भाभी की तारीफ के पुल बाँधे हैं, और चुँगला तथा उसकी पत्नी की मखौल उड़ाई है। इनका मखौल उड़ाने का ढंग बड़ा आकर्षक होता है। दस-दस या सोलह-सोलह

युवतियों की टोलियाँ दो गिरोहों में बँट जाती हैं। फिर एक गिरोह की युवतियाँ दूसरे गिरोह की हमजोलियों से व्यंग्यात्मक प्रश्न करती हैं—

हमर भइया कइसे आवे ?

अर्थात्, हमारा भाई किस प्रकार आवे ? दूसरे गिरोह की युवतियाँ उत्तर देंगी—

हाथी पर बइस हँसइत आवे
पान मँ दाँत रंगइत आवे
रूमाल सँ मुंह पोंछइत आवे
कँघी सँ केश झाड़इत आवे

हाथी पर बैठ कर मुसकिराता हुआ आवे। पान से दाँतों को रँगता हुआ आवे। रूमाल से मुँह साफ करता हुआ आवे। और कँघी से बाल सँवारता हुआ आवे।

हमर भऊजी कइसे आवे ?

अर्थात् हमारी भाभी किस प्रकार आवे ?

पालकी में वइस हँसइत आवे
सेनुर सँ माँग भरइत आवे
अयना सँ मुँह देखइत आवे

पालकी में बैठ कर हँसती हुई आवे। सिर में सिन्दूर-बिन्दी लगाती हुई आवे। और दर्पण से चेहरा देखती हुई आवे।

चुंगला भँडुआ कइसे आवे ?

अर्थात् चुंगला भँडुआ किस तरह आवे ?

गदहा पर बइस कनइत आवे
कोइला सँ दाँत रंगइत आवे
कम्वल सँ मुँह पोंछइत आवे
छूरा सँ केश ओंछइत आवे

गधा पर बैठ कर रोता हुआ आवे। कोयला से दाँतों को रँगता हुआ आवे। कम्बल से मुँह पोंछता हुआ आवे। और उस्तरे से केश मुँड़वाता हुआ आवे।

चुंगला बहू कइसे आवे ?

और चुंगला की पत्नी किस तरह आवे ?

खटुली चढ़ल भँड़ुहि कनइत आवे
कोइला सँ माँग भरइत आवे
खपड़ी सँ मुँह फोड़इत आवे

खटोली पर चढ़ कर रोती हुई आवे। कोयला से मुँह काला करती हुई आवे। और खपड़ी (भँड़भूजे का वर्तन) से सिर फोड़ती हुई आवे।

(११)

माइ गंगा रे जमुनवा के चिकनिओ माटी
माइ आनि देहु कओन भइया गंगा पइसि माटी
माइ बनाए देहु कनिया भउजो सामा हे चकेवा
माइ खेले जयता कओन बहिनो चारो पहर राती
कथि केर दियरा कथिए सुत बाती
कथि केर तेलवा जरए सारि राती
माटी केर दियरा पटम्बर सुत बाती
नेहवा के तेलवा जरए सारि राती
खेले लगलन मणि बहिनो चारो पहर राती
जरे लागल दिअरा झमके लागल बाती

गंगा और यमुना की मिट्टी चिकनी होती है। हे अमुक भाई, गंगा में पैठ कर मिट्टी ला दो न ?

और हे नवोढ़ा भाभी, तुम मेरे लिए एक 'श्यामा-चकेवा' की मूर्त्ति बना दो। अमुक बहन आज रात के चारों पहर 'श्यामा-चकेवा' के खेल खेलेंगी।

किस वस्तु का चिराग़ है ? और किस वस्तु की बत्ती ? और उसमें किस वस्तु का तेल सारी रात जलेगा ?

मिट्टी का चिराग़ है, और रेशम की बत्ती। और उसमें प्रेम का तेल सारी रात जलेगा।

इस प्रकार चिराग़ जला कर मणिमेखला बहन रात के चारों पहर 'श्यामा- चकेवा' के खेल खेलने लगी। चिराग़ दुप-दुप कर जल उठा, और रेशम की वर्त्तिका झलमलाने लगी।

यह गीत उस समय गाया जाता है, जब बहन अपने भाई से 'श्यामा-चकेवा' की मूर्त्ति बनाने के लिए चिकनी मिट्टी लाने का अनुरोध करती है।

(१२)

डाला ले बहार भेली बहिनो सुमित्रा बहिनो
शरदेन्दु भइया लेल डाला छीन सुनु राम सजनी
समुआ बइसल अहाँ बाबू बरइता चाचा बरइता
अहँक पुता लेल डाला छीन सुनु राम सजनी
कथिए के तोहर डलबा गे बेटी दउरिआ गे बेटी
कथिए लगाओल चारु कोन सुनु राम सजनी
काँच ही बाँस केर डलवा हो बाबा
चम्पा-चमेली चारो कोन सुनु राम सजनी
दहु हे पुता बहिनिया कँ डलवा
सामा खेले जयति बड़ी दूर सुनु राम सजनी

हे सखी, सुमित्रा बहन सामा खेलने के लिए चँगेरी ले कर बाहर निकली। शरदेन्दु भाई ने उसकी चँगेरी छीन ली।

सुमित्रा बहन ने अपने पिता से जाकर फरियाद की—

हे शामियाने में बैठे हुए मेरे पूज्य पिता और चाचा, आपके बेटे ने मेरी चँगेरी छीन ली है।

पिता ने पूछा—हे बेटी, किस वस्तु की तुम्हारी चँगेरी है। और उसके चारों किनारे किस वस्तु से मढ़े हैं?

बेटी ने कहा—हे पिता, काँच बाँस की मेरी चँगेरी है; और उसके चारों किनारे चम्पा-चमेली से मढ़े हैं।

पिता ने अपने बेटे को बुला कर कहा—हे पुत्र, तुम अपनी बहन की चँगेरी लौटा दो। वह सामा खेलने बहुत दूर जायगी।

कभी-कभी जब बहनें 'श्यामा-चकेवा' के खेल खेलने के लिए वन-बागों में निकलती हैं, तो अपने अल्पवयस्क भाइयों को भी साथ ले लेती हैं। खेल में प्रायः मतभेद हो जाया करते हैं, और भाई-बहन की पटरी नहीं बैठती। ऐसे मौकों पर यदि भाई तगड़ा पड़ा, तो वह अपनी बहन की चँगेरी छीन कर तोड़-फोड़ डालता है। अगर बहन तगड़ी पड़ी, तो वह अपने भाई की खूब मरम्मत करती है। खेद के साथ लिखना पड़ता है कि हमारे इस गीत की बहन कमजोर है। इसीलिए उसने अपने भाई को दंड दिलाने के लिए पिता से फरियाद की है।

(१३)

कओन भइआ के इहो घनि फुलवड़िया हे
कि कओन बहिनि लोढ़त चमेली फूल हे

यह घनी फुलबाड़ी किसकी है और यह कौन बहन चमेली का फूल लोढ़ रही है।

दूसरी बालिका जवाब देती है—

मोहन भइआ के इहो वाड़ी-फुलबाड़ी हे
कि चम्पा बहिनि तोड़त चमेली फूल हे

यह मोहन भाई की फुलबाड़ी है, और यह चम्पा बहन चमेली का फूल लोढ़ रही है।

तीसरी कहती है—

फूलवा लोढ़इत बहिनिआ मोरा घामल हे
कि घामि गेल सिरक सेनुरवा हे
कि घामि गेल नयनक कजरवा हे
छतवा ले ले दउड़ल अबथिन मोहन भइया हे
कि वइसु वहिनि ए हो जुड़ छँहिया हे
कि पनिया ले ले दउड़ल अबथिन कनिया भउजो हे
कि पिउ हे ननद इहो शीतल पनिया हे

कनिया भउजी के केसिया चँवर सन हे
कि ए हि केश गूँथवो चमेली फूल हे

फूल चुनते-चुनते मेरी यह सुकुमार बहन पसीने से तर हो गई है। उसके माथे की सिन्दूर-बिन्दी और आँखों का स्नेहमय काला काजल भी पसीज (पिघल) गया है। और अपनी सुकुमार बहन को धूप से व्याकुल देख कर यह मोहन भाई छाता लेकर दौड़े आ रहे हैं और उसे छाँह में आराम करने को कह रहे हैं। अपनी ननद को पिलाने के लिए यह सुधा-सा शीतल पानी लेकर कनिया भौजी दौड़ी आ रही हैं। उनके श्वेत बाल चँवर के-से हैं। मैं उसमें चमेली का फूल गूँथूँगी।

जट-जटिन

'जट-जटिन' एक ग्रामीण पद्य-बद्ध अभिनय है जिसमें 'जट-जटिन' प्रधान पात्र-पात्रिका हैं। आश्विन और कार्त्तिक के महीने में खिली हुई चाँदनी की रोशनी में मिथिला के अधिकांश गाँवों में यह अभिनय किया जाता है। इसमें केवल लड़कियाँ और युवती स्त्रियाँ भाग लेती हैं। हाँ, पुरुष पात्र 'जट' का अभिनय करने के लिए एक लड़का भी शरीक कर लिया जाता है। लड़के 'जट' का अभिनय करते हैं, और लड़कियाँ 'जटिन' बनती हैं। 'जट' कुमुदिनी के फूल का श्वेत हार और सिर में श्वेत मुकुट पहन कर सुसज्जित होता है। 'जटिन' भी फूल के गहने पहन कर अलंकृत होती है। दोनों पाँच-पाँच या छै-छै हाथ के फासले पर आमने-सामने खड़े होते हैं। उनके अगल-बग़ल (जट-जटिन दोनों पक्ष से) प्राय :एक-एक दर्जन युवतियाँ पंक्ति-बद्ध खड़ी होती हैं, और परस्पर प्रश्नोत्तर के रूप में गीत गाती हुई अभिनय करती हैं।

'जट-जटिन' का प्लाट संक्षिप्त एकांगी नाटक का-सा है। इसमें 'जट-जटिन' के वैवाहिक जीवन की गुत्थियाँ, सुख-दुख की धूप-छाँह, पुरुषों की पाशविक बलात्कारी प्रवृत्ति की बर्बरता, यौवन की विषम समस्याओं की अन्तर्ध्वनि आदि जीवन की अनेक अनुभूतियाँ स्वाभाविक ढंग से चित्रित हुई हैं। 'जट-जटिन' के स्टेज डिरेक्शन्स संक्षिप्त हैं। भाषा चुलबुली और विनोदपूर्ण व्यंग्य लिये है। 'जट' जो खेल का प्रधान पात्र है—बलात्कारी प्राणी है। वह 'जटिन' के साथ प्रणय-सूत्र में बँधने के पूर्व 'जटिन' के स्वाधीन व्यक्तित्व को कुचल देना चाहता है। दोनों में द्वन्द्व उठ खड़ा होता है। अन्त में 'जटिन' 'जट' के हाथ की कठपुतली बन जाती है, और उसके जीवन का स्वतंत्र प्रवाह रुक जाता है।

कुछ उदाहरण देखिये।

(१)

जट और जटिन के विवाह का जिक्र छिड़ा हुआ है। दोनों के हृदय में एक दूसरे के प्रति प्रेम है। दोनों प्रणय-सूत्र में बँधना चाहते हैं; लेकिन जट एक ऐसी प्रेमिका की तलाश में है, जो प्राचीन आर्य-ललनाओं की तरह बुरी और भली सभी बातों में उसका अनुसरण करे। उसे उद्धत तथा अल्हड़ प्रेमिका पसन्द नहीं। अतः वह विवाह की मनचाही शर्तों को भावी प्रेमिका जटिन के सामने पेश करता है—

(१)

नवहि पड़तउ हे जटिन
नवहि पड़तउ हे
जइसँ नवतइ धानक शिशवा
वइसे नवबे हे

नहिए नवबउ रे जटवा
नहिए नवबउ रे
बाबूक दुलारी बेटी
ऐंठिक चलवउ रे

नवहि पड़तउ हे जटिन
नवहि पड़तउ हे
जइसँ नवतइ केरक घौंदवा
वइसे नववय हे

नहिए नवबउ रे जटवा
नहिए नवबउ रे
जइसे चलतइ बाँसक कोंपरा
वइसे चलबउ रे

नवहिं पड़तउ हे जटिन
नवहिं पड़तउ हे
जइसे नवतइ कौनिक शिशवा
वइसे नवबे हे

नहिंए नवबउ रे जटवा
नहिंए नवबउ रे
जइसे रहतइ पोखरक पानो
वइसे रहबउ रे

हे जटिन, विवाह होने पर तुमको झुक जाना पड़ेगा। नम्र बन जाना पड़ेगा। जिस तरह धान की बाल फलने पर झुक जाती है, ठीक उसी तरह तुम्हें भी झुक जाना पड़ेगा।

किन्तु, जटिन को जट की शर्त्त पसन्द नहीं। बचपन से ही पिता के यहाँ स्वतंत्र वायुमंडल में पलने के कारण वह काफ़ी अल्हड़ और गर्बीली हो गई है। अभी उसके बचपन का भोलापन दूर नहीं हुआ। उसके दिमाग़ में अपनी सखी-सहेलियों की अठखेलियाँ और धमाचौकड़ी घर किये हुई हैं। किसीके सामने झुक कर चलने का कभी उसे मौक़ा ही नहीं मिला। वह कह रही है—

'रे जट, मैं अपने पिता की लाड़ली बेटी ऐंठ कर चलूँगी।'

जट कहता है—हे जटिन, तुमको झुकना पड़ेगा। झुकना ही पड़ेगा। जिस तरह केले के घौंद फलने पर झुक जाते हैं, ठीक उसी तरह विवाह के बाद तुम्हें भी झुक जाना पड़ेगा।

जटिन कहती है—हे जट, मैं कभी नहीं झुकूँगी, कभी नहीं झुकूँगी। जिस तरह बाँस की कोंपल सीधी, ऊपर की ओर बढ़ती है, उसी तरह मैं भी सीधी निर्भीक होकर चलूँगी।

जट कहता है—हे जटिन, तुमको झुकना ही पड़ेगा। झुकना ही पड़ेगा। जिस तरह कौनी (एक प्रकार का नाज जो फलने पर झुक जाता है) के शीश झुक जाते हैं, ठीक उसी तरह तुम्हें भी झुक जाना पड़ेगा।

जटिन जवाब देती है—हे जट, मैं कभी नहीं झुकूँगी। जिस तरह पोखरे का पानी गम्भीर और स्थिर रहता है, उसी प्रकार मैं भी दृढ़ और गम्भीर रहूँगी।

यह सार्वभौमिक सत्य है कि मनुष्य परतंत्र रहना पसंद नहीं करता। परतंत्रता एक अभिशाप है जो जीवन में सँड़ाद पैदा करती है। अचेतन पशु-पक्षी भी जो विवेक-बुद्धि से रहित हैं, जंजीर या किले की चहारदीवारी में बन्द रहना पसन्द नहीं करते। इस गीत की नायिका जटिन भी स्वाधीनता और समान अधिकार पाने की इच्छुक है जो स्वाभाविक है। लेकिन जट ने अपनी भावी पत्नी जटिन की बराबरी की शर्त्तों पर विवाह करने के प्रस्ताव का विरोध कर अपनी बलात्कारी प्रवृत्ति का परिचय दिया है। वास्तव में मनुष्य एक बहुपत्नीक बलात्कारी पशु है जो स्त्री से बलवान होने के कारण उस पर आधिपत्य रखता है। इंगलैंड के सुप्रसिद्ध तात्विक जान स्टुअर्ट मिल ने अपनी 'Subjection of women' नामक पुस्तक में लिखा है—

'मेरा विश्वास है कि स्त्रियों को आजाद करने में पुरुषों को इस बात का डर नहीं है कि स्त्रियाँ विवाह न करना चाहेंगी, लेकिन उनको ऐसी दहशत जरूर है कि वे बराबरी की शर्त्तों पर विवाह करने का हठ करेंगी।'

(२)

जट और जटिन दोनों दाम्पत्य-सूत्र में बँध चुके हैं—एक दूसरे से हिलमिल गये हैं। जटिन गहने पहनने को लालायित है। वह अपनी यह माँग जट के सामने पेश करती है—

जटा रे जटिन के मँगवा भेल खाली
मंगटिकवा तुहूँ कब लयबे रे

जटिन हे सोनरा छउ तोहर इआर
मंगटिकवा त पेन्हाय देतउ हे

जटा रे जटिनि क डँड़वा भेल खाली
सड़िअवा तुहूँ कब लयबे रे

जटिन हे बजजा छउ तोहर इआर
सड़िअवा त पेन्हाय देतउ हे

जटा रे जटिनि क हथवा भेल खाली
चुड़िअवा तुहुँ कव लयबे रे

जटिन हे मनिहरवा छउ तोहर इआर
चुड़िअवा त पेन्हाय देत हे

रे जट, तुम्हारी प्रियतमा जटिन का सिर खाली है। तुम माँगटीका कब लाओगे?

जट कहता है—हे जटिन, सोनार तुम्हारा दोस्त है ही। वह माँग-टीका पहना देगा।

जटिन कहती है—हे जट, तुम्हारी प्यारी जटिन की कमर खाली है। चुँदरी कब लाओगे?

जट जवाब देता है—हे जटिन, बजाज तो तुम्हारा यार है ही, वह तुम्हें चुँदरी पहना देगा।

जटिन कहती है—हे जट, तुम्हारी प्रियतमा जटिन के हाथ खाली हैं। चूड़ी कब लाओगे?

जट कहता है—हे जटिन, चुड़िहारा तो तुम्हारा दोस्त है ही, वह तुम्हें चूड़ी पहना देगा।

(३)

जटिन की फिजूलखर्ची के कारण जट दिवालिया हो गया। उसके सिर की टोपी, हाथी के हौदे और हाथ के रूमाल तक बिक गये। जीविका का कोई अन्य उपाय न देख कर जट नौकरी करने के लिए परदेश जाने को अमादा है —

हाथी पर के हौदा बेचवओले हे जटिन
बेचबओलह हे जटिन
अब जटा जाइछइ विदेश

ओहु सँ उत्तम बनवा देवहे जटा
बनवा देव हे जटा
अब जटा नइ जाउ विदेश

हाथ क रूमलवा बेचवओले हे जटिन
बेचवओलह हे जटिन
अब जटा जाइछइ विदेश

ओहु सँ उत्तम हम सी देव हे जटा
हम सी देव हे जटा
अब जटा नइ जाउ विदेश

सिर के पगरिया बेचवओले हे जटिन
बेचवओलह हे जटिन
अब जटा जाइछइ विदेश

ओहु सँ उत्तम खरीद देव हे जटा
खरीद देव हे जटा
अब जटा नइ जाउ विदेश

जट कहता है—हे जटिन तुमने (फिजूलखर्ची के कारण) हाथी की पीठ का हौदा बिकवा दिया। हाथी की पीठ का हौदा बिकवा दिया। अब तुम्हारा प्रियतम जट परदेश जा रहा है।

जटिन जिसकी यदि कोई कामना है तो प्रेम की और जो अपने प्रियतम का वियोग सहन करने में असमर्थ है, जवाब देती है—हे प्रियतम, मैं उससे भी उम्दा हौदा बनवा दूँगी। उससे भी उम्दा बनवा दूँगी। तुम मत जाओ।

जट कहता है—हे लाड़ली जटिन, तुमने मेरे हाथ का रूमाल बिकवा दिया। हाथ का रूमाल भी बिकवा दिया। अब तुम्हारा प्राण परदेश जा रहा है।

जटिन जवाब देती है—प्रियतम, मैं उससे भी उम्दा रूमाल सी दूँगी। उससे भी उम्दा सी दूँगी। तुम परदेश मत जाओ।

जट कहता है—हे जटिन, तुमने मेरे सिर की पगड़ी बिकवा दी। तुमने मेरे सिर की पगड़ी बिकवा दी। तुम्हारा प्रियतम जट परदेश जा रहा है।

जटिन जवाब देती है—हे जट, मैं उससे भी उत्तम पगड़ी खरीद दूँगी। उससे भी उत्तम खरीद दूँगी। तुम परदेश मत जाओ।

(४)

तों कहाँ-कहाँ जाइछे बिरवा बाँधऽक
हम मोरंग जाइछी बिरवा बाँधऽक
तू किय-किय लयवे विरवा बाधऽक
हम टिकवा लायव विरवा बाँधऽक
केकरा पेन्हयवे बिरवा बाँधऽक
हम जटिन के पेन्हायव विरवा बाँधऽक
हम तोड़क नेरायव विरवा बाँधऽक
हम फेर क गढ़ायव विरवा बाँधऽक

जटिन—हे जट, तुम बिस्तर बाँध कर कहाँ जा रहे हो?
जट—हे जटिन, मैं मोरंग देश जा रहा हूँ।
जटिन—हे जट, तुम मेरे लिए उपहार में कौन-सी वस्तु लाओगे?
जट—हे जटिन, मैं तुम्हारे लिए माँगटीका उपहार में लाऊँगा।
जटिन—हे जट, तुम माँगटीका किसे पहनाओगे?
जट—हे जटिन, मैं तुम्हें ही माँगटीका पहनाऊँगा।
जटिन—हे जट, मैं माँगटीका पहन कर तोड़ दूँगी।
जट—हे जटिन, मैं फिर माँगटीका गढ़ा दूँगा।

जट-जटिन का दाम्पत्य-जीवन प्रथम दर्शन-जनित अनुराग से रँगा हुआ है। स्त्रियाँ गहने पहनने की कितनी इच्छुक होती हैं, यह गीत इस बात का प्रमाण है। जटिन माँगटीका पहन कर तोड़ देने के मिस जट के प्रेम की परीक्षा लेना चाहती है। जट प्रेम की शिला पर आरूढ़ है। जट-जटिन का दाम्पत्य प्रेम गुण-श्रवण-जनित रागांकुरित अवस्था से विकसित हुआ है। वह फिर माँगटीका गढ़ा देने का वचन देकर अपनी व्यवहार-शील-सम्पन्नता

का परिचय देता है। जटिन की हठवादिता और निर्भीकता को देख कर हमारी सहानुभूति की मन्दाकिनी जटिन के प्रति उतनी नहीं उमड़ती, जितनी जट की सहनशीलता से उद्वेलित भावसंकुलता की ओर।

(५)

जाय देहि हे जटिन देश रे विदेश
तोरा लागि लयवौं जटिन हँसुलि सनेश
हँसुलि तऽरे जटा तरबऽक धूर
ठाढ़ि रहि रे कुलबोरना नयनक हुजूर
जाय देहि हे जटिन देश रे विदेश
तोरा लागि लयवौं जटिन
सिकरी सनेश
सिकरी त रे जटा तरबक धूर
ठाढ़ि रहि रे कुलबोरना नयन क हुजूर
जाय देहि हे जटिन देश रे विदेश
तोरा लागि लयवौं जटिन सड़िया सनेश
सड़िया त रे जटा तरबऽक धूर
ठाढ़ि रहि रे कुलबोरना नयनऽक हुजूर

जट—हे जटिन, तुम मुझे परदेश जाने दो। मैं तुम्हारे लिए हँसली उपहार में लाऊँगा।

जटिन—कुल को पतन की खन्दक में गिरानेवाले रे जट, हँसली तो मेरे तलवे की धूल है। तुम मेरे हुक्म की ताबेदारी में खड़े रहो।

जट—हे जटिन, तुम मुझे परदेश जाने की इजाजत दो। मैं तुम्हारे लिए सिकड़ी उपहार में लाऊँगा।

जटिन—रे कुल को पतन की खन्दक में गिरानेवाले जट, सिकड़ी तो मेरे तलवे की धूल है। तुम मेरे हुक्म की ताबेदारी में खड़े रहो।

जट—हे जटिन, तुम मुझे परदेश जाने की इजाजत दो। मैं तुम्हारे लिए चुँदरी उपहार में लाऊँगा।

जटिन—रे कुल-कलंक जट, चुँदरी तो मेरे तलवे की धूल है। तुम मेरे हुक्म की ताबेदारी में सदा खड़े रहो।

(६)

दूर - दूर रे जटा
दूर रहि हे रे जटा
सड़ल चाउर रे जटा
राख - छाउर रे जटा
बइगन भाँटी रे जटा
जुलुफ सँवारइत चल अइहे रे जटा
दूर - दूर हे जटिन
दूर रहिहे हे जटिन
सड़ल भात हे जटिन
सड़ल तीमन हे जटिन
सड़ल भाँटी हे जटिन
केशवा गुहइत चल अइह हे जटिन
दूर - दूर रे जटा
दूर रहिहे रे जटा
सड़ल चाउर रे जटा
राख - छाउर रे जटा
बइगन भाँटी रे जटा
धोतिया पेन्हइत जल अइहे रे जटा
दूर - दूर हे जटिन
दूर रहिहे हे जटिन
सड़ल भात हे जटिन
सड़ल तीमन हे जटिन
सड़ल भाँटी हे जटिन
टीकवा पेन्हइत चल अइह हे जटिन

जटिन—रे जट, तुम दूर हो जाओ। तुम मुझसे दूर ही रहो।

रे जट, तुम सड़ा हुआ चावल हो। बदबूदार बैंगन हो, और भस्म हुआ क्षार हो।

रे जट, तुम जुल्फ़ सँवारते हुए परदेश से लौटना।

जट—हे जटिन, तुम दूर हो जाओ। मुझसे दूर ही रहो।

हे जटिन, तुम सड़ा हुआ भात हो। सड़ी तरकारी, और सड़ा बैंगन हो। तुम वेणी सँवारते हुए मेरे पास आना।

जटिन—रे जट, तुम दूर हो जाओ। मुझसे दूर रहो।

रे जट, तुम सड़ा हुआ चावल हो। बदबूदार बैंगन हो, और भस्म हुआ क्षार हो।

यही अर्थ तीसरे और चौथे पदों का भी है। अंतर इतना ही है कि उनमें जुल्फ़ और केश के स्थान पर धोती और माँगटीका के नाम जोड़ दिये गये हैं।

(७)

वाँकीपुर के टिकवा रे जटा
केऊ-केऊ निरेखे रे जटा
केऊ-केऊ परेखे रे जटा
वाँकीपुर के टिकवा हे जटिन
हमहिं निरेखव हे जटिन
हमहिं पहिनायव हे जटिन
कटक क उ जे कंकन रे जटा
केऊ-केऊ निरेखे रे जटा
केऊ-केऊ परेखे रे जटा
कटक क उ जे कंकन हे जटिन
हमहिं निरेखव हे जटिन
हमहिं पहिनायव हे जटिन
सूरत क उ जे मोती रे जटा

केऊ-केऊ निरेखे रे जटा
केऊ-केऊ परेखे रे जटा
सूरत क उ जे मोती हे जटिन
हमहिं निरेखव हे जटिन
हमहिं पहिनाएव हे जटिन

जटिन—रे जट, बाँकीपुर का माँगटीका कोई बड़भागी ही देख पाता है। कोई पारखी ही उसकी परख करता है।

जट—हे जटिन, बाँकीपुर का माँगटीका मैं ही देखूँगा, और मैं ही तुम्हें पहनाऊँगा।

जटिन—रे जट, कटक का कंकण कोई बड़भागी ही दख पाता है, और कोई पारखी ही उसकी परख करता है।

जट—हे जटिन, कटक का कंकण मैं ही देखूँगा, और मैं ही तुझे पहनाऊँगा।

जटिन—रे जट, सूरत का मोती कोई बड़भागी ही देख पाता है; और कोई पारखी ही उसकी परख करता है।

जट—हे जटिन, सूरत का मोती मैं ही देखूँगा, और मैं ही तुझे पहनाऊँगा।

(८)

अते त कमएले जटा की भेलउ न
सुनु मोरा जटा
जटिनि के मँगवा उदास लागय न
अते त कमइलि जटिन अहाँ लागि न
सुनु मोर जटिन
टिकवा गढाक सन्दुक में धएलि न
अते त कमएले जटा की भेलउ न
सुनु मोरा जटा

जटिनि के कनमा उदास लागय न
अते त कमइलि जटिन अहाँ लागि न
सुन मोर जटिन
तरकि गढ़ा क सन्दुक में धइलि न

अर्थ स्पष्ट है। इस गीत में जटिन ने गहने नहीं लाने के कारण जट को उलाहना दिया है।

(६)

चल-चल रे जटा यमुने के किनार
पान खइह रे जटा पिक नेरइहे रे जटा
चल-चल हे जटिन यमुने के किनार
टिकवा विकाइछइ लहरदार हे जटिन
त पेन्हे के पड़ी
टिकवा के नगवा भेल भारी रे जटा
त फेरे के पड़ी
चल-चल रे जटा यमुने के किनार
पान खइअहे रे जटा पिक नेरइहे रे जटा
चल-चल हे जटिन यमुने के किनार
कंठा बिकाइछइ लहरदार हे जटिन
त पेन्हे के पड़ी
कंठा के घुन्डी बड़ भारी रे जटा
त फेरे के पड़ी

जटिन—रे जट, यमुना के तट पर चलो। वहाँ पान खाना, और पीक फेंक देना।

जट—हे जटिन, यमुना के तट पर चलो। वहाँ बहुत कीमती माँग-टीका बिकता है। तुम्हें पहनना होगा।

जटिन—रे जट, माँगटीका में जड़ा हुआ नग भद्दा लगता है। उसे बदलना होगा।

जटिन—रे जट, यमुना के तट पर चलो। वहाँ पान खाना, और पीक फेंक देना।

जट—हे जटिन, यमुना के तट पर चलो। वहाँ बहुत सुन्दर कंठा बिकता है। तुम्हें पहनना होगा।

जटिन—रे जट, कंठा की गूँज भद्दी लगती है। वह बदलनी पड़ेगी।

इसी प्रकार किस्म-किस्म के गहने के नाम जोड़ कर अगले पद गाये जाते हैं।

(१०)

निम्नलिखित गीत उस समय गाया जाता है जब जटिन जट से रूठ कर अपने नैहर जाती है, और रास्ते में नदी पार करने के लिए केवट से अनुरोध करती है—

भइया मलहवा रे नइया लगा दे झिनमापुर के घाट
बहिनि बटोहिनि गे खोज ले ग दोसर घटवार
हम देवउ अनि-दुअन्नि हम देवउ इनाम
भइया मलहवा रे नइया लगा दे झिनमापुर के घाट
नइ हम लेवइ अनि-दुअन्नी नइ हम लेवइ इनाम
बहिनि बटोहिनि हे खोज लेहि दोसर घटवार
हम देवउ चानी-सोना हम देवउ इनाम
भइया मलहवा रे नइया लगा दे झिनमापुर के घाट
नइ हम लेवइ चानी-सोना नइ हम लेवइ इनाम
बहिनि बटोहिनि गे खोज ले ग दोसर घटवार

जटिन—रे मल्लाह, नाव झिनमापुर के घाट पार लगा दो।

मल्लाह—हे बहन बटोहिन, दूसरा घटवार ढूँढ लो। मैं नहीं पार लगाऊँगा।

मल्लाह—हे बहन बटोहिन, न मैं दुअन्नी लूँगा, और न किसी प्रकार का कोई पुरस्कार। तुम दूसरा घटवार ढूँढ लो।

जटिन—रे मल्लाह भाई, मैं तुम्हें चाँदी-सोना और अन्य विविध प्रकार के पुरस्कार दूँगी। तुम झिनमापुर के घाट नाव पार लगा दो।

मल्लाह—मैं चाँदी-सोना नहीं लूँगा, और न किसी तरह का कोई अन्य पुरस्कार। हे बहन बटोहिन, तुम दूसरा घटवार ढूँढ लो।

(११)

सेंदुरा त मंगली जटा
से हो नहिं लयले रे।
माँगक शोभितवा जटा
से हो नहिं जुरलउ रे।
सेंदुरा त लयली जटिन
पेन्हहु न जनले गे;
कोठी कंधा रखले जटिन
चोरवा चोरलकउ गे।
माय तोहर फूहर जटिन
धरहु न जानल गे।
टिकवा त मंगली जटा
से हो नहिं लयले रे।
सिरक शोभितवा जटा
से हो नहिं जुरलउ रे।
टिकवा त लयली जटिन
पेन्हहु न जनले गे;
कोठी कन्हा रखले जटिन
चोरवा चोरलकउ गे॥
माय तोहर फूहर जटिन
धरहु न जानल गे॥

कानफूल मंगलौं जटा
से हो नहिं लयले गे;
कानक शोभितवा जटा
से हो नहिं जुरलउ गे।
कानफूल लयलौं जटिन
पेन्हहु न जनले गे;
कोठी कन्हा रखले जटिन
चोरवा चोरलकउ गे।
माय तोहर फूहर जटिन
धरहु न जानल गे।

जटिन—रे जट, सिन्दूर तो मैंने माँगा, लेकिन मेरी माँग का मांगलिक शोभन सिन्दूर भी तुझे नसीब नहीं हुआ।

जट—री जटिन, सिन्दूर तो मैं लाया, किंतु तूने उसकी कद्र नहीं जानी। तू ने उसे कोठी कंधे पर रख दिया। उसे चोर चुरा ले गया। तेरी माँ फूहड़ है। उसने भी उसे रखना नहीं जाना।

जटिन—रे जट, माँगटीका तो मैंने माँगा, किंतु मेरी माँग का मांगलिक माँगटीका भी तुझे नसीब नहीं हुआ।

जट—री जटिन, मांगटीका तो मैं लाया, किंतु तूने उसे पहनना नहीं जाना। तू ने उसे कोठी कंधे पर रख दिया। उसे चोर चुरा ले गया। तेरी मा फूहड़ है। उसने भी उसकी कद्र नहीं जानी।

जटिन—रे जट, कर्णफूल तो मैंने माँगा, किंतु वह भी तुझे नसीब नहीं हुआ।

जट—री जटिन, कर्णफूल तो मैं लाया, किंतु तूने उसे पहनना नहीं जाना। तूने उसे कोठी-कंधे पर रख दिया। उसे चोर चुरा ले गया। तेरी माँ फूहड़ है। उसने भी उसकी कद्र नहीं जानी।

जट-जटिन के एक दूसरे नृत्य-गीत में जटिन की मांग की टिकली अपने वशीमोहन रंग से जट को गुलाम बना कर रखने का गुमान कर रही है। उधर

जट के कानों के कुंडल अपनी सुनहली दमक के आकर्षण से जटिन को लौंडी बना कर रखने की उमंग में डोल रहे हैं। यह एक दूसरे को गुलाम बना कर रखने की दुर्दम्य मनोवृत्ति—यद्यपि गीत के सम्यक् दृष्टिकोण में महज मनोरंजन की ही इंगित-भंगी लक्षित होती है—लोक-मानस को जाने कितने काल से अज्ञान की जंजीरों में जकड़ती चली आ रही है। दूसरी ओर जटिन का अटा पर चढ़ कर स्वच्छन्दतापूर्वक बैठना और सड़क पर हवाखोरी के लिए निकलना मैथिली लोक-साहित्य की एक ऐसी रंगीन उक्ति है, जिस पर आधुनिकता के रूप का छाया हुआ जादू बोल रहा है।

(१२)

हमरा जटिन के माँग शोभे टिकुला
अरक चढ़ि बइसे
सरक चढ़ि बइसे
आज गुलामं जटा बस करथिन्हि
हमरा जटिन सँ मत बोलु जी।
हमरा जटा के कान शोभे कुंडल
घोड़ा चढ़ि बइसे
गाड़ी चढ़ि बइसे
आज गुलाम जटिन बस करताह
हमरा जटा स मत बोलु जी।
हमरा जटिन के कान शोभे तरकी
अरक चढ़ि बइसे
सरक चढ़ि बइसे
आज गुलाम जटा बस करथिन्हि
हमरा जटिन सँ मत बोलु जी।
हमरा जटा के हाथ शोभे घड़ी
घोड़ा चढ़ि बइसे
गाड़ी चढ़ि बइसे

आज गुलाम जटिन वस करताह
हमरा जटा स मत बोलु जी!

जटिन-पक्ष—हमारी जटिन की माँग में टिकली शोभा देती है, वह अटा पर बैठती है। सड़क पर हवा खाती है। आज वह जट को गुलाम बना कर रहेगी। हमारी जटिन से कोई मत बोले।

जट-पक्ष—हमारे जट के कान में कुंडल शोभा देता है। वह घोड़े पर चढ़ कर निकलता है। बैलगाड़ी पर हवा खाता है। आज वह जटिन को लौंडी बना कर रहेगा। हमारे जट से कोई मत बोले।

जटिन-पक्ष—हमारी जटिन के कानों में तरकी चमक रही है। वह अटा पर चहलकदमी करती है। सड़क पर हवा खाती है। आज वह जट को गुलाम बना लेगी। हमारी जटिन से कोई मत बोले।

जट-पक्ष—हमारे जट की कलाई में घड़ी सुशोभित है। वह घोड़े पर चढ़ कर निकलता है। बैलगाड़ी पर हवा खोरी करता है। आज वह जटिन को दासी बनाकर रहेगा। हमारे जट से कोई मत बोले।

इसी लड़ी के एक और गीत में जटिन अपनी भद्दी सूरत के कारण जट के हृदय में स्थान नहीं पाने की आशंकाओं से उदास, चिंतित हो रही है। जट के साथ उसके प्रथम मिलन की आकुल उत्कंठा घोर निराशा में परिणत हो गई है—

(१३)

नथिया गढ़यली अनमोल
नाक मोरा नीके न।
कोना जयवइ जटा क पलंग पर
सूरत मोरा नीके न!
तरकी गढ़यली अनमोल
कान मोरा नीके न!
कोना जयवइ जटा के पलंग पर
सूरत मोरा नीके न!

फुववा गढ़वचली अनमोल
माँग मोरा नीके न!
कोना जयबइ जटा के पलंग पर
सूरत मोरा नीके न!

नथ तो मैंने अनोखी गढ़वायी, मगर मेरी नाक तो मोटी है। मैं जट के पलंग पर कैसे जाऊँ? सूरत तो मेरी भद्दी है।

तरकी तो मैंने अनोखी गढ़वायी, मगर कान तो मेरे टेढ़े हैं। मैं जट के पलंग पर कैसे जाऊँ? सूरत तो मेरी भद्दी है।

शीशफूल तो मैंने अनमोल गढ़वाये, मगर मेरा सिर तो चिपटा है। मैं जट के पलंग पर कैसे जाऊँ? सूरत तो मेरी भद्दी है।

बारहमासा

पावस ऋतु में जो आनन्दोन्मत्त संगीत गाये जाते हैं वे 'बारहमासा', 'छौमासा' और 'चौमासा' के नाम से प्रसिद्ध हैं। 'बारहमासा' में वर्ष-भर का, 'छौमासा' में छै महीने का प्राकृतिक सौन्दर्य-वर्णन और 'चौमासा' में आषाढ़, सावन, भादों और आश्विन महीने का प्रकृति-चित्रण होता है। सावन और भादों महीने में जब आसमान धुएँ के बादलों से आच्छन्न हो जाता है, पेड़ों के झुरमुट में कोयल कूकने लगती है, मेढक ठुमकियाँ भरता हैं, और रास्ता कीचड़ से लथ-पथ होकर मुलायम ग़लीचा बन जाता है तब खेतों में धान रोपते हुए मजदूर और घर में हिंडोला डाले हुई ग्रामीण देवियाँ अपनी रसीली तानों से सुधा टपका देती हैं।

'बारहमासा' मैथिली लोक-साहित्य की अनुभूत्यात्मक अभिव्यंजना है। इसके नैसर्गिक सौन्दर्य के सामने कीट्स की हल्के पैर, गहरे नीलरंग की बनफशा-सी आँखें, काढ़े हुए बाल, मुलायम पतले हाथ, श्वेत कंठ और मलाईदार वक्षप्रदेशवाली नायिका भी फीकी पड़ जाती है। 'बारहमासा' की भाव-धारा पुरानी शराब-सी चोखी, और चित्र देवदारु-सा स्वच्छ है। पद में शृंगार की रोचक सरसता है। जिस तरह ग्रामीण वधू की लज्जाभ आँखों में काले रंग का काजल उसके लावण्य में निखार ला देता है, उसी तरह बसन्त की पुष्प-श्री-सी रँगीन ग्रामीण कलाकारों की सूक्ष्म वृत्तियों ने 'बारह-मासा' के मुख-मरकत पर पन्ने का पानी चढ़ा दिया है। अथवा कहिये कि जैसे नीलम पर धूप पड़ने से उसकी लावण्य-मुद्रा खिल जाती है, वैसे ही ग्रामीण कवियों की पारदर्शी आँखों का बिम्ब पड़ने से 'बारहमासा' के अवगुंठनमय सौन्दर्य में कला की कमनीयता आ गई है।

उदाहरणस्वरूप इस शैली के कुछ नमूने देखिए—

(१)

चैत हे सखि चरन चंचल
चित्त नहि थिर चयन रे
मधुप गुंजय वरिस मधु चुवि
रस-भरित दुहुँ नयन रे

वइशाख जँ नवरंग शोभा
आम दरशन देल रे
कुसुम सह-सह महक मह मह
श्याम कत चल गेल रे

जेठ वारिद नवल नवि-नवि
मदन रस बरसाय रे
रइनि वरि अन्हिआरि हे सखि
प्रान तनहिं सुखाय रे

अषाढ़ घेरल पुहुमि भरि सखि
ताप तपल बुझाय रे
लता तरु सँ देखु लपटलि
पिउ कतए विरमाय रे

सावन अहिनिशि बरिस बादरि
सून पहुँ बिनु खाट रे
कत दिना गत भेल हे सखि
सून पहुँ कर खाट रे

भादव गत सन भेल हे सखि
केहनि चमकत राति रे
वितल चारिहुँ मास वरसा
देल पिउ जिव साति रे

आसिन घर-घर बाज मंगल
सकल ललना गाय रे
पुरल सबके आस कहु किय
करम हमर लिखाय रे

कातिक सखि सब मुदित खेलय
श्याम चकवा खेल रे
हम कतय बसि सेज पर सखि
नयन नीरस भेल रे

मास अगहन सबहिं ललना
फलित देखल भाग रे
ललित खेल पसार पहुँ सँग
विरह मन मोर जाग रे

पूस लघु दिन राति बड़ि थिक
केहन सुन्दर जोग रे
सुतलि रहितहुँ कंत संग सखि
करम नहिं मोर भोग रे

माघ लहु-लहु शीत लागय
कुसुम फूटल झारि रे
हमर कंत विदेश बस सखि
गेल से परतारि रे

मास फागुन 'कुमर' भन पिउ
कतए करतो हे बास रे
केहन बासल रंग राखल
व्यर्थ बारह मास रे

हे सखी, चैत का महीना आ गया। मेरे चरण चंचल हो उठे, और मन व्याकुल हो गया। भौंरे गुन्जार करने लगे। मधु चू-चू कर बरसने लगा और मेरी दोनों आंखें आनन्द से नाच उठी।

वैशाख में नारंगी की शोभा में निखार आ गया, और आम में बौर लग गये। फूलों की सुगंध से दिशा-विदिशायें गमक उठीं। हाय! इस शुभ अवसर पर मेरे श्याम कहां हैं?

जेठ में बादल उमड़-घुमड़ कर काम-रस की वर्षा करने लगे। हे सखी, आज की रात्रि बड़ी ही भयावनी लगती है। मेरे प्राण सूख रहे हैं।

हे सखी, आषाढ़ में जल से जमीन का चप्पा-चप्पा भींग गया, और तपी हुई पृथिवी की ज्वाला शान्त हो गई। देखो, लता वृक्षों से लिपट कर उनका आलिंगन कर रही है। हाय! इस समय मेरे प्रियतम कहाँ रम रहे हैं?

सावन में वर्षा की झड़ी लग गई। मेरी सेज प्रियतम के बिना सूनी है। हे सखी, प्रियतम के बिना सेज सूनी हुए जाने कितने दिन बीत गये।

हे सखी, भादों दबे पाँव खिसक चला। भादों की चाँदनी रात कितनी सुहावनी लगती है। धीरे-धीरे वर्षा के चारों महीने बीत गये, और मेरे निर्मोही प्रियतम ने मुझे गैरहाजिरी की सख़्त सजा दे दी।

आश्विन में घर-घर मंगलमय बाजे बजने लगे। सखियाँ मंगल गान गाने लगीं। लोगों की आशा पूरी हुई। लेकिन हे सखी, विधाता ने मेरा भाग्य कैसा खोटा बनाया?

कार्तिक में सखियाँ प्रसन्न होकर 'श्यामा-चकेवा' के खेल खेल रही हैं। हे सखी, हम इस सूनी सेज का अब किस प्रकार उपभोग करें। हाय! मेरी आँखें प्रियतम की इन्तजारी में दुख रही हैं।

अगहन में सखियों ने भाग्य का सौफल्य प्राप्त किया। वे अपने-अपने प्रियतम के साथ अनेक प्रकार के मनोरंजन करती हैं जिससे मेरे मन में विरह की आग प्रज्वलित हो उठती है।

पूस में रात बड़ी और दिन छोटे हो गये हैं। अहा! यह कैसा सुन्दर

अवसर है। हे सखी, यदि मैं इस समय प्रियतम के साथ सेज पर विहार करती तो क्या ही अच्छा होता, लेकिन मेरे भाग्य में भोग नहीं लिखा है।

माघ में शीत की भयंकरता कुछ कम हुई, और वन-उपवनों में फूल चिटख गये। हे सखी, मेरे प्रियतम प्रवासी हैं। हाय! मुझे चकमा देकर वह स्वयं दूर जा विराजे हैं।

कवि 'कुँवर' कहते हैं—हे प्रियतम, इस फागुन महीने में तुम कहाँ रम रहे हो? क्रीड़ा के लिये मैंने सुगंधित रंग रख छोड़ा है। लेकिन तुम्हारी ग़ैरहाज़िरी में ये बारह महीने व्यर्थ ही साबित हुए।

(२)

प्रथम मास अषाढ़ हे सखि
साजि चलल जल-धार हे
एहि प्रीति कारन सेत बाँधल
सिया उदेश श्रीराम हे

सावन हे सखि शब्द सुहावन
रिमझिम बरसत बूंद हे
सभक बलमुआ रामा घर-घर आयल
हमरो बलमु परदेश हे

भादों हे सखि रइनि भयावन
दूजे अँधेरी रात हे
ठनका जँ ठनके रामा
बिजुली जँ चमके
से देखि जिय डराय हे

आसिन हे सखि आस लगाओल
आसो न पुरल हमार हे
आसो जे पुर रामा कुबरी सउतिनिया
जिन कंत राखल लोभाय हे

कातिक हे सखि पुण्य महीना
सखि कर गंगा स्नान हे
सब कोई पहिने पाट पटम्बर
हम धनि गुदरी पुरान हे

अगहन हे सखि हरित सुहावन
चारु दिशि उपजल धान हे
चकवा चकेइया रामा केलि करइअ
सेइ देखि जिया हुलसाय हे

पूस हे सखि ओस पड़ि गेल
भींजि गेल लामि लामि केश हे
जाड़ा छेदे तन सुइ सन छन छन
थर थर काँपए करेज हे

माघ हे सखि ऋतु बसन्त आयल
गेलो जाड़ा के दिन हे
पिया जँ रहितथि कोरवा लगइतथि
(तव) कटइत जाड़ा हमार हे

फागुन हे सखि सब रंग बनायल
खेलत पिय के संग हे
ताहि देखि मोरा जियरा जँ तरसय
काहि पर डारु हम रंग हे

चैत हे सखि सभ बन फूले
फुलवा जँ फुलए गुलाब हे
सखि सभ फूले रामा पियाक संग में
हमरो फूल मलीन हे

वइसाख हे सखि पिया नहिं आयल
विरह कुहकत गात हे
दिन जँ कटए रामा रोवत-रोवत
कुहुकत वितए सारि रात हे

जेठ हे सखि आय बलमुआ
पूरल मन केर आश हे
सारि दिना सखि मंगल गावति
रएन गँवाय पिया साथ हे

हे सखी, आषाढ़ का प्रथम महीना है। जल-धारायें सज-धज कर फूट बही हैं। राम ने सीता की इसी अटूट प्रीति के कारण समुद्र में पुल बाँधा था।

हे सखी, सुहावना सावन आ गया। रिमझिम बूंदें बरस रही हैं। सब के प्रियतम अपने घर लौट आए, लेकिन मेरे प्रियतम अभी प्रवास में ही हैं।

हे सखी, भादों की भयावनी काली रात आ गई। आकाश में बादल कड़क रहे हैं, और रह-रह कर बिजली चमक उठती है, जिसे देख-देख कर मेरा हृदय दहल रहा है।

हे सखी, आश्विन आया। लेकिन मेरी आशा पूरी नहीं हुई। आशा तो मेरी सौतिन कुबड़ी की पूरी हुई जिसने मेरे प्राणनाथ को भुला रक्खा है।

हे सखी, कार्तिक का शुभ महीना है। चलें हम गंगा-स्नान करें। लोगों ने नये-नये रेशमी परिधान पहने हैं। लेकिन मैं पुरानी—फटी गुदड़ी पहन कर ही दिन काटती हूँ।

हे सखी, अगहन की सुहावनी हरियाली निखर पड़ी। खेतों में चारों ओर हरे-हरे धान लहरा रहे हैं। चकवी-चकवा प्रेम-विभोर हो कर लालसा के मद में मत्त हो रहे हैं, जिसे देख-देख कर मेरा हृदय बाँसों उछल रहा है।

हे सखी, पूस आ गया। ओस की नन्हीं-नन्हीं बूँदें टपक रही हैं। मेरे

लम्बे-लम्बे केश भींग गये हैं। जाड़ा सुई की तरह प्रतिक्षण मेरा शरीर छेद रहा है, और मेरा कलेजा थर-थर काँपता है।

हे सखी, माघ आया। बसन्त ऋतु भी आई। जाड़ा दबे पाँव धीरे-धीरे खिसक चला। यदि आज मेरे प्रियतम होते तो मुझको अपने कलेजे से लगा लेते, और यह जाड़ा आसानी से कट जाता।

हे सखी, फागुन में हमारी हमजोलियाँ रंग घोल कर अपने-अपने प्रियतम के साथ रंगरेलियाँ करती हैं, जिसे देख-देख कर मेरा मन तरस रहा है। बताओ, मैं किससे रंग खेलूँ?

हे सखी, चैत में वन-उपवन खिल उठे। नसों में बिजली-सी दौड़ गई। देखो, गुलाब के फूल भी चिटख रहे हैं। हमारी हमजोली सखियाँ भी अपने-अपने प्रियतम के साथ प्रसन्न हो रही हैं। लेकिन मेरा फूल—शरीर ग़मगीन है।

और बैशाख भी आ गया। लेकिन मेरे निर्मोही प्रियतम नहीं आये। विरह की आग से मेरा शरीर भस्मीभूत हो रहा है। हे सखी, दिन तो रोते-रोते कटते हैं, और रात सिसकते-सिसकते बीतती है।

हे सखी, जेठ आया। मेरे प्रियतम भी आये, और मेरी आशा भी पूरी हुई। हमारी हमजोली सखियाँ दिन-भर मंगल गाती हैं। और, मैंने भी आज रात अपने प्रियतम के साथ बिताई है।

(३)

आली रे घनश्याम बिना व्याकुल राधा
जेठ मास नहिं भावए चीर
मंजु मनोहर यमुना तीर
ओढ़ै मृगछाला योगिनि वेष
पुष्प हार छवि अति मुख देत
व्याकुल राधा

अषाढ़ मास घन गरजत घोर
रटत पपिहरा नाचत मोर

आयल हे सखि मास अषाढ़
हरि बिनु मोहि चन्द्रिका भार
हार मोतियन के

रतन सिंहासन रेशम क डोर
मोतियन झालर लगए चहुँ ओर
गरत हिंडोरा

सावन मास गहि-गहि धरय
सखियन के बाँह
माँझ बइसावे

भादव सेजिया भयावन रात
बिजली घटा देखि काँपत गात
भरि-भरि नदिया अगम बह नीर
विकल विरह जियरा नहिं धीर
धरु हम कइसे

आसिन शरद जनावत जोर
उगए चाँदनी दुख बरजोर
बोलल हे सखी कीर चकोर
कहवाँ गेल मोरा नन्दकिशोर
आली रे घनश्याम बिना

कातिक कामिनि करत सिंगार
नव सुत गजमुक्ता के हार
माधव न आय पठवै सन्देश
छत्र मुकुट छवि अति सुख देत
आली रे घनश्याम बिना

अगहन अग्र सोहावन लाग
श्रीकृष्ण बिना राधाजी बेहाल
अब के मुरली बजयता रंग
ता संग रन-वन घूमव संग
आली रे घनश्याम बिना

पूस ऊधो जी आए पास
पत्रिका दिन्ह गोपि राधिका हाथ
बाँचत पाँती झहरत नीर
खाय हलाहल तेजब शरीर
जिअब हम कइसे

माघ ऊधव नहिं आए कंत
केहि संग खेलव रीत बसंत
अब वनि बइसव साधु गंभीर
योग लिखि पठवै
आली रे घनश्याम बिना

फागुन सखि सब घोरत रंग
चोआ चन्दन चढ़ाएव अंग
हम अबला सोचत व्रजनारी
कुबरी सउतिनिया संग खेलत मुरारी
त्यागि मोहि कइसे

चैत ऊधव वन फुलय गुलाब
चुन-चुन फूल गुथाएब माल
जाय मधयपुर छोड़व लाज
सोच सुदिन दिन मंगल आज
आली रे घनश्याम बिना

अगहन का महीना सुहावना लगता है। राधा श्रीकृष्ण के बिना विरहाकुल है। इस बार उनकी मुरली रंग लायेगी, और मैं उनके साथ अरण्य और वन-उपवन की सैर करूँगी।

पूस में ऊधो आये। उन्होंने गोपांगना राधा को श्रीकृष्ण का पत्र दिया। राधिका श्रीकृष्ण का पत्र बाँचती है, और उसकी आँखों से झर-झर अश्रुपात हो रहे हैं। राधिका कहती है—हाय ! मैं श्रीकृष्ण के बिना कैसे जिऊँगी ? गरल-पान कर शरीर त्याग दूँगी।

हे ऊधो, माघ आया। लेकिन मेरे प्रियतम नहीं आये। हाय ! मैं किसके साथ बसन्त की बहार लूटूँ ? अब मैं योगिनी बन कर अलख जगाऊँगी और श्रीकृष्ण को योग का सन्देश लिख भेजूँगी।

फागुन में हमारी सखियाँ रंग-क्रीड़ा में रत हो गईं। हे सखी, मैं भी अपने अंग पर चन्दन और इत्र लगाऊँगी। व्रजांगनाएँ चिन्ता-मग्न हो रही हैं कि हम अबला हैं और श्रीकृष्ण हमारी सौतिन कुब्जा के साथ रँगरेलियाँ करते हैं।

हे ऊधो, चैत का महीना आ गया। वन में गुलाब के फूल चिटख गये। मैं फूल चुन-चुन कर हार गूँथूँगी, और आज ही शुभ मुहूर्त्त विचार कर और शर्म को तिलांजलि दे कर मधुपुर जाऊँगी।

हे ऊधो, वैशाख आया। लेकिन मेरे सलोने श्याम नहीं आये। हाय ! मैं चिलचिलाती हुई धूप की दोपहरी कैसे बिताऊँ ? सूरदास कहते हैं—हे राधे, श्रीकृष्ण अवश्य आयेंगे और तुझसे प्रेमपूर्वक मिलेंगे।

(४)

उमड़ि बादल घिरे चहुँ दिशि
गरजि-गरजि सुनावहीं
श्याम ऐसो निठुर बालम
मास अषाढ़ ने आवहीं

सावन रिमझिम मेघ बरिसय
जोर सँ झरि लावहीं

चहुँ ओर चकित मोर बोले
दादुर शब्द सुनावहीं

भादव गरजत झहरि बरिसत
जोरि दमसत दामिनी
श्याम बिनु सून सेजिया
रात डरपत कामिनी

आसिन हे सखि आस लगाओल
श्याम अजहुँ न आवहीं
ताल भरि-भरि नीर हे सखि
विदित वर्षा हो गई

कातिक कामिनि रटत पिउ
निशि अकेली हम खड़ी
हम जिअब कोन हेत ऊधो
जोग बस ज्वानी गई

अगहन हे सखि श्याम नहिं
किछु कहि गेल
श्याम जी के कठिन हृदय
मोहिं दुख दय गेल

पूस ऊधो जाहु मधुपुर
कोन जोगिनि बस किय
जाय हिलमिल केर किन्हा
हमरो के दुख दय गिय

माघ जाड़ा शीत गहरा
काहु के न पठाइय

छोड़ु सखि सब लाज तन के
चलहु मधुपुर छाइय

फागुन हे सखि होरि आयल
उर सँ उमड़त आगिया
नाक बेसर सुरंग चोली
तिलक थिक भल भाँतिया

चैत हे सखि पुहुप फूलय
से देखि भौंरा लुभाइय
रूप सुन्दर सिमहु सेवल
चलत मन पछताइय

वइसाख ऊधो जाहु मधुपुर
हरि सँ विपति जनाइय
हम त अबला दुखित हरि विनु
हरि के आनि मिलाइय

जेठ ऊधो भेंट होय गेल
पुरल मन के आशिया
सूर कहे भजु कृष्ण राधा
पुरल बारहमासिया

आसमान में बादल उमड़ कर घिर आये—गरज-गरज कर घुमड़ पड़े। हाय! मेरे श्याम ऐसे निठुर हैं कि इस आषाढ़ महीने में भी नहीं आये।

सावन का महीना है। मेघ रिमझिम-रिमझिम बरस रहा है। बूँदियों की झड़ी लग गई है। मयूर और दादुर चारों ओर चकित होकर शब्द-संधान कर रहे हैं।

भादों का महीना है। बादल गरज-गरज कर डकार रहे हैं। दामिनी

जोरों में दमक रही है। हाय! श्याम के बिना मेरी सेज सूनी है, और भादों की इस भयावनी रात में मैं अबला दहल रही हूँ।

हे सखी, आश्विन में मैंने आशा लगा रक्खी थी। लेकिन मेरे श्याम आज भी नहीं आये। हे सखी, नदी और तालाब जल से लबालब भर गये। यह दृश्य वर्षा की प्रसिद्धि की सूचना देते हैं।

कार्त्तिक का महीना है। और मैं अबला 'पिऊ-पिऊ' की टेर लगा रही हूँ। सूनी रात है, और मैं अकेली खड़ी हूँ। हे ऊधो, अब मै किसलिए जिऊँ? साधना में ही मेरे यौवन का अन्त हो गया।

हे सखी, अगहन का महीना है। मेरे सलोने श्याम बिना मुझसे कुछ कहे ही चले गये। हाय! श्याम का हृदय कितना कठोर है। वह मुझ अबला को दुःख देकर चले गये।

हे ऊधो, पूस का महीना है। आप मधुपुर जायँ, और देखें कि मेरे श्याम को किस योगिनी ने लुभा रक्खा है। वे स्वयं तो वहाँ जा कर प्रेम-क्रीड़ा करने लगे, और मुझे दुःख-समुद्र में डुबो गये।

माघ का महीना है। जाड़े के आधिक्य के कारण जोरों की ठंड पड़ रही है। हे सखी, अब वहाँ किसी दूसरे को न भेजो। चलो हम स्वयं शर्म की जंजीर तोड़ कर मधुपुर में जा विराजें।

हे सखी, फागुन का महीना है। चारों ओर होली की बहार है। हृदय में विरहाग्नि प्रज्वलित हो रही है। सखियाँ नाक में बेसर, और शरीर में सुन्दर कंचुकी तथा माथे पर ईंगुर-बिन्दी धारण कर आनन्द-मग्न हो रही हैं।

हे सखी, चैत का महीना है। फूल चिटख गये हैं, जिसे देख-देख कर मधु-लोलुप मधुप गुञ्जार करते हैं। और निर्गन्ध, पर चित्ताकर्षक शाल्मलि सुमन की सुन्दरता पर ये भौंरे लट्टू हैं, और वहाँ से हटने में पश्चात्ताप करते हैं।

हे ऊधो, वैशाख का महीना है। आप मधुपुर जायँ, और श्रीकृष्ण से हमारी विपत्ति-वार्त्ता सुनावें। हम अबला श्रीकृष्ण के बिना ग़मगीन हो रही हैं। अतः आप श्रीकृष्ण को ला कर हमें मिला दें।

हे ऊधो, जेठ में श्रीकृष्ण मिल गये, और मन की मुराद पूरी हुई। कवि 'सूरदास' कहते हैं कि इस प्रकार बारह महीने पूरे हुए।

(५)

चनन रगरू सुहागिन
गला मोहर माल
मोतियन माँग भरो रे
आयल सुख मास अषाढ़
सावन अति दुख भारी
दुख सहलो ने जाय
एहो दुख सह रानी कुबरो
भादव रात अंधरिया
मेघ बरिसन लागु
आसिन आस लगाओल
आसो न पुरल हमार
एहो आस पुर रानी कुबरो
जिन कंत राखल लुभाय
कार्त्तिक निज पूर्णिमा
चलु सखि गंगा स्नान
गंगा नहाइत लट घुरमय
राधा मन पछताय
अगहन अग्र महीना
लयलन अग्रक चीर
चीर खोलि धयलो मन्दिर घर
मनमा मोर भेल उदास
पूसहिं फूँह पड़िय गेल
भिजि गेल अग्रक चीर

जे लयलन विदेशी वालम
जिओ कंत लाख बरीस
माघहिं निज पूर्णिमा
करितो व्रत त्योहार
हार सिंगार सब करितो
करितों व्रत त्योहार
फागुन फगुआ जँ खेलितों
रहितों रँगरेजवा क पास
इत्र गुलाव रंग खेलितों
घोरितों बटाभरि अबीर
चैतहिं बेला फुलिय गेल
फुलि गेल सब रंग फूल
फूल देखि भौंरा लोभाय गेल
गमकय हमर शरीर
बइशाखहि बँसवा कटइतो
छवइतो नवरंगी बँगला
ओहि रे बँगलवा पइसि सुतितों
करितों भोग-विलास
जेठहिं हेठ होइय गेल
पुरि गेल बारहो जँ मास
'सुरहिदास' बलिहारी
लेखा लेहु न विचार

हे सुहागिन, चंदन घिसो। गले में मणि का हार पहन लो, और मोतियों से माँग सजाओ। आषाढ़ का सुखमय महीना आ गया। सावन में दुख का आधिक्य है। यह दुःख सहा नहीं जाता। यह दुःख का भार रासी कुब्जा ही सहे।

भादों की अँधेरी रात्रि है। झमाझम मेघ बरस रहे हैं।

आश्विन में मैंने आशा लगा रक्खी थी, लेकिन वह पूरी न हुई। आशा तो रानी कुब्जा की पूरी हुई, जिसने मेरे प्रियतम को लुभा रक्खा है।

आज कार्तिक की पूर्णिमा है। हे सखी, चलो गंगा-स्नान कर आवें। गंगास्नान करते समय राधा के घने रेशम से बाल नाच रहे हैं और वह मन-ही-मन पछता रही है।

अगहन का सर्वश्रेष्ठ महीना है। प्रियतम ने मेरे लिए एक बढ़िया साड़ी ला दी। मैंने वह चीर खोल कर मन्दिर में रख दी, और मेरा मन उदास हो गया।

पूस में ओस की बूँदें गिरीं। मेरी वह सुन्दर चीर भींग गई। इस चीर को मेरे प्रवासी प्रियतम लाये थे। हे सजन, तुम लाख वर्ष जियो।

माघ की पूर्णमासी है। काश मैं भी अपनी हमजोलियों की तरह व्रत-त्योहार करती। और अपने प्रियतम के पास रह कर फागुन में फाग की बहार लूटती। कटोरा-भर अबीर घोल कर तथा इत्र और गुलाब से रँग खेलती।

चैत में बेले के फूल खिल गये, और अन्य सभी प्रकार के रंग-विरंगे फूल देख कर भौंरे लोट-पोट हो रहे हैं, और मेरा शरीर भी सुगन्धि से महक रहा है।

मैं बैशाख में बाँस कटवा कर नौरंगी बँगला छवाऊँगी। और उसी बँगला में रह कर प्रियतम के साथ क्रीड़ा करूँगी।

जेठ का महीना अत्यन्त हेय है। लो, ये बारह महीने पूरे हुए। कवि 'सूरदास' कहते हैं कि मैं तुम्हारी बलैया लूँ।

पद के अन्त में 'सूरदास' का नाम आया है। लेकिन यह साहित्य-संसार के चिर परिचित 'सूरदास' नहीं हैं।

(६)

चौमासा छन्दपरक

वितल	वसन्त	सखि कंत बिनु
लेल	ग्रीषम	प्रवेश

आवन अवधि व्यतित भेल
अब मोहिं लागु अन्देश
लागु डर जिय दमकि दामिनि
वरिसु जलधर नीर यो
विजुलि चमकत हृदय हहरत
वहत कठिन, समीर यो
कारि रैनि भयाओन पहुँ बिनु
शून्य सेज न भाव यो
जेठ जीवन झूठ पहुँ बिनु
पलटि गृहि नहिं आव यो
जीवन धन जन योवन
तन मन सब हरि लेल
भूषण वसन शयन सुख
सब उत्तम लय गेल
कीन्ह सुख स्वारथ सभै
पहुँ दीन्ह दुख तन भार यो
अकेलि कामिनि कारि यामिनि
यौवन जीवक जंजाल यो
रैनि चैन ने होय पहुँ बिनु
बोलत दादुर मोर यो
बोलय पिहुआ बिछुड़ि पहुँ सौं
पहुँ अषाढ़ ने आव यो

वारि वयस पहुँ तेजि गेल
वृद्ध वयस नहिं आय
परदेश परवस भेल पहुँ
सुधि बुधि सकल भुलाय

आवि घर की करत बालम
वारि वयस विताय कै
पर नारि वश भेल परदेश
हमर सुधि विसराय कै
आव जौं पहुँ पलटि आओत
जीवत मोहि नहिं पाव यो
विरह व्याधि उपाधि मनसिज
सावन सुख निराश यो
कतेक सहब दु:ख पिया बिनु
अब दु:ख सहलो ने जाय
काहि कहब के बूझत
के पहुँ देत बजाय
पापी प्रान न जाय पहुँ बिनु
नयन झहरत नीर यो
मासु मासा रहल तन में
रूधिर न रहल शरीर यो
नासा धीर समीर निकसत
भवन भादव त्रास यो
मनमोहन नहिं मिलत बालम
फेरि न जीवनक आस यो

अर्थ स्पष्ट है।

(७)

चैत हे सखी कुहुकि कोकिल
हृदय काम जगाव यो
कठिन श्याम कठोर मानस
ऋतु वसन्त विदेश यो

बहुशाख हे सखी देखि उपवन
ललित कुसुम विकास यो
देखि निज कुच कुसुम मउलल
रहत धीर न थीर यो

जेठ कर सखि लेत चन्दन
पंकज लेप शरीर यो
बिनु नाथ चन्दन शीतलादिक
धधकि जारत देह यो

अषाढ़ हे सखी झहरि झमकत
नीर बिजली जोर यो
देखि काँपत देह थर-थर
नयन-धारा-नीर यो

आयल सावन मेघ बरिसत
घुमड़ि घोर समीर यो
सुमरि यौवन उमड़ि आवत
प्राणपति नहिं साथ यो

भादव जलधर ठमकि ठमकत
खँसल च्योंकि अचेत यो
काहि कहु अब श्याम बिनु सखि
जात जीवन मोर यो

आश आसिन अन्त कै सखि
गेल कन्त दुरन्त यो
शरद चन्द्रक चाँदनी लखि
जीविन चंचल मोर यो

देखि कार्त्तिक नारि इक सखि
तान सर रतिनाथ यो
करत आकुल जीव छन-छन
कठिन कन्त हीं वन गयो

लखि जात धान समान अगहन
कमल-सम कुच कोर यो
रहि नाथ हाथ मरोरि कै सखि
देखि सेजि न थीर यो

पूस ओस बेहोश सखि सब
रहति बालम कोर यो
हम अकेली सून गृहि बिच
कोन विधि काटव रात यो

माघ कर्मक बात हे सखि
जुलुम करि गेल कन्त यो
अंग-अंग तन ज्वाल उठत
हृदय में अति पीर यो

फागुन हे सखि आस पूरल
करब आज विहार यो
पिउ संग उड़त रंग-अबीर यो

हे सखी, चैत का महीना है। कोयल अपनी काकली से हृदय में प्रेम-भावना का संचार करती है। हाय! निर्मम श्याम का हृदय कितना कठोर है कि वसन्त ऋतु में वह प्रवासी जीवन बिता रहे हैं।

हे सखी, वैसाख का महीना है। देखो, वन-उपवनों में ललित कुसुम चिटख गए। लेकिन अपने मन-कुसुम को म्लान देख कर चित्त का धैर्य जा रहा है।

जेठ में सखियाँ अपने कर-कमलों से चन्दन ले कर शरीर में लेप रही हैं। किन्तु, हाय! प्रियतम के बिना चन्दन की शीतलता भी मेरे शरीर को भस्मीभूत करती है।

हे सखी, आषाढ़ में वर्षा की झड़ी लग गई है, और बिजली जोरों में कड़क उठी, जिसे देख कर मेरा शरीर थर-थर कांपता है, और आँखों से अविरल अश्रु-धारा प्रवाहित हो रही है।

सावन आया। मेघ उमड़-घुमड़ कर बरसने लगे, और वायु की गति तीव्र हो गई। हाय! यह स्मरण होते ही कि प्राणनाथ साथ में नहीं हैं, मेरे जोवन कड़क उठते हैं।

भादों में बादल कड़क-कड़क कर कोलाहल करते हैं, जिसे सुन कर मैं बेसुध हो रही हूँ। हे सखी, यह किससे कहूँ कि श्याम के बिना अब मेरे जीवन का ही अन्त हो रहा है।

हे सखी, आश्विन की आशा पर पानी फेर कर मेरे प्रियतम दूर देश में जा विराजे। हाय! शरद-चन्द्र की चाँदनी देख कर मेरा यौवन चंचल हो रहा है।

हे सखी, कार्तिक में एक निस्सहाया अबला को देख कर रतिनाथ शर-संधान करते हैं जिससे मेरे प्राण प्रतिक्षण अधीर हो रहे हैं। हाय! मेरे कठोर प्रियतम मुझे छोड़ कर परदेश चले गये।

हे सखी, जिस प्रकार अगहन में धान के शीश फल कर झुक जाते हैं, ठीक उसी तरह मेरे कमल के समान प्रफुल्ल दोनों दुर्वह कुच झुक गये हैं। हे सखी, प्रियतम अनुपस्थित हैं; यह सोच कर मैं हाथ मसोस कर रह जाती हूँ और सेज सूनी देख कर मेरा धैर्य जाता रहता है।

हे सखी, पूस की ओस से बेहोश हो कर सभी स्त्रियाँ अपने प्रियतम की गोद में सुख के खर्राटे ले रही हैं। लेकिन मैं एकाकिनी इस शून्य भवन में किस प्रकार रात बिताऊँ ?

हे सखी, माघ में मैं अपने हालात क्या कहूँ ? मेरे प्रियतम अन्धेर की

आँधी उठा कर ग़ज़ब ढा गये। मेरे अंग-प्रत्यंग से विरह की ज्वाला उठ रही है जिससे हृदय में पीड़ा होती है ।

हे सखी, फागुन में मेरी मुराद पूरी हुई। आज मैं अपने प्रियतम के साथ अबीर और गुलाल से रंग-क्रीड़ा करूँगी ।

(८)

चौमासा छन्दपरक

नवल नव-नव विमल तरुअर
खेत धान पथार ए
क्रूर भानुक ताप लाघव
रइनि केहनि उजार ए
एहन अपरूव जोग हे सखि
कह कतय रह कन्त ए
बारि वयस बिताय वाला
कन्त वसल दुरन्त ए
आरे अगहन शीत पड़ल किछु आध
हम सखि पड़लहुँ विरह अगाध

सगर जगरस बरिस हे सखि
सुरस बारिस भेल ए
आज बसि पिक कुंज में सुन
राग पंचम देल ए
सगरि राति बिताय जागय
हमहिं अबला नारि ए
झटिति आयब लिखब पाँती
गेल कहि परतारि ए
पूसहिं आयल जारक मास
संग संग शयन करव छल आस

शीत अविरल झरल नभ सँ
तनक ताप वढ़ाय ए
नवल पात रसाल पाओल
हमर कमल सुखाय ए
पीत पटतर संग शयनक
भाग नहिं विह देल ए
जाउ कहु गए चलह पामर
रमनि झामरि भेल ए
माघक शीत लगय बर जोर
लेत कखन पिउ जामिनि कोर

मास फागुन रँगल तरु सब
जगत रंग पसार ए
अबिर अओर गुलाब कुंकुम
भरल जगत पथार ए
पहुँक संग खेलाय सखि सभ
निहत हमरहुँ आस ए
'कुमर' बरसक सारि में इहो
पास चारिहु मास ए
ऋतुपति फेंकल कुसुमक पास
रसमय आयल फागुन मास

नये-नये कोमल किसलय के निकल आने से वृक्षों की सुन्दरता निखर पड़ी। खेतों में धान का लावण्य फूट पड़ा। जलते हुए प्रचण्ड सूर्य के प्रखर प्रकाश में भी कुछ शीतलता आ गई, और अँधेरी रात्रि का अँधेरापन शुक्ल आभा में सन गया। हे सखी, इस अपूर्व अवसर पर कहो मेरे प्रियतम कहाँ विराज रहे हैं? बालिका ने किशोरावस्था बिता कर युवावस्था में पदार्पण किया, और उसके प्रियतम दूर देश में छाये हुए हैं। अगहन में धीरे-

धीरे जाड़ा की मात्रा बढ़ने लगी। और हे सखी, लो मैं विरह की विषम घाटी से होकर गुज़र रही हूँ।

हे सखी, सारे संसार में रस की धारा फूट बही है, और आज कोयल कुंज में पंचम तान में अलाप रही है। मैं अबला सारी रात जाग कर बिताती हूँ; क्योंकि मेरे प्राणनाथ यह आश्वासन दे कर चले गये कि वहाँ से शीघ्र वापिस आऊँगा, और पत्र-द्वारा कुशल-क्षेम लिखता रहूँगा। पूस आया, और जाड़े का मौसम भी आ गया। आशा थी कि अपने प्रियतम के साथ शयन करूँगी, लेकिन वह पूरी न हुई।

शरीर का विरह-अग्नि को प्रज्वलित करती हुई आसमान से अनवरत रूप से ओस की बूँदें झरने लगीं। आम के पेड़ नये-नये पत्तों से लद गये। लेकिन मेरा मुख-कमल म्लान हो गया। हाय! पीताम्बर के नीचे सुख-पूर्वक खर्राटे लेने का सौभाग्य विधाता ने मुझे नहीं दिया। हे सखी, तुम जाओ, और मेरे निर्मोही प्रियतम से जाकर कहो कि तुम्हारी प्रियतमा तुम्हारे वियोग में खिन्न हो रही है। माघ की ठंड बड़ी भीषण होती है। न मालूम मेरे प्रियतम कब मुझे अपनी गोद में लेंगे?

फागुन का महीना आया। पेड़-पौधे अनुराग के रंग में रंग गये, और संसार भी राग-रंजित हो गया। सर्वत्र अबीर, गुलाल और कुंकुम की ढेर लग गई। हमारी हमजोलियाँ अपने प्रियतम के साथ रंग-क्रीड़ा करती हैं। लेकिन मेरी मनोकामना पूरी नहीं हुई। 'कुमर' कवि कहते हैं कि यह वर्ष चौपड़ का खेल है, और ये चारों महीने उस खेल के चारों पासे हैं। कामदेव ने कुसुम के पासे फेंके और यह फागुन का रसमय महीना आ गया।

यह चौमासा है। इसमें अगहन, पौष, माघ और फागुन महीने के ऋतु-सौन्दर्य का चित्रण है।

(६)

आय अषाढ़ घटा घन घोर
चहुँ दिशि झींगुर मेढ़क शोर

पिया परदेशी तजय घर मोर
बिनु पिया कड़कत जोवन मोर
जिअब हम कयसे
मोर कन्त दुरन्तर छाय प्रीति शर लागे
सावन सुन्दरि सजत सिंगार
श्याम बिना सब शोक अपार
बादल बरिसे नाचे बन मोर
पिउ पिउ रटत पपिहा चहुँ ओर
पिआ नहिं आवे
मोर कन्त दुरन्तर छाय प्रीति शर लागे
भादव भवन भयावन भेल
भाग्यहीन मोहि विधि कय देल
भजन अब करिहों धरि जोगिन भेस
छाय रहो पिया नित परदेश
मिल्यो नहिं हमसे
मोर कंत दुरन्तर छाय प्रीति शर लागे
आसिन आस नाथ दय गेल
आस नास पिया बिनु भेल
सुनु सब सखिया जिअब केहि भाँति
कठिन कठोर लगे दिन राति
नींद नहिं अँखिया
मोर कंत दुरन्तर छाय प्रीति शर लागे
कातिक काम करत उपदेश
आगम शीतक बढ़त कलेश
मदन सर मारे लगे उर तीर
कन्त बिना मोहि हरत के पीर
चीर नहिं भावे

मोर कंत दुरन्तर छाय प्रीति शर लागे
अगहन आय हेमन्तक रीत
मूढ़ प्राणपति तेजल प्रीत
रीत नहिं जाने रसक कछु बात
प्राण पिया बिनु किछु न सोहात
रात कोना कटिहों
मोर कंत दुरन्तर छाय प्रीति शर लागे
पूस पड़त पल-पल में तुषार
प्राणनाथ बिनु जाड़ अपार
पार कोना जइहों रहिबो केहि संग
पीतम कैल सबहिं सुख भंग
जंग मद वान्हो
मोर कंत दुरन्तर छाय प्रीति शर लागे
माघ मदन तन बढ़त तरंग
सखि सब पिय संग रहत अनन्द
रंगमहल में नित करत बिहार
तरुनि तेजल मोहि तरुन गमार
बिचार नहिं उनके
मोर कंत दुरन्तर छाय प्रीति शर लागे
फागुन हे सखि फाग बहार
रंग अबीर अतर के बिसार
सब दिन में सुख मूल के दिन
त्याग पिया भे गेल परबीन
खीन भय रहिहों
मोर कंत दुरन्तर छाय प्रीति शर लागे
चैत चमेली गुलाब नेवार
मजरल आम फूलल कचनार

हार गूंथि लइहों देबो शंकर शीश
पूजन के फल मिलत असीस
शीश पै रखिहों
मोर कंत दुरन्तर छाय प्रीति शर लागे
माधव मोहन छाय दुरन्त
माधव के संग जीवक अंत
कन्त बिनु पाय करि कोटि उपाय
मदन दहन तन गेल समाय
काय जरि जैहों
मोर कंत दुरन्तर छाय प्रीति शर लागे
पहुँच अमावस जेठक मास
जीवननाथ पहुँच गेल पास
रास अब करिहों दुख भेल विनास
'बबन' भनथि यह बारहमास
आस सब पूरे
मोर कंत दुरन्तर छाय प्रीति शर लागे

आषाढ़ आया। आसमान में घनघोर घटा घिर आई। चारों ओर झींगुर और मेढक कोलाहल करने लगे। मेरे प्रवासी प्रियतम ने मेरा परित्याग कर दिया। बिना प्रियतम के मेरा जोबन कड़क रहा है। मैं प्राण रक्षा कैसे करूँ ?

मेरे प्रियतम दूर देश में छाये हुए हैं, और मुझे प्रीति के बाण घायल कर रहे हैं।

सावन का महीना है। सुन्दरियाँ, श्रृंगार करती हैं। श्याम के बिना शोक के बादल उमड़ रहे हैं। मेघ बरसते हैं। वन में मोर नाचते हैं। चारों ओर पपीहा 'पिऊ-पिऊ' की रट लगा रहा है। फिर भी मेरे प्रियतम नहीं आये।

हाय ! मेरे प्रियतम दूर देश में छाये हैं, और मुझे प्रीति के बाण घायल कर रहे हैं।

भादों में भवन की भयानकता बढ़ गई। विधाता ने मुझे भाग्यहीन बना दिया। मैं अब योगिन का वेष धारण कर भजन करूँगी। हे मेरे प्रियतम, यदि तुम्हारी यही मर्जी है, तो तुम अब परदेश में ही रमो, और मुझसे नहीं मिलो।

मेरे प्रियतम दूर देश में छाये हैं, और मुझे प्रीति के बाण घायल कर रहे हैं।

आश्विन का महीना है। प्रियतम मुझे झाँसा देकर चले गये, और मेरी मुराद उनके बिना पूरी न हुई। हे सखी, सुनो अब मेरे जीवन की रक्षा कैसे होगी ? दिन-रात पहाड़-से लग रहे हैं, और आँखों में नींद नहीं आती।

मेरे प्रियतम दूर देश में छाये हैं, और मुझे प्रीति के बाण घायल कर रहे हैं।

कार्तिक में कामदेव प्रेम का उपदेश देते हैं। जाड़े के आगमन से क्लेश की मात्रा बढ़ जाती है। कामदेव तीखे तीरों की बौछार लगाते हैं, जो सीधे मर्मस्थल को बेधते हैं। हाय! प्रियतम के बिना मेरी वेदना का अन्त कौन करेगा ? हे सखी, अब तो चीर भी नहीं भाती।

मेरे प्रियतम दूर देश में छाये हैं, और मुझे प्रीति के बाण घायल कर रहे हैं।

अगहन आया। हेमन्त ऋतु भी आई। हाय ! मेरे बुज़दिल प्रियतम ने नेह का बन्धन तोड़ लिया। वह रस की रीति कुछ नहीं जानते। उनके बिना अब कुछ भी नहीं भाता। हाय! अब मैं रात कैसे काटूँ ?

मेरे प्रियतम दूर देश में छाये हैं, और मुझे प्रीति के बाण घायल कर रहे हैं।

पौष आया। तुषार की वर्षा होने लगी। प्रियतम के बिना जाड़ा असह्य हो गया। मैं दिन कैसे काटूँ—किसके संग रहूँ ? मेरे प्रियतम ने मेरे सारे सुखों का मूलोच्छेद कर दिया। उफ्! मेरे यौवन के उफान ने कठिन संग्राम छेड़ दिया है।

मेरे प्रियतम दूर देश में छाये हैं और मुझे प्रीति के बाण घायल कर रहे हैं।

माघ आया। शरीर में मदन तरंगित हो उठा। हमारी सखियाँ अपने प्रियतम के साथ सुखपूर्वक दिन बिताती हैं, और रंगमहल में क्रीड़ा करती हैं। मेरे नव-वयस्क प्रियतम ने मुझ नवयुवती का परित्याग कर अपनी जड़ता का परिचय दिया है। उन्हें कुछ भी ज्ञान नहीं है।

हाय, मेरे प्रियतम दूर देश में छाये हैं, और मुझे प्रीति के बाण घायल कर रहे हैं।

हे सखी, फागुन का महीना है। अबीर, गुलाल और इत्र की धूल उड़ रही है। यह दिन सभी दिनों की अपेक्षा सुखमय है। लेकिन मेरे साजन मेरा विस्मरण कर न मालूम कहाँ छा रहे हैं ? हाय! अब मैं खिन्न हो कर दिन बिताऊँगी।

मेरे प्रियतम दूर देश में छाये हैं, और मुझे प्रीति के बाण घायल कर रहे हैं।

चैत में चमेली, गुलाब और नेवारी की बहार है। आम में बौर लग गये हैं, और कचनार के फूल खिल गये हैं। मैं हार गूँथ कर भगवान शंकर को चढ़ाऊँगी, जिसके पुरस्कार में मुझे आशीर्वचन मिलेंगे। और मैं उन्हें सादर स्वीकार करूँगी।

मेरे प्रियतम दूर देश में छाये हैं और मुझे प्रीति के बाण घायल कर रहे हैं।

वैशाख आया। मेरे प्रियतम दूर देश में जा विराजे। हाय! प्रियतम के साथ ही मेरे जीवन का अंत हो जायगा। मैंने लाखों तदबीर की, लेकिन मेरे प्रियतम नहीं आये। काम की आग में इस शरीर ने प्रवेश किया और अब यह शरीर जल कर ही रहेगा।

हाय! मेरे प्रियतम दूर देश में छाये हैं, और मुझे प्रीति के बाण घायल कर रहे हैं।

जेठ की अमावश्या तिथि आ गई। मेरे प्राणनाथ भी आ गये। मैं अब रास-क्रीड़ा करूँगी और आज मेरे दुःख का अन्त होगा। 'बबन' कवि कहते हैं कि यह बारहमासा पूरा हुआ, और वियोगिन नायिका की आशा भी पूरी हुई।

(१०)

आयल मास अषाढ़ रे
वर्षा ऋतु आयल[1]
शोच करे व्रजनागरि रे
प्रीतम नहिं आयल

सावन शरद सोहावन रे
वरषे दिन राती
झिंगुर देत झकोरा[2] रे
सालै मोर छाती

भादव भवन भयावन रे
विरहिनि दुख भारी
दामिनि दमसि[3] डरावय रे
बिनु पुरुषक नारी

आसिन आस लगाओल रे
आसो ने पुरल हमार
कोन बैरिन बैरि सधाओल[4] रे
रोकल[5] नन्दकुमार

---

[1] आ गयी। [2] झंकार। [3] दमक कर। [4] बदला लिया। [5] रोक रक्खा।

कातिक कन्त दुरन्त[1] गेल रे
लिखियो ने भेजल पाँती
घर घर दीप जरैत छल रे
जत छलिह अहिवाती

अगहन अग्र सोहावन रे
सखि सब गौनमा के जाय
हमहुँ अभागलि नारी रे
वैसलहुँ[2] देहरि झमाय[3]

पूसक जाड़ ठाढ़ि भेल रे
मोरा बुतें[4] सहलो ने जाय
झाड़ि-झाड़ि पलंगा ओछावितहुँ रे
जौं गृह रहितथि मुरारी

माघहिं चढ़ल वसंत रे
यदुपति नहिं आय
एहन जीवन नहिं जीयव[5] रे
मरव जहर विष खाय

फागुन फगुआ खेलैतहुँ रे
सखि सब रंग बनाय
अबिर गुलाबक मारि रे
सखि सब धूम मचाय

चैतहिं चित मोरा चंचल रे
फूल फूल कचनारी

---

[1] दूर, प्रवास में। [2] बैठ गई। [3] गमगीन होकर। [4] मुझसे। [5] जिऊँगी।

पिया मोर गेल परदेशवा रे
जे छल देशक ओरी

वैशाखक धूप मतौना[1] रे
मोरा बुते सहलो ने जाय
ऊँच कय बंगला छववितहुँ[2] रे
हेरितहुँ बलमुजिक बारी

जेठ मास बरसाइत रे
सखि सब वर[3] तर जाय
'सुकविदास' गुन गाओल रे
पूरल बारहमास

(११)

सात सखी अगली रामा सात सखी पिछली
चलि भेल यमुनाक तीर हे
एक सखी के रामा गागर फूटल
सब सखी मन पछताय हे
एक सखि अगिली रामा एक सखि पिछिली
सुनु सखि वचनि हमार हे
हमरो बचनिया सखि सासु आगु कहिह
कहिह मे वचनि बुझाय हे
छोटकि ननदिया रामा बड़ तिलबिखनी
दउड़ल जाय अम्मा जी के पास हे
तोहरो जँपुतहुँ अम्मा विरहा के मातल
गागर अलथुन ह गँवाय हे

---

[1]मूर्च्छित कर देनेवाली। [2]छवाती। [3]वट-वृक्ष।

अइया खइअउ भइया खइअउ छोटकि पुतहुउआ
गागर बदल गागर देहु हे
तब हयत गृहि तोहर बास हे
खोंइछा में बन्हलि ढ़ेउआ कउड़िया
चलि भेल कुम्हरा दुआर हे
कहाँ गेले किए भेले कुम्हरा रे भइया
गागर के बदल गागर देहु हे
तब हयत गृहि हमर बास हे
छोटकि ननदिया रामा बड़ तिलबिखनी
दउड़ल जाय भइया जी के पास हे
तोहर तिरइया रामा विरहा के मातल
गागर अलथुनह गँवाय हे
हरवा जोतइत बहिनि फरवा हेराय गेल
बयला के टुटि जाय नाथ हे
घोड़वा जँ चले बहिनि टपटप उठय
हथिया चलय मधु चाल हे
पनिया भरइत बहिनि गागर फूटल
तिरिया क कोन अपराध हे
बएला के ताजन बहिनि बमे दहिनमे
घोड़वा क ताजन लगाम हे
हथिया क ताजन बहिनि दुइ चार अँकुसा
तिरिया ताजन आधि रात हे

सात सखी आगे और सात सखी पीछे—इस तरह पंक्ति-बद्ध हो कर यमुना-किनारे चलीं। उनमें एक सखी की गागर फूट गई, जिससे सब सखियाँ पश्चात्ताप करने लगीं। गागर फूट जाने के कारण वह अत्यन्त खिन्न हुई। उसने अपनी हमजोलियों से कहा—

हे पंक्ति की अगली और पिछली सखी, सुनो हमारा वचन हमारी

सास से समझा कर कहना। हे सखी, मेरी छोटी ननद जहर की बुझी है। वह मेरी चुगली खाने माँ जी के पास दौड़ी जाती है।

ननद ने अपनी माँ से शिकायत की—

हे माँ, तुम्हारी पतोहू विरह से मतवाली है। उसने गागरी फोड़ दी है।

यह सुनते ही उसकी सास आगबगूला हो गई। उसने अपनी पतोहू से कहा—मैं तेरी मां और भाई को खाऊँ। मुझे मेरी गागर के बदले नई गागर ला दे। तभी तुम्हारा इस घर में वास होगा।

सास की यह दुत्कार सुन कर उसकी पतोहू आँचल में कौड़ी बाँध कर कुम्हार के घर गागर खरीदने चली।

हे कुम्हार भाई, तुम कहाँ हो? कहाँ गये? फूटी गागरी के बदले एक नई गागर गढ़ दो। तभी हमारा अपने घर में वास होगा।

हे सखी, मेरी छोटी ननद विष की बुझी है। वह मेरी चुगली खाने अपने भाई जी के पास दौड़ी जाती है।

ननद ने अपने भाई से शिकायत की—

हे भाई, तुम्हारी स्त्री विरह से मतवाली है। उसने गागर फोड़ दी है।

उसके भाई ने कहा—

हे बहन, हल जोतने के समय फाल खो जाती है, और बैल की नाथ टूट जाती है। और जब घोड़ा चलता है, तब उसके पैर से 'टप टप' आवाज़ होती है। हाथी की चाल धीमी होती है। इसलिए हे बहन, अगर पानी भरने के समय गागर फूट गई, तो इसमें पनिहारिन का क्या कसूर?

हे बहन, अगर बैल अपराध करे, तो उसकी सजा क्या है? यही न कि उसको जूए में दायें से बायें और बायें से दायें जोत दिया जाय, और घोड़े की सज़ा लगाम है। हे बहन, हाथी की सजा उसकी गरदन में अंकुश चुभाना है, और स्त्री की सज़ा यह है कि उसकी आधी रात में ख़बर ली जाय ।

(१२)

प्रथम मास अषाढ़ हे सखि
राम अजहुँ न आवहीं
लषण के संग विकल हे सखि
सिया अति दुख पावहीं

मातु कोशिला करत आरती
सावन मोहि न भावती
कैकेयी गुण गायव हे सखि
जिय अति समुझावहीं

भादव हे सखि रइनि भयावन
लछमन धनुष चढ़ावहीं
दामिनि दमसे मेघ बरसे
राम दरश देखावहीं

आसिन में सियाहरण हे .सखि
राम अति दुख पावहीं
अंजनिसुत हनुमान हे सखि
प्रीति बहुत लगावहीं

कार्तिक के असनान हे सखि
तीर्थ व्रत न भावहीं
विकल देखि सुग्रीव हे सखि
प्रीति से उर लावहीं

अगहन में सिया बंक हे सखि
लंकपुरि में छावहीं
उतर निशाचर घोर हे सखि
बानर भालु डरावहीं

पूस में सिया फुल्ल हे सखि
कुम्भकरण जगावहीं
सजि शरासन लेल रघुवर
वाण बूंद झरि लावहीं

माघ में सब ओर हे सखि
विषम जाड़ा लागहीं
रामलषण दूर देश हे सखि
खबर किछु ने पावहीं

फागुन में सखि खेलत होरी
ताल मृदंग बजावहीं
आजु अवधपुर सून हे सखि
राम बिनु नहिं भावहीं

चैत में सब नहइत हे सखि
जँ दयाफल पावहीं
राम लषण दूर देश हे सखि
खबर किछु ने जनावहीं

बइशाख में हनुमान हे सखि
लंकगढ़ झहरावहीं
जारि लंका भस्म कैलन्हि
राज विभीषण पावहीं

जेठ में सिया भेंट हे सखि
राम अति सुख पावहीं
'दास गोपाल' एहो बारहमासा
सुयश तिहुँपुर गावहीं

हे सखी, आषाढ़ का प्रथम महीना है। आज राम नहीं आये। लक्ष्मण के साथ राम न जाने क्यों अधीर हो रहे हैं, और सीता अत्यन्त ही ग़मगीन है।

माता कौशल्या आरती उतारती हैं, और कहती हैं कि मुझे सावन नहीं भाता। हे सखी, हृदय बार-बार समझाता है कि कैकेयी के दुर्व्यहार पर दृष्टिपात न कर उनके गुण ही गाऊँ।

हे सखी, भादों की रात्रि इतनी भयावनी है कि लगता है जैसे लक्ष्मण धनुष पर बाण चढ़ा रहे हों। बिजली चमकती है। मेघ बरसते हैं, और यह दृश्य राम की याद दिलाते हैं।

हे सखी, आश्विन में सीता का हरण हुआ, और राम के सिर पर दुःख का पहाड़ टूट पड़ा। राम की इस दुखद अवस्था में अंजनि-पुत्र हनुमान उनके साथ सहानुभूति दिखा रहे हैं।

हे सखी, कार्त्तिक का स्नान और यह तीर्थ-व्रत नहीं भाता। हे सखी, राम को व्याकुल देख कर सुग्रीव उनसे मित्रता का सम्बन्ध स्थापित करते हैं।

हे सखी, अगहन में विपदग्रस्ता सीता लंका में दिन काट रही है। और निशाचरों के दल बादलों की तरह उमड़ कर बन्दर-भालुओं को भयभीत कर रहे हैं।

हे सखी, पौष में सीता प्रफुल्ल दीखती हैं, और रावण अपने भाई कुम्भ-करण को युद्ध के लिए जगा रहा है। संग्राम छिड़ गया है, और रामचन्द्र धनुष-बाण संधान कर बाण-वर्षा करते हैं।

हे सखी, माघ में सभी जगह विषम जाड़ा का प्राबल्य है। हे सखी, राम-लक्ष्मण दूर देश में विराज रहे हैं, और उनकी कोई खबर नहीं मिली।

हे सखी, फागुन में सब होली खेल रहे हैं, और झाल-मृदंग बजाते हैं। आज मेरी अयोध्या नगरी सूनी है, और राम के बिना उदासी छायी है।

हे सखी, चैत में सब सुखपूर्वक स्नान कर पुण्य-फल लूटने लगे। राम-लक्ष्मण दूर देश में हैं। वहाँ की कोई खबर नहीं मिलती।

हे सखी, वैशाख में हनुमान लंका के दुर्ग को कम्पायमान कर रहे हैं।

लंका का गढ़ जल कर क्षार हो गया, और रावण का भाई विभीषण गद्दीनशीन हुआ ।

हे सखी, जेठ में राम और सीता का मिलन हुआ। दोनों अत्यंत प्रसन्न हैं। कवि 'गोपालदास' कहते हैं कि इस बारहमासे का कीर्त्तिगान तीनों लोक में व्याप्त हो।

(१३)

कोना हम रइनि गँवाऊ हे ऊधो
नहि आयल घनश्याम हरी
आय अषाढ़ उमड़ि गेल बदरा
वरिसत बूँद सघन घहरी

साओन सखि सब डारे हिंडोरा
झूलि झूलि रहय पिया संग में
हम धनि सोचत ठाढ़ि अटरिया
हमरो विरह तन दय कुबरी
दादुर मोर मदन सर जोरे
उठत विरह तन गात जरी

भादव ताल तरंग उमड़ि गेल
देखि देखि सखि सब सोच भरी
आजु सेआम सलोने न अयताह
खयवों जहर बिस घोर मरी

आसिन आस रहे भरि पूरन
मोतिया मँगाय गूँथव चोटी
गिरिजा के स्वामी आयल मनमोहन
सखिया सहित मन मोद भरी

हे ऊधो, मैं रात कैसे काटूँ? मेरे घनश्याम कृष्ण नहीं आये।

आषाढ़ आ गया। बादल उमड़ पड़े। बूँदें रिमझिम-रिमझिम बरस रही हैं। हे ऊधो, मैं रात कैसे काटूँ? मेरे घनश्याम कृष्ण नहीं आये।

सावन आ गया। सखियाँ हिंडोले डाल-डाल कर अपने-अपने प्रियतम के साथ झूला झूलती हैं। और हे प्रियतम, मैं अपनी अटारी पर खड़ी-खड़ी चिन्तामग्न हूँ। कुब्जा ने हमें विरहाकुल कर दिया है। दादुर और मोर मदन के तीखे तीर से बेध रहे हैं, और विरह की ज्वालाएँ शरीर को जला रही हैं। हे ऊधो, मैं रात कैसे काटूँ? मेरे घनश्याम कृष्ण नहीं आये।

भादों भी आ गया। तालाब उमड़ बहे, जिसे देख-देख कर सखियाँ चिन्तित हो रही हैं। यदि आज मेरे सलोने श्याम नहीं आये तो जहर पान कर शरीर त्याग दूँगी। हे ऊधो, मैं रात कैसे काटूँ? मेरे घनश्याम कृष्ण नहीं आये।

आश्विन आ गया। मेरी आशा भी पूरी हो गई। मैं आज मोतियों से अपनी कवरी सँवारूँगी। मेरी सखी गिरिजा के प्रियतम मनमोहन भी आ गये। वह भी अपनी हमजोलियों के साथ उत्सव मना रही है।

(१४)

सखि रे बिति गेल तरुण तरंग
परदेशि मनमोहन रे
चैत मदन धनुषा शर लय
मोहि मारत है दिन रात
विरह के शान चढ़े तन में
छन जुग सम बिति जात
परदेशि मनमोहन रे
माधव मधुकर गेल मधयपुर
आवन दिन नहि देल
मन मँह सोचि रहे मदमाती
मस्त वसन्त बिति गेल
परदेशि मनमोहन रे

जेठ जड़ित तन विरहक ज्वाला
उखम लगय दिन रैन
पल-पल पिय-पिय रटत पपिहरा
पिय बिनु जिव नहिं चैन
परदेशि मनमोहन रे

आय अषाढ़ न आयल पिय घर
दामिनि दमसत जोर
चहुँ दिशि बादल उमड़ि घुमड़ि गे
झिंगुर मेंढ़क शोर
परदेशि मनमोहन रे

सावन सखि सब श्याम घटा लखि
साजत सकल सिंगार
सन सन पवन लगय सर उर में
तेजि गेल तरुणि गंवार
परदेशि मनमोहन रे

भादव भवन भयावन भामिनि
भय गेल वर्षा क भीर
चिहुँकि चकित चहुँ ओर निरेखे
कतहुँ न भेंटय पहुँ वीर
परदेशि मनमोहन रे

आसिन अब नहिं अचरज
अंगक अंत करव हिय हाय
आस पुरे नहिं काह पुकारों
भसम करव तन जार
परदेशि मनमोहन रे

कार्तिक कन्त कठोर हृदय कत
कामिनि करत कलोल

कमल कली कुच कोमल काँपे
सुखत कपोल अमोल
परदेशि मनमोहन रे
शीत बढे सब शालि सम्हारत
ৰিहरत सखि पिय संग
अजहुँ ने आवत अगहन बीते
हम न जिअब बिनु कंत
परदेशि मनमोहन रे
प्राणपिया परदेश तजे नहिं
पड़त तुषार अपार
पलंग पकड़ि पछतावत बीते
पिय बिनु पुसक बहार
परदेशि मनमोहन रे
माघ मनोरथ पुरत भामिनि
मन जनि करिय उदास
मनमोहन मधुपुर तजि मिलिके
करत विपति केर नास
परदेशि मनमोहन रे
फागुन फाग खेलों तुअ नागरि
नागर पहुँचल पास
फागुन आस प्रियतम संग पूरे
पुरि गेल बारहमास
परदेशि मनमोहन रे

चैत का महीना है। मदन धनुष-बाण सन्धान कर मुझे दिन-रात अपना लक्ष्य बना रहा है। शरीर में विरहाग्नि धू-धू कर धधक रही है, और एक-एक क्षण युग के समान प्रतीत होता है। हाय! मेरे मनमोहन प्रवासी हैं, और हे सखी, मेरी तरुणाई की तरंग शिथिल पड़ रही है।

वैशाख में मेरे प्रियतम मधुपुर चले गये। वहाँ से लौटने की तिथि भी निर्धारित नहीं की। मैं मद में बौरी प्रतिक्षण शोक-सिन्धु में डूबती-उतराती हूँ। हाय। आज वसन्त का महीना भी बीत गया।

जेठ में विरह की ज्वाला से मेरा शरीर जल रहा है। ताप की अधिकता के कारण दिन-रात उष्ण प्रतीत होते हैं। पपीहा प्रतिक्षण 'पिऊ-पिऊ' की रट लगाता है, और प्रियतम के बिना जी बेचैन है।

आषाढ़ का महीना आ गया। लेकिन प्रियतम घर वापिस नहीं आये। दामिनी ज़ोरों में दमक रही है। आसमान में बादल चारों ओर उमड़ते हैं तथा मेंढ़क और झींगुर शब्द-शर-सन्धान कर रहे हैं।

सावन में आसमान में उमड़ती हुई काली घटा देख कर सभी सखियाँ अपने को अलंकृत करती हैं। सन-सन बहती हुई वायु हृदय में तीर की तरह लगती है। हाय ! मेरे नादान प्रियतम ने मुझ अबला का परित्याग कर दिया।

भादों के महीने में नायिका का भवन भयावना हो गया। वर्षा की झड़ी लग गई। विरहिणी चौंक-चौंक कर चारों ओर आश्चर्य-चकित हो देख रही है। फिर भी उसके प्रियतम कहीं दृष्टिगोचर नहीं होते।

आश्विन का महीना आया। आश्चर्य नहीं कि मैं अपने शरीर का अन्त कर दूँ। हाय! मेरी चिर-संचित आशा पूरी न हुई। मैं इस दारुण विपत्ति में किसे पुकारूँ? हे सखी, अब इस शरीर को जला कर क्षार कर दूँगी।

हा! कार्त्तिक के महीने में मेरे कठोर-हृदय प्रियतम कहाँ किस रमणी के साथ विहार कर रहे हैं? कमल की कली के समान मेरे ये कोमल वक्ष-प्रदेश काँप रहे हैं, और मेरे अनमोल कपोल सूख रहे हैं।

शीत का आगमन हुआ। सब अपने-अपने खेतों से धान सँभाल कर ला रहे हैं, और मेरी हमजोलियाँ अपने प्रियतम के साथ विहार करती हैं। इस तरह धीरे-धीरे अगहन भी बीत चला। लेकिन मेरे प्रियतम आज भी नहीं आये। मैं प्रियतम के बिना कैसे जिऊँगी।

मेरे प्रियतम परदेश का परित्याग नहीं करते। तुषारपात बड़े ज़ोरों में हो रहा है। हाय! मैं अपनी सेज पर तड़प रही हूँ कि प्रियतम के बिना पौष की बहार यों ही बीत गई।

कवि कहता है—हे नायिके, ग़मगीन न हो। माघ में तुम्हारी मनो-कामना पूरी होगी। मनमोहन मधुपुर छोड़ कर तुमसे मिलेंगे और तुम्हारी विपत्ति का नाश होगा।

हे सुन्दरी, लो तुम्हारे प्रियतम आ गये। अब फागुन में होली की बहार लूटो, और प्रियतम के साथ तुम्हारी आशा पूरी हो। इस तरह ये बारह महीने पूरे हो गये।

(१५)

चैत चित लै चोर चलि गेल
चातक चन्द्र चकोर यो
चन्द्रमुखि चकुआत चहुँदिशि
दैव दुख देल मोर यो

माधव मधुकर मारि गेलाह
मदन मदमत बोल यो
मंद माधव मोहि कहि गेल
मास कठिनहिं आय यो

जेठ जगमग जड़ित ज्वाला
युगल कुच जगाय यो
जलद जल लय जीव के देत
कंत डुमरिक फूल यो

अषाढ़ आयल आदि वर्षा
आदि काम अपार यो

अब धनि नहिं धर्म वाँचत
साजि नाचत मोर यो

सावन सुन्दरि सेज काँपत
पंच सर सत साजि यो
सरस बनिता सर सताओल
अजहुँ पति नहिं आय यो

भादव भदवा भय भयानक
भवनपति नहिं भाव यो
भेक भुवि रव मार भामिनि
काटव आब कोना रात यो

आसिन आसक अखिर आयल
आस भेल निराश यो
आस अब मोहि पूर नहिं भेल
प्राणनाथ विसारि यो

कातिक काम कठोर कामिनि
काम कोप अकुलाय यो
कंत आयत काम कहि देहु
देव अधरक पान यो

आयल अगहन अवधि आयो
सबके काँपल अंग यो
अंग बिनु हम अंग जारव
धरव जोगिनि भेष यो

पूस पल छिन परत पाला
प्राणपति नहिं पास यो

पलंग पर दुख पाय बिनु
जोर जोबन जाड़ यो

माघ मनसिज मन मनोरथ
मदन चलल विमान यो
मूढ़ मधुकर मोहिं मारल
हमर नहिं किछु दोष यो

फागुन फगुआ कंत आयल
खेलब फागुन फाग यो
भनथि 'नेवालाल' फागुन
पुरल बारहमास यो

चैत में प्रियतम चोर-सा मेरा चित्त चुरा कर चले गये, और मैं चन्द्र के चकोर की तरह चकित हो गई।

वह चन्द्रमुखी चारों दिशाओं में चकित हो कर देख रही है, और कहती है—हाय! दैव ने मुझे कितना दुख दिया?

वैशाख में मेरे प्रियतम मुझे निष्प्राण कर चले गये, और यह मद-मत्त मदन अपना शर-सन्धान कर रहा है। मेरे निर्बुद्धि प्रियतम मुझे झूठी दिलाशा दे कर चले गये, और यह कठिन महीना आ पहुँचा।

जेठ की चिलचिलाती हुई धूप की प्रचंड ज्वाला। मेरे युगल उरोज तरंगित हो रहे हैं। जलद जल देकर जीवन-दान करता है, और मेरे प्रियतम गूलर के फूल हो रहे हैं।

आषाढ़ का प्रारम्भिक वर्षा-काल आ पहुँचा। कामदेव ने अपने दल-बल के साथ आक्रमण किया। नर्त्तक मयूर सज-धज कर नृत्य करने लगे। हे सखी, अब धर्म बचना असम्भव प्रतीत होता है।

सावन का महीना आया। सुन्दरी अपनी सेज पर काँप रही है। हाय! मुझ अबला पर कामदेव ने एक साथ सैकड़ों बाण लेकर आक्रमण किया, और मेरे प्रियतम आज भी नहीं आये।

भादों का महीना भयावना होकर आया। प्रियतम की गैरहाजिरी में मुझे कुछ नहीं भाता। दादुर के ये कर्णकटु शब्द घायल कर रहे हैं। हाय! मैं अबला रात कैसे काटूँ?

आश्विन में मेरी आशा का अंत हो गया। मेरी मनोकामना पूरी न हुई। हाय! मेरे प्रिय प्राणनाथ ने मेरा विस्मरण कर दिया।

कार्त्तिक महीने में कठोर-हृदय काम ने मुझ अबला को व्याकुल कर दिया। हे कामदेव, मेरे प्रियतम से जा कर कहो कि वे आवें, और मैं उन्हें अधर-पान कराऊँ।

अगहन का महीना आया। लोग जाड़ा के आक्रमण से काँपने लगे। मैं अंगहीन अनंग के सूक्ष्म अग को जला दूँगी, और स्वयं योगिनका वेष धारण करूँगी।

पौष में पाला की बारिश होने लगी। हाय! मेरे प्राणपति मेरे पास नहीं हैं। मैं अपनी सूनी सेज पर खिन्न हो रही हूँ, और बिना प्रियतम के मेरा जोबन ठंड से प्रकम्पित हो रहा है।

माघ में कामदेव ने अपने विमान पर आरूढ़ होकर मेरे मन में उथल-पुथल मचा दी। हाय! मेरे बुजदिल प्रियतम ने मेरा सब तरह से हनन किया। यद्यपि मैं सर्वथा निर्दोष हूँ।

फागुन आया। मेरे प्रियतम भी आ गये। मैं उनके साथ होली की बहार लूटूँगी। कवि 'नेवालाल' कहते हैं कि इस प्रकार ये बारह महीने पूरे हुए।

(१६)

प्रथम मास अषाढ़ हे
वर्षा ऋतु आयल
शोच करथि व्रजनारिन हे
अजहुँ ने मिलल कन्हाय

सावन सर्व सुहावन
मेघवा बरिस दिन राति

झिंगुर डारे झरोइत हे
ताहि डरल मोरि छाति

भादव रइनि भयावन हे
दोसर दामिनि दुख भारि
दामिनि दमिसि डरावय हे
बिना रे पुरुषवा क नारि

आसिन आस लगाओल हे
आशो न पुरल हमार
कोन जोगिनिआ वैरिन भेल
हे राखि लेल बनवार

कातिक कंत परदेश गेल
लिखियो ने भेजल पाँत
घर-घर दिअरा लेसयलों
जाहि दिन रहलि अहिवात

अगहन दिन सुदिन भेल
सब सखि गोना क जाय
हमरो करम जरिय गेल
ककरा सँ कहवों बुझाय

पूस क जार ठार भेल हे
तेजि गेल गिरिधारि
रचि-रचि पलंगा ओछएलों
हे तेजि गेल गिरिधारि

माघ में पाला बसंत भेल
से हो दुख सहलो ने जाय

हम त तिरिया अभागल
मरिवों माहुर विस खाय

फागुन फगुआ के दिन भेल
सखि सव धूम मचाय
उड़त गुलाब अविरवान
देखि देखि जिव ललचाय

चैतहिं चित मोर चंचल
फुलि गेल चन्द्र चकोर
माधव खेलैं त मधुपुर
मोर लेखे किछु ने सोहाय

उखम आयल वइसाख हे
से हो दुख सहलो ने जाय
खट रस बयरि मधुर रस
अंग पर लेपितों चढ़ाय

जेठ प्रभु जी सँ भेंट भेल
पुरि गेल मन केर आस
सुर नर मुनि सब गाओल
पुरि गेल बारहमास

पावस ऋतु। आषाढ़ का महीना। ब्रजांगनाएँ विरहाकुल हो कर कह रही हैं—अब तक श्री कृष्ण नहीं आये।

सावन का सुहावना महीना। दिन-रात मेघ झहर रहे हैं। झींगुर की झंकार सुन कर मेरा हृदय बारम्बार काँप उठता है।

भादों की भयावनी रात। दामिनी की दमक दुखद प्रतीत होती है। दामिनी दमक-दमक कर मुझ पुरुष-हीन अबला को जाने क्यों भयभीत कर रही है?

आश्विन में मैंने आशा लगा रक्खी थी, किन्तु वह पूरी न हुई। न मालूम वह कौन-सी बैरिन जोगिन है जिसने मेरे प्रियतम को लुभा रक्खा है।

कार्त्तिक में प्रियतम परदेश चले गये। मिलन की प्रथम रात्रि में उन्होंने घर-घर में चिराग जला कर उत्सव मनाया था। लेकिन वहाँ जाने पर एक पत्र तक नहीं लिखा।

अगहन का मंगलमय दिन। हमारी सखियाँ द्विरागमन में पति-गृह जा रही हैं। हाय! मेरी तकदीर कितनी खोटी है। मैं अपने दिल की बात किससे कहूँ?

पौष। कड़ाके का जाड़ा। इस कठिन अवसर पर मेरे प्रियतम मेरा परित्याग कर प्रवासी हो गये। मैंने रच-रच कर सेज सँवारी है। लेकिन प्रियतम परदेश चले गये।

माघ का जाड़ा बसन्त का-सा ही विरह-वेदन पैदा करता है जो मेरे लिए असह्य है। मैं अभागिन हूँ। जहर पान कर शरीर त्याग दूँगी।

फागुन का महीना। होली की बहार। हमारी सखियाँ रंग-क्रीड़ा करती हैं। चारों ओर कुंकुम और गुलाल उड़ रहे हैं, जिन्हें देख-देख कर मन तरस रहा है।

चैत में चित्त चंचल हो उठा। चाँद-प्रेमी चकोर उछल पड़े। प्रियतम मधुपुर में भूल गये। मुझे कुछ नहीं भाता।

वैशाख में भीषण गर्मी पड़ने लगी। यह दुख मुझसे सहा नहीं जाता। षट्रस व्यंजन दुश्मन हो गये। यदि इस समय शरीर पर शीतल चन्दन का लेप किया जाता तो फिर क्या कहना?

जेठ में प्रियतम से भेंट हो गई। मुराद पूरी हुई। मनुष्य, देवता सभी ने मिल कर 'बारहमासा' गाये, और इस प्रकार ये बारह महीने पूरे हुए।

(१७)

चैत हे सखि फूलल बेली
भँओरा लेल निज वास हे

तेजि मोहन गेल मधुपुर
हमर कोन अपराध हे

वैशाख हे सखि उखम ज्वाला
घाम सँ भिंजल शरीर हे
रगरि चन्दन अंग लेपों
जौं गृहि रहितो मे कंत हे

जेठ हे सखि हेठ वरसा
श्याम हमर विदेश हे
सुमिरि हरि बिनु जीव तरसय
नयन झहरत नीर हे

अषाढ़ हे सखि बूँद घन घन
दादुर रंग मचाव हे
पाहुन पहुना अवइत देखल
श्याम मधुपुर छाव हे

सावन हे सखि लिखल पाँती
ऊधो पठवल मोहि हे
चलहु सखि सब घाट यमुना
देखव कदम चढ़ि बाट हे

भादव हे सखि रइनि भयावन
दूजे अँधेरिया रात हे
घर पछुअरवा कुम्हराक डेरवा
नित उठि छानत दूकान हे

आसिन हे सखि आस लगाओल
आसो ने पुरल हमार हे

एहो आस पुरल कुबरि जोगिनिया
जिन कंत राखल लोभाय हे

कात्तिक हे सखि कंत परदेश गेल
नयन भरल दुनु नीर हे
ककरा दुअरिया रामा ठाढ़ि होएबों
ककरा सँ बोलव बात हे

अगहन हे सखि सारि बुधि भुलि गेल
फुटि गेल सभ रंग धान हे
हंसा चकेउआ रामा केरि करय
कोयलि करथि किरकार हे

पूस हे सखि कूहि परि गेल
भिजे गेल तनमा क चीर हे
एकत भिजे रामा कटावक चोलिया
जीवन भेल गति हीन हे

माघ हे सखि पाला परि गेल
थर थर काँपय आठों अँग हे
हम धनि काँपत टुटलि मरइया
पिया काँपय परदेश हे

फागुन हे सखि मास बारह
कृष्ण उतरथि पार हे

हे सखी, चैत में बेली खिल गई। उन पर भौंरे ने बसेरा लिया। मुझे छोड़ कर मोहन मधुपुर चले गये। मेरा क्या अपराध?

हे सखी, वैशाख की प्रचंड ज्वाला। शरीर पसीने से लथपथ। यदि इस समय मेरे प्रियतम होते तो मैं चन्दन घिस कर उनके अंग पर छिड़कती।

हे सखी, जेठ में थोड़ी-बहुत वर्षा होने लगी। मेरे श्याम प्रवासी हैं। उनका स्मरण कर मेरा जी व्याकुल हो उठता है, और आँखों से अश्रुपात होने लगते हैं।

हे सखी, आषाढ़ में बड़ी-बड़ी बूँदें गिरने लगीं। दादुर बोलने लगे। हमारी सभी सखियों के साजन घर लौट आये। लेकिन मेरे प्रियतम अभी मधुपुर में ही हैं।

हे सखी, सावन में मैंने प्रियतम के लिए पत्र दे कर ऊधो को भेजा। चलें हम सब यमुना-किनारे कदम्ब के वृक्ष पर बैठ कर उनकी राह देखें।

हे सखी, भादों की रात अत्यंत भयावनी है। तिस पर अन्धेरी रात और भी अन्धेर कर रही है। मेरे घर के पिछवाड़े कुम्हार का घर है जो नित्य प्रातःकाल उठ कर दूकान छाना करता है।

हे सखी, आश्विन में मैंने आशा लगा रक्खी थी। लेकिन वह पूरी न हुई। आशा तो सौतिन कुब्जा की पूरी हुई, जिसने मेरे प्रियतम को भुला रक्खा है।

हे सखी, कार्त्तिक में मेरे प्रियतम परदेश चले गये। मेरी दोनों आँखों में आँसू छलछला आये। अब मैं किसके द्वार पर खड़ी हूँगी। किससे हँस कर बातें करूँगी?

हे सखी, अगहन में मेरी अक्ल हैरान हो गई। सब प्रकार के धान फूट गये। हंस और चकेवा क्रीड़ा करने लगे। कोयल कूकने लगी।

हे सखी, पौष में कोहरा गिरने लगा। चुँदरी भींग गई। एक तो मेरी कटीली चोली गीली हो गई, और दूसरे मेरा दीवाना जोबन कुम्हला गया।

हे सखी, माघ में पाला पड़ने लगा। अंग-प्रत्यंग थर-थर काँपने लगे। मैं तो अपनी टूटी झोंपड़ी में काँप रही हूँ, और मेरे प्रियतम परदेश में काँप रहे होंगे।

हे सखी, फागुन में बारह महीने पूरे हो गये। मेरे सलोने श्रीकृष्ण भी आ ही रहे हैं।

(१८)

बारहमासा छंदपरक

साओन सर्व सोहाओन सखि रे
फुललि बेलि चमेलि यो
रभसि सौरभ भ्रमर भ्रमि भ्रमि
करय मधुरस केलि यो
आ रे केलि करथु पहुँ मन दय
सखि अधिक विरह मन उपजय

भादव घन घहराय दामिनि
गरजि गरजि सुनावि यो
बरसु घन झहर बुंद रिमिझिम
मोहि किछु नहि भाव यो
आ रे भामिनि भय घन दमसय
सखि मुरुछि मुरुछि खसु महिमय

परिणाम कोन उपाय हे सखि
करव कोन परकार यो
मास आसिन अधिक ज्वाला
विरह दुःख अपार यो
आ रे कतेक सहब दुख पहुँ बिनु
सखि ककरो नाह बिछुड़ि जनु

नाह विछुड़ल मोर हे सखि
हयत जीवक अन्त यो
अरुण कातिक धसिय धायव
जतय लुबुधल कन्त यो
आ रे कंत जोहय हम जायव
सखि जतय उदेश हम पाएव

अगहन हे सखि सारि लुबुधल
लवल जोवन मोर यो
योगिनि भय हम जगत जोहव
जतय जुगलकिशोर यौ
आ रे युक्ति जौं प्रभु अओताह
सखि कर गहि कंठ लगओताह

पूस धैरज धरय चाहिय
भमर रटल विदेश यो
हुनि विदेशी सुखहिं खेपताह
हमर तरुण वयस यो
आ रे विदेशहिं वैसि गमओताह
हमर गृह नहिं अओताह

माघ झिहिर पवन डोलय
देह झांझर मोर यो
हँसथि वसन उघारि सखि सब
कहथि मोहि विजोर यो
आरे शोक वियोग मनहिं मन
सखि चित नहिं रह थिर एको छन

अंग अंगित देह मंजित
विरह कम्पित गात यो
आवि पहुँचल मास फागुन
आव करव जिवघात यो
आरे राखव प्राण विषम सम
सखि योवन जोर विकलतम

यौवन जोर चकोर प्रभु बिन
चैत चंचल अति घना

कोयल कुहुकय मधुर शब्दय
करय कुतूहल उपवना
आरे कडकि पत्र लय लिखितहुँ
सखि प्रियतम ताहि पठवितहुँ

कडकि कमल मसिहान विरहिनि
पत्र लिखल बनाय यो
आयल मास वैशाख हे सखि
उखम सहल नहि जाय यो
आरे आजुक रैनि नहि अओताह
सखि प्रातकाल नहि पओताह

जेठ हे सखि अधिक ऊखम
पिय बिन आव नहि जीव यो
आनि यम धरि हृदय लगाएव
विषहि घोरि हम पीव यो
आरे पिय बिनु विष कर घोरि
सखि बिनती करू कर जोरि

कर जोरि विनती मोर हे सखि
हमर की अपराध यो
कोन विधि अषाढ़ खेपव
परम दुःख अगाध यो
आरे मूर्च्छित खसि भटकि कर
सखि हम धनि पड़लहुँ सरोवर

जाहि सरोवर थाह कतहु नहि
नयन बहय जलधार यो
भनहि 'कुलपति' रसिक अनुमति
चितहि धरिय अवधारि यो

आरे पल पल प्राण विकल अति
सखि कुब्जा हरल पहुँ गति मति

हे सखी, श्रावण में सर्वत्र सुहावना लगता है। फुलवाड़ियों में बेली और चमेली के फूल चिटख गये हैं। भ्रमर घूम-घूम कर फूलों के सौरभ का पान कर रहे हैं, और फूलों के साथ रभस-रभस कर प्रेम-क्रीड़ा करते हैं।

हे सखी, इसी तरह मेरे प्रियतम भी मेरे साथ मनमाना क्रीड़ा करें। क्योंकि मन अत्यंत विरहाकुल हो रहा है।

भादों में बादल आसमान में गरज रहे हैं। बिजली कौंध-कौंध कर कड़क रही है। बादल झहर-झहर कर बरस रहे हैं। हे सखी, अब मुझे कुछ नहीं भाता।

हम तरुणियों के लिए भयकारी ये बादल रह-रह कर गरज उठते हैं। और हे सखी, मैं मूर्च्छित हो-हो कर पृथिवी पर गिर जाती हूँ।

अब प्राण की रक्षा करने के लिए किस नुस्खे को काम में लाऊँ? आश्विन में काम की ज्वाला जोरों में भड़क उठी है, और विरह का दुःख सीमा का लंघन कर गया है।

हाय! प्रियतम की गैरहाजिरी में अब और कितनी पीड़ा बरदास्त करूँ? हे सखी, कभी किसी का प्रियतम न बिछुड़े?

हे सखी, मेरे प्रियतम मुझसे बिछुड़ गये। अब मेरे प्राण शरीर से जुदा हो जायेंगे। इस अरुण कार्त्तिक में मैं वहाँ आतुर होकर जाऊँगी, जहाँ मेरे प्रियतम रम रहे हैं।

हे सखी, जहाँ कहीं प्रियतम के रहने की खबर मिलेगी, मैं वहाँ-वहाँ ही उनकी टोह में जाऊँगी।

हे सखी, अगहन में धान फल कर खेतों में लहराने लगे। इधर मेरे दुर्वह जोबन भी झुक गये। (सच कहती हूँ) मैं जोगन हो कर प्रियतम की खोज में दुनियाँ की खाक छान डालूँगी।

काश, युक्ति करने से प्रियतम से साक्षात्कार होता तो वह मेरी बाँह पकड़ कर मुझे गले लगा लेते।

पौष में मैंने चित्त को चैन में लाना चाहा, लेकिन मेरा भ्रमर प्रवास में है। चैन कैसे मिले? वह प्रवास में अपना समय सुखपूर्वक बितायेंगे, ऐसा विश्वास है, और यहाँ मेरी तरुणाई तूफान बरपा कर रही है।

हे सखी, क्या मेरे प्रियतम प्रवास में ही सारा समय बिता डालेंगे? क्या वह यहाँ पुनः नहीं आयेंगे।

माघ में पवन झिहिर-झिहिर बह रहा है। शरीर सूख कर झाँझर हो गया। मेरी हमउम्र सहेलियाँ मुझे एकाकिनि कह कर और मेरे शरीर के वस्त्र खींच-खींच कर मेरा उपहास कर रही हैं।

मन शोक से अभिभूत और वियोग-वेदना से आकुल हो रहा है। हे सखी, क्षण-भर के लिए भी चित्त स्थिर नहीं रहता।

काम के ज्वार से अंग-प्रत्यंग तरंगित और विरह की पीड़ा से प्रकम्पित हो उठे। हे सखी, लो यह फागुन महीना भी आ पहुँचा। अब मैं निश्चय ही आत्म-घात कर लूँगी।

हे सखी,तरुणाई की पीड़ा से व्याकुल इस प्राण की अब बड़ी कठिनाई से रक्षा कर सकूँगी।

चैत महीने में प्रियतम रूपी चकोर की गैरहाजिरी में चित्त अत्यंत चंचल हो उठा। कोयल कूक-कूक कर उपवन में क्रीड़ा करने लगी। हे सखी, काश मैं विरह की पाँती लिख कर प्रियतम को भेजती?

कमल-पत्र पर स्याही से विरहिणी ने प्रेम में शराबोर पत्र लिखा। हे सखी, वैशाख आ गया। अब गर्मी बरदास्त नहीं होती।

हे सखी, यदि आज की रात मेरे प्रियतम नहीं आये तो वह कल मुझे प्रातःकाल जीवित नहीं पायेंगे।

हे सखी, जेठ में बहुत ज्यादा गर्मी पड़ने लगी। अब प्रियतम के बिना जीवित नहीं रहूँगी। जहर घोल कर पी लूँगी, और साक्षात् मौत का आलिंगन करूँगी।

हे सखी, प्रियतम के विरह में मैं गरल-पान कर लूँगी। मैं करबद्ध प्रार्थना करती हूँ। तुम इसमें दस्तन्दाजी मत दो।

हे सखी, मैं करबद्ध प्रार्थना करती हूँ। मेरा क्या कसूर है कि प्रियतम ने मेरा परित्याग कर दिया? तुम्हीं बताओ, आषाढ़ महीने के इस असीम कष्ट को मैं किस तरह झेलूँ?

हे सखी, प्रेम के पंथ में भटक-भटक कर अंत में मैं विरह के अगाध सरोवर में गिर गई।

जिस सरोवर के असीम तल की माप नहीं। हाय! मेरी आँखों से आँसू प्रवाहित हो रहे हैं। कवि 'कुलपति' कहते हैं—हे विरहिणी, चित्त को चैन में लाओ।

विरहिणी नायिका कहती है—हे सखी, मेरे प्राण प्रतिक्षण विरहाकुल हो रहे हैं। हाय! कुब्जा ने मेरे प्रियतम की सारी सुध-बुध हर ली।

(१९)

चौमासा छन्दपरक

की[१] सुनि कान्ह[२] गमन कियो
मदन दहत[३] तन जोर
चंचल नयन विलम्बित पथ
चितवहु पिय तोर
पंथ विषाद हे सखि श्याम गेल[४] परदेश यो
शून्य सेज निकन्त[५] देखल कोना भेजव सनेश यो
दादुरा घन घनहिं रोवै झंग झिंगुर बाज यो
नव नेह अंकम हृदय साले[६] प्रथम मास अषाढ़ यो
सावन सर्व सोहावन
कानन बोले मोर
तापर दछिन पवन बहे
कठिन हृदय पिया तोर

---

[१] क्या। [२] कृष्ण। [३] जलना। [४] गया। [५] कन्त-रहित। [६] शूल पैदा होना।

कठिन और कठोर बालम दर्द किछु नहिं जान यो
कह परायल[१] विरह दुख सँ काम देल अनेक यो
काम देल अनेक हहरत प्राण अतिसय मोर यो
विरह प्रीति समुद्र जल में दुखित रैनि गमाव[२] यो

भादव रैनि भयावनि
कारि रैनि अन्हियारि[३]
चित्र विचित्र हिंडोला
झूले सोहागिनि नारि

गावि गावि झुलावे सखि सब अधर भरि पान यो
हीन छीन मलीन पिया बिनु कड़क पाँचो बान यो
दसय[४] चाहत कारि नागिनि प्राण पाथर मोर यो
विकलि कामिनि पहुँ बिनु नयन झहरत नीर यो

शरद समय जल आसिन
पन्थुक संचर मन डोल
सूतलि धनि उठि वैसली
काग कदम पर बोल

बोलु कागा कदम क्योला पास कब हरि आव यो
उर्ध्व बाँहु निवास सखि करहिं मंगल गान यो
राधिका मुख कमल विकसित शेष सुर मुनि गाव यो
'जयदेव स्वामी' चरण वन्दहिं शरण राखु गोविन्द यो

(२०)

चैत हे सखि फुललि बेली
भँमर लेल निज वास यो
तेजि मोहन गेल मधुपुर
हमर कोन अपराध यो

---

[१] भागा, [२] बिताना। [३] अंधेरी। [४] डँसना।

वैशाख हे सखि कोइलि चहुँ दिशि
कुहुकि मदन जगाव यो
सुमिरि नित हिय मोर कड़के
उठय विरहक ज्वाल यो

जेठ चहुँ दिशि श्याम बादर
देखि मोहि डर लाग यो
जानि मोहि अनाथ विरहिनि
मेघ गरजि सुनाव यो

मेघ गरजय चमकि चमकय
बिजुलि मास अषाढ़ यो
मोर के रव शोर अति घन
घोर सहलो न जाय यो

साओन सननन पवन सनकय
दादुर टर्र टर्र शोर यो
बुन्द झहरय भ्रमर भनकय
नयन टपकय नीर यो

भादव हे सखि भरल नदिया
घेरल चहुँ दिशि देश यो
के लय जायत मोर पाँती
कन्त देत बुझाय यो

आसिन हे सखि आस लगाओल
आओत ने जिवि देश यो
कैल हे सखि भोग भोगलहुँ
भेलहुँ आव निरास यो

कातिक हे सखि निठुर प्रीतम
हिय दर्दक नहिं लेश यो
लिखल के सखि दोसर भोग नहिं
हुनक नहिं किछु दोष यो

मास अगहन देखि प्रिय संग
करिय बहुत कलोल यो
साजि विविध श्रृंगार सखि सब
लेल गृह प्रवेश यो

पूस हे सखि मास आयल
भेल विधि मोर वाम यो
बिन प्रीतम नहिं भवन भावय
नयन निर विह वाम यो

माघहिं हारि पुकारि वैसलहुँ
झाड़िखंड वैद्यनाथ यो
बिन प्रीतम धिक नारि जीवन
नहिं सपनहुँ चैन यो

मास फागुन मानहु सखि जन
चित जनि करहु उदास यो
भनहिं 'माधव' आओत प्रीतम
पुरत मनहुँक आस यो

हे सखी, चैत में बेली खिल गई। भ्रमर को बसेरा मिल गया। श्रीकृष्ण मेरा परित्याग कर मधुपुर चले गये। न जाने मेरा क्या अपराध है?

हे सखी, वैशाख में कोयल चारों ओर कूक-कूक कर काम को जगा रही है। प्रियतम की याद आ जाने पर कलेजा कड़क उठता है, और अंग-अंग से रह-रह कर विरह की ज्वाला धधक उठती है।

हे सखी, ज्येष्ठ में आकाश में चारों ओर काले-काले बादल को उमड़ते देख कर मुझे डर लगता है। मुझे अनाथ विरहिणी जान कर ये बादल गरज-गरज कर डकार रहे हैं।

हे सखी, आषाढ़ महीने में बादल गरजते हैं। बिजली चमकती है। और मयूर का घनघोर शब्द मुझसे सहा नहीं जाता।

हे सखी, श्रावण महीने में पवन 'सनन-सनन' सनक रहा है। मेढक 'टर्र-टों-टर्र-टों' कर रहे हैं। और इधर मेरी आँखों से आँसू टपक रहे हैं।

भादों में हे सखी, नदी और तालाब ने उमड़ कर गाँव और नगर को चारों तरफ से घेर लिया। कौन मेरी पाँती ले जायगा, और निर्बुद्धि प्रियतम को सुबुद्धि देगा कि वह यहाँ आये।

हे सखी, आश्विन में मैंने आशा लगा रक्खी थी कि प्रियतम आयेंगे। मैंने किये का फल भली भाँति भोगा, और अब बिल्कुल नाउम्मीद हो गई।

शेष पद के भाव स्पष्ट हैं।

अनुक्रमणिका

ख

ग

घ

च

भ

म

ह